॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

यमदूत क्या करते, वे अजामिलको छोड़कर यमलोक आ गये और अपने स्वामीके सम्मुख हाथ जोड़कर सारा वृत्तान्त निवेदित किया।

दूतों की बात सुनकर यमराज बोले—'सेवको! तुमलोग केवल उसी पापी जीवको लेने जाया करो, जिसकी जीभसे कभी किसी प्रकार भगवन्नाम न निकला हो, जिसने कभी भगवत्कथा न सुनी हो, जिसके पैर कभी भगवान्‌के पावन लीलास्थलोंमें न गये हों अथवा जिसके हाथोंने कभी भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा न की हो।'

षोडश पार्षद

बिष्वकसेन जय बिजय प्रबल बल मंगलकारी।
नंद सुनंद सुभद्र भद्र जग आमयहारी॥
चंड प्रचंड बिनीत कुमुद कुमुदाच्छ करुनालय।
सील सुसील सुषेन भाव भक्तन प्रतिपालय॥
लक्ष्मीपति प्रीणन प्रबीन भजनानँद भक्तन सुहृद।
मो चितबृति नित तहँ रहौ जहँ नारायन (पद) पारषद॥ ८॥

विष्वक्सेन, जय, विजय, प्रबल और बल—ये भक्तोंका मंगल करनेवाले हैं। नन्द, सुनन्द, सुभद्र और भद्र—ये भवरोगोंको हरनेवाले हैं। चण्ड, प्रचण्ड, कुमुद और कुमुदाक्ष—ये परम विनीत तथा अति कृपालु हैं। शील, सुशील और सुषेण—ये भावुक भक्तोंके प्रतिपालक हैं। ये सोलह प्रधान पार्षद श्रीलक्ष्मीनारायणकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न करनेमें परम चतुर हैं और भजनानन्दी भक्तोंके हितकारी हैं। मेरी चित्तवृत्ति सर्वदा वहाँ ही रहे, जहाँ नारायण भगवान्‌के पार्षद रहते हैं॥ ८॥

प्रियादासजीने एक कवित्तमें षोडश पार्षदोंकी महिमाका वर्णन इस प्रकार किया है—

पारषद मुख्य कहे सोरह सुभाव सिद्ध सेवा ही की ऋद्धि हिये राखि बहु जोरि कै।
श्रीपति नारायण के प्रीनन प्रबीन महा ध्यान करैं जन पालैं भाव दृग कोरि कै॥
सनकादि दियो शाप प्रेरि कै दिवायो आप प्रगट ह्वै कह्यौ पियौ सुधा जिमि घोरि कै।
गही प्रतिकूलताई जो पै यही मन भाई याते रीति हद गाई धरी रंग बोरि कै॥ २५॥

श्रीनाभाजीने नारायण भगवान्‌के मुख्य सोलह पार्षद कहे। ये सहज स्वभावसे ही नित्य-सिद्ध एवं नित्य-मुक्त हैं। इन्होंने भगवत्सेवारूपी अनन्त सम्पत्तिको हृदयमें एकत्र कर रखा है। ये लक्ष्मीपति नारायणको प्रसन्न करनेमें परम चतुर हैं। सदा भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहते हैं। प्रेमभावसे पूर्ण दृष्टिकोणसे भक्तोंका पालन करते हैं। स्वयं नारायण भगवान्‌ने प्रेरणा करके सनकादिकोंसे जय-विजयको तीन जन्मतक असुर होनेका शाप दिलाया। फिर वहाँ प्रकट होकर बोले कि यह शाप मेरी इच्छासे ही हुआ है। यह सुनकर जय-विजयने शापको अमृतपानके समान रुचिपूर्वक स्वीकार किया और कहा कि 'यदि आपको यही अच्छा लगता है तो अनुकूल सेवा-सुख त्यागकर प्रतिकूल शत्रुभाव भी स्वीकार है।' ऐसी रंगीली प्रीतिकी रीति धारण की, इससे इनकी उपासनाकी रीति अन्तिम सीमाकी कही गयी है॥ २५॥

भगवान् श्रीनारायणके पार्षद

भगवान् नारायणके पार्षद असंख्य हैं, उनमेंसे सोलह पार्षद प्रमुख हैं, जिनके नाम छप्पयमें स्मरण किये गये हैं। इन पार्षदोंका स्वरूप भगवान्‌के ही तुल्य होता है। अन्तर केवल श्रीवत्स और कौस्तुभका है। ये

दोनों चिह्न श्रीभगवान्‌के ही होते हैं, पार्षदोंके नहीं। यथा—**'प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः॥ आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ। पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम्॥'** (श्रीमद्भा० ६।९।२८-२९) अर्थात् [जब देवताओंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की] तब शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान् उनके सामने पश्चिमकी ओर (अन्तर्देशमें) प्रकट हुए। भगवान्‌के नेत्र शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए थे। उनके साथ सोलह पार्षद उनकी सेवामें लगे हुए थे। वे देखनेमें सब प्रकारसे भगवान्‌के समान ही थे। केवल वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न और गलेमें कौस्तुभमणि नहीं थी। बल, प्रबल, नन्द, सुनन्द, भद्र, सुभद्र, कुमुद और कुमुदाक्षकी गणना वैष्णव द्वारपालके रूपमें की जाती है। यथा—**'नन्दादयोऽष्टौ द्वास्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः।'** (श्रीमद्भा० १२।११।२०) अर्थात् भगवान्‌के स्वाभाविक गुण, अणिमा, महिमा आदि अष्ट सिद्धियोंको ही नन्द-सुनन्द आदि आठ द्वारपाल कहते हैं। भगवान्‌के प्रधान-पार्षद श्रीविष्वक्सेनजी हैं, वे पांचरात्रादि आगमरूप हैं—**'विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः।'**

श्रीवैकुण्ठधाममें भगवान् विष्णुके मणिमय प्रासादके पश्चिम द्वारपर जय-विजय द्वारकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। पूर्वके दरवाजेपर चण्ड और प्रचण्ड, दक्षिण द्वारपर भद्र और सुभद्र तथा उत्तरके दरवाजेपर धाता और विधाता नामके द्वारपाल रहते हैं। कुमुद और कुमुदाक्षकी गणना वैकुण्ठके मध्यमें स्थित अयोध्या नगरीके दिक्पालोंमें भी की जाती है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, अजेय हैं, पर उनके नित्य-पार्षद उनकी रक्षा और सेवामें सदा तत्पर रहते हैं। श्रीमद्भागवतमें वर्णन है कि जब वैष्णव पार्षदोंने देखा कि बलिके अनुचर दैत्योंने वामनभगवान्‌को मारनेके लिये अस्त्र-शस्त्र उठा लिये तब उन्होंने भी हँसकर अपने अस्त्र उठा लिये, असुरोंको रोक दिया। नन्द-सुनन्द, जय-विजय, बल-प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड़, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त, सात्वत आदि भगवत्पार्षद दस-दस हजार हाथियोंका बल रखते हैं। यथा—

इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः॥
ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः।
अनिच्छतो बले राजन् प्राद्रवञ्जातमन्यवः॥
तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान् नृप।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः॥
नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट्॥
जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम्॥

(श्रीमद्भा० ८।२१।१३—१७)

जैसे भगवान् भक्तोंके लिये मंगलकारी, आमयहारी, करुणालय, प्रतिपालक तथा सुहृद् हैं, वैसे ही भगवत्पार्षद भी इन समस्त सद्‌गुणोंसे युक्त हैं। अजामिलके प्रसंगमें ये सभी गुण चरितार्थ दीखते हैं। यथा—

तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः।
प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः॥
भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि।
रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च॥

अर्थात् उन सबके स्वामी, परम स्वतन्त्र, मायापति पुरुषोत्तमके दूत उन्हींके समान परम मनोहर रूप, गुण और स्वभावसे सम्पन्न होकर इस लोकमें प्रायः विचरण किया करते हैं। विष्णुभगवान्के सुरपूजित एवं परम अलौकिक पार्षदोंका दर्शन बड़ा दुर्लभ है। वे भगवान्के भक्तजनोंको उनके शत्रुओंसे, मुझसे और अग्नि आदि सब विपत्तियोंसे सर्वदा सुरक्षित रखते हैं। [श्रीमद्भा० ६।३।१७-१८]

हरिवल्लभ (भगवान्के प्रिय भक्त)

कमला गरुड़ सुनंद आदि षोडस प्रभु पद रति।
हनु जमवंत सुग्रीव बिभीषन सबरी खगपति॥
ध्रुव उद्धव अँबरीष बिदुर अक्रूर सुदामा।
चंद्रहास चित्रकेतु ग्राह गज पांडव नामा॥
कौषारव कुंती बधू पट ऐंचत लज्जा हरी।
हरि बल्लभ सब प्रारथौं (जिन) चरन रेनु आसा धरी॥ ९॥

श्रीलक्ष्मीजी, गरुड़जी, सुनन्द आदि सोलह पार्षद, हनुमान्जी, जाम्बवान्जी, सुग्रीवजी, विभीषणजी, श्रीशबरीजी, खगपति जटायुजी, ध्रुवजी, उद्धवजी, अम्बरीषजी, विदुरजी, अक्रूरजी, सुदामाजी, चन्द्रहासजी, चित्रकेतुजी, ग्राह, गजेन्द्र, पाण्डव (युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव), श्रीमैत्रेयजी, कुन्तीजी और द्रौपदीजी, जिनकी लज्जा दुःशासनके वस्त्र खींचते समय भगवान्ने रखी। इन सबकी प्रभुके पादपद्मोंमें प्रीति है। इन हरिके प्यारे भक्तोंकी प्रार्थना करता हूँ। इनके चरणोंकी रजको प्राप्त करनेकी आशा मनमें धारण की है॥ ९॥

श्रीप्रियादासजीने भगवान्के प्रिय भक्तोंकी महिमा निम्न कवित्तमें वर्णित की है—

हरि के जे वल्लभ हैं दुर्लभ भुवन माँझ तिनहीं की पदरेणु आसा जिय करी है।
योगी यती तपी तासों मेरो कछु काज नाहिं प्रीति परतीत रीति मेरी मति हरी है॥
कमला गरुड़ जाम्बवान सुग्रीव आदि सबै स्वाद रूप कथा पोथिन में धरी है।
प्रभुसों सचाई जग कीरति चलाई अति मेरे मन भाई सुखदाई रस भरी है॥ २६॥

जो भगवान्के प्यारे भक्त हैं, वे चौदहों भुवनोंमें दुर्लभ हैं, मैंने उन्हींकी चरणरेणुको प्राप्त करनेकी आशा की है। भक्तिहीन जो कोरे योगी, संन्यासी और तपस्वी हैं, उन लोगोंसे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है। भक्तोंकी प्रीति, विश्वास और उपासनाकी रीतिने मेरी बुद्धिको अपनी ओर खींच लिया है। लक्ष्मी, गरुड़, जाम्बवान् और सुग्रीव आदिकी अति मधुर कथाएँ पुराण आदि ग्रन्थोंमें लिखी हैं। जिन भक्तोंने प्रभुसे निष्कपट सच्चा प्रेम किया तथा संसारमें अपनी और भगवान्की कीर्ति फैलायी, उनकी वह रसमयी मधुर गाथा मेरे मनको बहुत अच्छी लगी; क्योंकि वह सुनने-सुनानेमें हृदयको सुख देनेवाली है॥ २६॥

यहाँ संक्षेपमें भगवान्के प्रिय भक्तोंकी कथाएँ दी जा रही हैं—

श्रीकमला (श्रीलक्ष्मीजी)

भगवती लक्ष्मीजी विष्णुवल्लभा हैं, वे भगवान् विष्णुसे अभिन्न हैं। उनके विषयमें बताते हुए पराशरजी श्रीमैत्रेयजीसे कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठ! भगवान्का कभी संग न छोड़नेवाली जगज्जननी लक्ष्मीजी नित्य हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् सर्वव्यापक हैं, वैसे ही ये भी हैं। विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मीजी वाणी हैं; हरि न्याय हैं तो ये नीति हैं; भगवान् विष्णु बोध हैं तो ये बुद्धि हैं; तथा वे धर्म हैं तो लक्ष्मीजी सत्क्रिया

हैं। मैत्रेय! भगवान् जगत्के स्रष्टा हैं तो लक्ष्मीजी सृष्टि हैं। श्रीहरि भूधर (पर्वत अथवा राजा) हैं तो लक्ष्मीजी भूमि हैं; भगवान् सन्तोष हैं तो लक्ष्मीजी नित्य-तुष्टि हैं। भगवान् काम हैं तो लक्ष्मीजी इच्छा हैं; वे यज्ञ हैं तो ये दक्षिणा हैं; श्रीजनार्दन पुरोडाश हैं तो देवी लक्ष्मीजी आज्याहुति (घृतकी आहुति) हैं। मुने! मधुसूदन यजमानगृह हैं तो लक्ष्मी पत्नीशाला हैं; श्रीहरि यूप (यज्ञस्तम्भ) हैं तो लक्ष्मीजी चिति (इष्टका-चयन) हैं; भगवान् कुशा हैं तो लक्ष्मीजी समिधा हैं। भगवान् सामस्वरूप हैं तो श्रीकमलादेवी उद्गीति हैं; जगत्पति भगवान् वासुदेव हुताशन हैं तो लक्ष्मीजी (उनकी पत्नी) स्वाहा हैं। द्विजोत्तम! भगवान् विष्णु शंकर हैं तो श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं; इसी प्रकार हे मैत्रेय! श्रीकेशव सूर्य हैं तो कमलवासिनी श्रीलक्ष्मीजी उनकी प्रभा हैं। श्रीविष्णु पितृगण हैं तो श्रीकमला नित्य पुष्टिदायिनी (उनकी पत्नी) स्वधा हैं; विष्णु अति विस्तीर्ण सर्वात्मक आकाश हैं तो लक्ष्मीजी स्वर्गलोक हैं। भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं तो श्रीलक्ष्मीजी उनकी अक्षय कान्ति हैं; श्रीहरि सर्वगामी वायु हैं तो लक्ष्मीजी जगच्चेष्टा (जगत्की गति) और धृति (आधार) हैं। हे महामुने! श्रीगोविन्द समुद्र हैं तो हे द्विज! लक्ष्मीजी उसकी तटभूमि हैं। भगवान् मधुसूदन देवराज इन्द्र हैं तो लक्ष्मीजी इन्द्राणी हैं। चक्रपाणि भगवान् साक्षात् यम हैं तो श्रीकमला यमपत्नी धूमोर्णा हैं; देवाधिदेव श्रीविष्णु स्वयं कुबेर हैं तो श्रीलक्ष्मीजी साक्षात् ऋद्धि हैं। श्रीकेशव स्वयं वरुण हैं तो महाभागा लक्ष्मीजी गौरी हैं; हे द्विजराज! श्रीहरि देवसेनापति स्वामिकार्तिकेय हैं तो श्रीलक्ष्मीजी देवसेना हैं। हे द्विजोत्तम! भगवान् गदाधर शक्तिके आधार हैं तो लक्ष्मीजी शक्ति हैं; भगवान् निमेष हैं तो लक्ष्मीजी काष्ठा हैं; वे मुहूर्त हैं तो ये कला हैं। सर्वेश्वर सर्वरूप श्रीहरि दीपक हैं तो श्रीलक्ष्मीजी ज्योति हैं; श्रीविष्णु वृक्षरूप हैं तो जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी लता हैं। चक्र-गदाधर देव श्रीविष्णु दिन हैं तो लक्ष्मीजी रात्रि हैं; वरदायक श्रीहरि वर (दूल्हा) हैं तो पद्मनिवासिनी श्रीलक्ष्मीजी वधू (दुलहिन) हैं। भगवान् नद हैं तो श्रीजी नदी हैं। कमलनयन भगवान् ध्वजा (झण्डा) हैं तो कमलालया लक्ष्मीजी पताका हैं। जगदीश्वर परमात्मा नारायण लोभ हैं तो लक्ष्मीजी तृष्णा हैं तथा हे मैत्रेय! रति और राग भी साक्षात् श्रीलक्ष्मी और गोविन्दरूप ही हैं। अधिक क्या कहा जाय, संक्षेपमें यह कहना चाहिये कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदिमें पुरुषवाची तत्त्व भगवान् श्रीहरि हैं और स्त्रीवाची तत्त्व श्रीलक्ष्मीजी; इनके परे और कोई नहीं है।

श्रीगरुड़जी

प्रजापति दक्षकी तेरह कन्याएँ महर्षि कश्यपसे ब्याही गयी थीं, इनमेंसे कद्रू और विनता पुत्र-कामनासे बड़े अनुरागपूर्वक पतिकी सेवा करने लगीं। सेवासे सन्तुष्ट महर्षि कश्यपने जब दोनोंको मनभावता वर माँगनेको कहा तो कद्रूने समान शक्तिवाले एक हजार नागोंको पुत्ररूपमें पानेका वर माँगा। विनताने कद्रूके पुत्रोंसे सभी गुणोंमें श्रेष्ठ केवल दो पुत्रोंका वर माँगा। ऋषिने एवमस्तु कहा। फलस्वरूप कालान्तरमें कद्रूने एक हजार और विनताने दो अण्डे दिये। पाँच सौ वर्षतक अण्डोंके सेवन करनेके अनन्तर कद्रूके हजार नागपुत्र तो अण्डोंसे बाहर आ गये, परंतु विनताके अण्डे ज्यों-के-त्यों रहे। अधीर होकर विनताने एक अण्डा स्वयं फोड़ डाला तो देखा कि पुत्रके शरीरका ऊपरी भाग पूर्णरूपसे विकसित एवं पुष्ट था किंतु नीचेका आधा अंग अभी अधूरा रह गया था। माताकी इस नादानीसे क्रुद्ध होकर पुत्रने शाप दिया कि तूने जिस सौतकी ईर्ष्यावश आतुरताके कारण मुझे अधूरे शरीरवाला बना दिया, उसीकी पाँच सौ वर्षोंतक दासी बनी रहेगी और यह तुम्हारा दूसरा पुत्र तुम्हें दासीभावसे मुक्त करेगा। परंतु धैर्य रखना, कहीं आतुरतामें इस अण्डेको भी नहीं फोड़ देना। तेजोमय अरुणकान्तिके कारण विनताके उस प्रथम पुत्रका नाम अरुण पड़ा और ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे सूर्यके सारथी बने। तदनन्तर समय पूरा होनेपर श्रीगरुड़जीका जन्म हुआ। उस समय

वे प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित एवं प्रकाशित हो रहे थे। श्रीगरुड़जीके तेजको न सह सकनेके कारण देवताओंने उनकी स्तुति की तो इन्होंने अपना तेज समेट लिया।

कद्रू और कद्रू-पुत्र नागोंके द्वारा बार-बार दासवत् व्यवहार किये जानेपर श्रीगरुड़जीने जब इसका हेतु पूछा तो विनताने कद्रूके कपटकी कथा सुनायी। बात यह हुई कि एक बार दोनोंमें सूर्यके घोड़ेकी अथवा क्षीरसमुद्रसे निकले हुए उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेकी पूँछके रंगके विषयमें वाद-विवाद हुआ, कद्रू काली बताती और विनता श्वेत। अन्ततोगत्वा यह निश्चय हुआ कि जिसकी बात झूठी निकले, वह दूसरेकी दासी होकर रहे। कद्रूकी आज्ञानुसार उसके पुत्र नाग घोड़ेकी पूँछसे जा लिपटे, जिससे वह काली दीख पड़ी। इस चालाकीसे कद्रूने विनताको दासी बना लिया और अनेकों कष्ट दिया करती थी। यह सब जानकर श्रीगरुड़जीने नागोंसे कहा कि हम तुम्हारा क्या काम कर दें, जिससे कि मैं और मेरी माता दासभावसे छुटकारा पा जायँ? उन्होंने कहा कि हमें अमृत ला दो।

श्रीगरुड़जी माताको प्रणामकर, आज्ञा और आशीर्वाद पाकर स्वर्गमें जाकर देवताओंको पराजितकर अमृतके पात्रको लेकर बड़ी तेजीसे वहाँसे उड़ चले। अमृत अपने अधिकारमें होनेपर भी श्रीगरुड़जी स्वयं उसे नहीं पीये। उनकी यह निःस्पृहता देखकर भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उन्हें बिना अमृत-पानके ही अजर-अमर होनेका तथा अपनी ध्वजापर स्थित रहनेका एवं अपना वाहन बननेका परम दुर्लभ वरदान दिया। अमृतका अपहरण करके लिये जाते देखकर देवेन्द्रने रोषमें भरकर श्रीगरुड़जीके ऊपर वज्रका आघात किया परंतु भगवान्से वर पाकर अजर-अमर हुए गरुड़जीने तो वज्रकी मर्यादा रखनेके लिये मुसकराकर अपना एक पंखमात्र गिरा दिया। वैनतेयके इस अद्भुत पराक्रमसे प्रभावित होकर इन्द्रने वैरभावका परित्यागकर दृढ़ मैत्री कर ली। श्रीगरुड़जीने अमृतके सम्बन्धमें अपना भाव व्यक्त किया कि मुझे इसको पीना नहीं है। माताको दासीपनेसे मुक्त करानेके लिये मैं इसे सर्पोंको सौंपूँगा, आप उनसे ले लेना। इन्द्रने इस बातसे सन्तुष्ट होकर गरुड़जीका सर्पोंको भक्षण करनेमें समर्थ होनेका अभीष्ट वर प्रदान किया।

श्रीगरुड़जीने अमृत-पात्र सर्पोंको प्रदान किया। माताको दासीपनेसे मुक्त किया, स्वयं स्वच्छन्द हुए। सर्प अमृतको कुशोंमें छिपाकर स्नान करने चले गये, इसी बीचमें इन्द्र वह अमृत लेकर पुनः स्वर्गको चले गये। अमृतके अभावमें सर्पोंने लोभवश कुशोंको ही चाटना शुरू किया, जिससे उनकी जीभके दो भाग हो गये। तभीसे सर्प द्विजिह्वा हो गये तथा तभीसे कुशा अमृतका स्पर्श होनेके कारण परम पवित्र हो गया।

श्रीगरुड़जीने भगवान् सूर्यके पास जाकर वेद पढ़ानेकी प्रार्थना की। परंतु इन्हें पक्षी होनेके कारण अनधिकारी जानकर सूर्यने वेद पढ़ानेसे इनकार कर दिया। ये बड़े ही उदास तथा अप्रसन्न होकर वहाँसे लौटे। इनकी अप्रसन्नता देखकर सूर्य डर गये कि इनके बड़े भाई अरुण मेरे सारथी हैं, कहीं यह उन्हें भी लेकर चले गये तो मेरा सब काम ही बन्द हो जायगा, अतः पुनः गरुड़जीको बुलाया, परंतु इन्होंने तो तपके द्वारा वेद-ज्ञान प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया था अतः वापस नहीं लौटे। तब सूर्यने स्वयं बिना तप किये ही तप-फलस्वरूप समस्त वेदका बोध होनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि आपके पंखोंसे निरन्तर साम-गानकी ध्वनि होती रहेगी।

श्रीगरुड़जी सर्वात्मना भगवान्की सेवामें तत्पर रहते हैं। आपकी सेवाओंका स्मरण करते हुए श्रीस्वामी यामुनाचार्यजी कहते हैं—

दासः सखा वाहनमासनं ध्वजो यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः।
उपस्थितं तेन पुरो गरुत्मता त्वदङ्घ्रिसम्मर्दकिणांकशोभिना॥

(आलवन्दारस्तोत्र)

अर्थात् ऋक्, यजुः, सामवेदरूप (वेदत्रयी) जिनका स्वरूप है, जो आपके चरण-कमलोंके संघर्षके चिह्नसे अंकित शरीरवाले हैं, जो समय-समयपर आपके दास, सखा, वाहन, आसन, ध्वजा, वितान तथा पंखा बनकर आपकी सेवा करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं, वे गरुड़जी आपके आगे खड़े रहते हैं।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी श्रीगरुड़जीको महाज्ञानी-गुणराशि, हरि-सेवक, हरिके अत्यन्त निकट निवास करनेवाला कहा है। यथा—'*गरुड़ महाग्यानी गुनरासी। हरि सेवक अति निकट निवासी॥*' भगवान्ने अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने-आपको पक्षियोंमें वैनतेय बताया है। यथा—'**वैनतेयश्च पक्षिणाम्।**'

सुनन्द आदि

सुनन्द भगवान् विष्णुके सोलह प्रधान पार्षदोंमेंसे एक हैं। इनका स्वरूप भगवान् विष्णुके ही सदृश नवघनश्याम, चतुर्भुज और पीताम्बरालंकृत है। भगवान्के दिव्य वैकुण्ठधाममें ये उनकी सेवामें सदा सन्नद्ध रहते हैं।

श्रीहनुमान्जी

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

भगवान् शंकरके अंशसे वायुके द्वारा कपिराज केसरीकी पत्नी अंजनामें हनुमान्जीका प्रादुर्भाव हुआ। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी सेवा शंकरजी अपने रूपसे तो कर नहीं सकते थे, अतएव उन्होंने ग्यारहवें रुद्ररूपको इस प्रकार वानररूपमें अवतरित किया। जन्मके कुछ ही समय पश्चात् महावीर हनुमान्जीने उगते हुए सूर्यको कोई लाल-लाल फल समझा और उसे निगलने आकाशकी ओर दौड़ पड़े। उस दिन सूर्यग्रहणका समय था। राहुने देखा कि कोई दूसरा ही सूर्यको पकड़ने आ रहा है, तब वह उस आनेवालेको पकड़ने चला, किंतु जब वायुपुत्र उसकी ओर बढ़े, तब वह डरकर भागा। राहुने इन्द्रसे पुकार की। ऐरावतपर चढ़कर इन्द्रको आते देख पवनकुमारने ऐरावतको कोई बड़ा-सा सफेद फल समझा और उसीको पकड़ने लपके। घबराकर देवराजने वज्रसे प्रहार किया। वज्रसे इनकी ठोड़ी (हनु)-पर चोट लगनेसे वह कुछ टेढ़ी हो गयी, इसीसे ये हनुमान् कहलाने लगे। वज्र लगनेपर ये मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पुत्रको मूर्च्छित देखकर वायुदेव बड़े कुपित हुए। उन्होंने अपनी गति बन्द कर ली। श्वास रुकनेसे देवता भी व्याकुल हो गये। अन्तमें हनुमान्को सभी लोकपालोंने अमर होने तथा अग्नि-जल-वायु आदिसे अभय होनेका वरदान देकर वायुदेवको सन्तुष्ट किया।

जातिस्वभावसे चंचल हनुमान् ऋषियोंके आश्रमोंमें वृक्षोंको सहज चपलतावश तोड़ देते तथा आश्रमकी वस्तुओंको अस्त-व्यस्त कर देते थे। अतः ऋषियोंने इन्हें शाप दिया—'तुम अपना बल भूले रहोगे। जब कोई तुम्हें स्मरण दिलायेगा, तभी तुम्हें अपने बलका भान होगा।' तबसे ये सामान्य वानरकी भाँति रहने लगे। माताके आदेशसे सूर्यनारायणके समीप जाकर वेद-वेदांग-प्रभृति समस्त शास्त्रों एवं कलाओंका इन्होंने अध्ययन किया। उसके पश्चात् किष्किन्धामें आकर सुग्रीवके साथ रहने लगे। सुग्रीवने इन्हें अपना निजी सचिव बना लिया। जब बालिने सुग्रीवको मारकर निकाल दिया, तब भी ये सुग्रीवके साथ ही रहे। सुग्रीवके

विपत्तिके साथी होकर ऋष्यमूकपर ये उनके साथ ही रहते थे।

बचपनमें माता अंजनासे बार-बार आग्रहपूर्वक इन्होंने अनादि रामचरित सुना था। अध्ययनके समय वेदमें, पुराणोंमें श्रीरामकथाका अध्ययन किया था। किष्किन्धा आनेपर यह भी ज्ञात हो गया कि परात्पर प्रभुने अयोध्यामें अवतार धारण कर लिया। अब वे बड़ी उत्कण्ठासे अपने स्वामीके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—'जो निरन्तर भगवान्की कृपाकी आतुर प्रतीक्षा करते हुए अपने प्रारब्धसे प्राप्त सुख-दु:खको सन्तोषपूर्वक भोगते रहकर हृदय, वाणी तथा शरीरसे भगवान्को प्रणाम करता रहता है—हृदयसे भगवान्का चिन्तन, वाणीसे भगवान्के नाम-गुणका गान-कीर्तन और शरीरसे भगवान्का पूजन करता रहता है, वह मुक्तिपदका स्वत्वाधिकारी हो जाता है।' श्रीहनुमान्जी तो जन्मसे ही मायाके बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त थे। वे तो अहर्निश अपने स्वामी श्रीरामके ही चिन्तनमें लगे रहते थे। अन्तमें श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ रावणके द्वारा सीताजीके चुरा लिये जानेपर उन्हें ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूकके पास पहुँचे। सुग्रीवको शंका हुई कि इन राजकुमारोंको बालिने मुझे मारनेको न भेजा हो। अत: परिचय जाननेके लिये उन्होंने हनुमान्जीको भेजा। विप्रवेष धारणकर हनुमान्जी आये और परिचय पूछकर जब अपने स्वामीको पहचाना, तब वे उनके चरणोंपर गिर पड़े। वे रोते-रोते कहने लगे—

एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

श्रीरामने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। तभीसे हनुमान्जी श्रीअवधेशकुमारके चरणोंके समीप ही रहे। हनुमान्जीकी प्रार्थनासे भगवान्ने सुग्रीवसे मित्रता की और बालिको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य दिया। राज्यभोगमें सुग्रीवको प्रमत्त होते देख हनुमान्जीने ही उन्हें सीतान्वेषणके लिये सावधान किया। वे पवनकुमार ही वानरोंको एकत्र कर लाये। श्रीरामजीने उनको ही अपनी मुद्रिका दी। सौ योजन समुद्र लाँघनेका प्रश्न आनेपर जब जाम्बवन्तजीने हनुमान्जीको उनके बलका स्मरण दिलाकर कहा कि 'आपका तो अवतार ही रामकार्य सम्पन्न करनेके लिये हुआ है,' तब अपनी शक्तिका बोधकर केसरीकिशोर उठ खड़े हुए। उनके बल और बुद्धिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये देवताओंके द्वारा भेजी हुई नागमाता सुरसाको सन्तुष्ट करके समुद्रमें छिपी राक्षसी सिंहिकाको मारकर हनुमान्जी लंका पहुँचे। द्वाररक्षिका लंकिनीको एक घूँसेमें सीधा करके छोटा रूप धारणकर ये लंकामें रात्रिके समय प्रविष्ट हुए। विभीषणजीसे पता पाकर अशोकवाटिकामें जानकीजीके दर्शन किये। उनको आश्वासन देकर अशोकवनको उजाड़ डाला। रावणके भेजे राक्षसों तथा रावणपुत्र अक्षयकुमारको मार दिया। मेघनाद इन्हें ब्रह्मास्त्रमें बाँधकर राजसभामें ले गया। वहाँ रावणको भी हनुमान्जीने अभिमान छोड़कर भगवान्की शरण लेनेकी शिक्षा दी। राक्षसराजकी आज्ञासे इनकी पूँछमें आग लगा दी गयी। इन्होंने उसी अग्निसे सारी लंका फूँक दी। सीताजीसे चिह्नस्वरूप चूड़ामणि लेकर भगवान्के समीप लौट आये।

समाचार पाकर श्रीरामने युद्धके लिये प्रस्थान किया। समुद्रपर सेतु बाँधा गया। संग्राम हुआ और अन्तमें रावण अपने समस्त अनुचर, बन्धु-बान्धवोंके साथ मारा गया। युद्धमें श्रीहनुमान्जीका पराक्रम, उनका शौर्य, उनकी वीरता सर्वोपरि रही। वानरी सेनाके संकटके समय वे सदा सहायक रहे। राक्षस उनकी हुंकारसे ही काँपते थे। लक्ष्मणजी जब मेघनादकी शक्तिसे मूर्च्छित हो गये, तब मार्गमें पाखण्डी कालनेमिको मारकर द्रोणाचलको हनुमान्जी उखाड़ लाये और इस प्रकार संजीवनी ओषधि आनेसे लक्ष्मणजीको चेतना प्राप्त हुई। मायावी अहिरावण जब माया करके राम-लक्ष्मणको युद्धभूमिसे चुरा ले गया, तब पाताल जाकर अहिरावणका वध करके हनुमान्जी श्रीरामजीको भाई लक्ष्मणजीके साथ ले आये। रावणवधका समाचार

श्रीजानकीको सुनानेका सौभाग्य और 'श्रीराम लौट रहे हैं'—यह आनन्ददायक समाचार भरतजीको देनेका गौरव भी प्रभुने अपने प्रिय सेवक हनुमान्‌जीको ही दिया।

हनुमान्‌जी विद्या, बुद्धि, ज्ञान तथा पराक्रमकी मूर्ति हैं, किंतु इतना सब होनेपर भी अभिमान उन्हें छूतक नहीं गया। जब वे लंका जलाकर अकेले ही रावणका मान-मर्दन करके प्रभुके पास लौटे और प्रभुने पूछा कि 'त्रिभुवन-विजयी रावणकी लंकाको तुम कैसे जला सके?' तब उन्होंने उत्तर दिया—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

हनुमान्‌जी आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। व्याकरणके महान् पण्डित हैं, वेदज्ञ हैं, ज्ञानिशिरोमणि हैं, बड़े विचारशील, तीक्ष्णबुद्धि तथा अतुलपराक्रमी हैं। श्रीहनुमान्‌जी बहुत निपुण संगीतज्ञ और गायक भी हैं। एक बार देव-ऋषि-दानवोंके एक महान् सम्मेलनमें जलाशयके तटपर भगवान् शंकर तथा देवर्षि नारदजी आदि गा रहे थे। अन्यान्य देव-ऋषि-दानव भी योग दे रहे थे। इतनेमें ही हनुमान्‌जीने मधुर स्वरसे ऐसा सुन्दर गान आरम्भ किया कि जिसे सुनकर उन सबके मुख म्लान हो गये। जो बड़े उत्साहसे गा-बजा रहे थे और वे सभी अपना-अपना गान छोड़कर मोहित हो गये तथा चुप होकर सुनने लगे। उस समय केवल हनुमान्‌जी ही गा रहे थे—

म्लानमम्लानमभवत् कृशाः पुष्टास्तदाभवन्॥
स्वां स्वां गीतिमतः सर्वे तिरस्कृत्यैव मूर्च्छिताः।
तूष्णीं सर्वे समभवन्देवर्षिगणदानवाः॥
एकः स हनुमान् गाता श्रोतारः सर्व एव ते।

(पद्मपुराण, पातालखण्ड ११४। १६७—१६९)

जबतक पृथ्वीपर श्रीरामकी कथा रहेगी, तबतक पृथ्वीपर रहनेका वरदान उन्होंने स्वयं प्रभुसे माँग लिया है। श्रीरामजीके अश्वमेधयज्ञमें अश्वकी रक्षा करते समय जब अनेक महासंग्राम हुए, तब उनमें हनुमान्‌जीका पराक्रम ही सर्वत्र विजयी हुआ। महाभारतमें भी केसरीकुमारका चरित है। वे अर्जुनके रथकी ध्वजापर बैठे रहते थे। उनके बैठे रहनेसे अर्जुनके रथको कोई पीछे नहीं हटा सकता था। कई अवसरोंपर उन्होंने अर्जुनकी रक्षा भी की। एक बार भीम, अर्जुन और गरुडजीको आपने अभिमानसे भी बचाया था।

कहते हैं कि हनुमान्‌जीने अपने वज्रनखसे पर्वतकी शिलाओंपर एक रामचरित-काव्य लिखा था। उसे देखकर महर्षि वाल्मीकिको दुःख हुआ कि यदि यह काव्य लोकमें प्रचलित हुआ तो मेरे आदिकाव्यका समादर न होगा। ऋषिको सन्तुष्ट करनेके लिये हनुमान्‌जीने वे शिलाएँ समुद्रमें डाल दीं। सच्चे भक्तमें यश, मान, बड़ाईकी इच्छाका लेश भी नहीं होता। वह तो अपने प्रभुका पावन यश ही लोकमें गाता है।

श्रीरामकथा-श्रवण, राम-नाम-कीर्तनके हनुमान्‌जी अनन्यप्रेमी हैं। जहाँ भी राम-नामका कीर्तन या राम-कथा होती है, वहाँ वे गुप्तरूपसे आरम्भमें ही पहुँच जाते हैं। दोनों हाथ जोड़कर सिरसे लगाये सबसे अन्ततक वहाँ वे खड़े ही रहते हैं। प्रेमके कारण उनके नेत्रोंसे बराबर आँसू झरते रहते हैं।

श्रीप्रियादासजी महाराज हनुमान्‌जीकी भक्तिका वर्णन करते हुए एक प्रसंगमें कहते हैं—

रतन अपार क्षीरसागर उधार किये लिये हित चाय कै बनाय माला करी है।
सब सुख साज रघुनाथ महाराज जू को भक्तिसों विभीषणजू आनि भेंट धरी है॥

सभा ही की चाह अवगाह हनुमान गरे डारि दई सुधि भई मति अरबरी है।
राम बिन काम कौन फोरि मनि दीन्हे डारि खोलि त्वचा नामही दिखायो बुद्धि हरी है॥ २७॥

कवित्तका भाव इस प्रकार है—

रावणके कोषमें समुद्र-मन्थनके समय निकले सभी दिव्य रत्न संचित थे। उसके वधके बाद जब विभीषणका राज्याभिषेक हुआ तो उन्होंने उन दिव्य रत्नोंकी एक माला बनायी और कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उसे श्रीराम प्रभुके चरणोंमें अत्यन्त भक्तिपूर्वक निवेदित किया। उस दिव्य रत्नमालाके लिये समस्त वानर-भालुओंका मन लालायित हो गया, वहाँ श्रीहनुमान्‌जी भी थे, परंतु उनका मन तो अपने आराध्य प्रभुके रूप-सुधाका पान करनेमें ही मग्न था। यह देखकर प्रभुने वह माला श्रीहनुमान्‌जीके गलेमें डाल दी। हनुमान्‌जीने उस मालाको उलट-पुलटकर देखा, फिर उसके एक-एक रत्नको निकालकर अपने वज्रसदृश दाँतोंसे तोड़-तोड़कर देखने लगे। उन्हें ऐसा करते देख विभीषणजीने पूछा—'हनुमान्‌जी! आप इन अमूल्य रत्नोंको क्यों नष्ट कर रहे हैं?' हनुमान्‌जीने अनमने भावसे उत्तर दिया—'इन रत्नोंमें प्रभु श्रीरामका नाम अंकित नहीं है, इसलिये ये मेरे लिये मूल्यहीन हैं।' इसपर विभीषणजीने कहा—'आपके शरीरपर भी तो कहीं राम-नाम अंकित नहीं है, फिर इसे आप क्यों धारण किये हैं?' इसपर श्रीहनुमान्‌जीने अपना हृदय चीरकर दिखलाया, तो उनके अन्तस्तलमें विराजमान श्रीराम-सीताके दर्शन सबको हुए।

श्रीजाम्बवान्‌जी

ऋक्षराज जाम्बवान् ब्रह्माके अंशावतार हैं। एक रूपसे सृष्टि करते-करते ही दूसरे रूपसे भगवान्‌की आराधना, सेवा एवं सहायता की जा सके, इसी भावसे वे जाम्बवान्‌के रूपमें अवतीर्ण हुए थे। ऋक्षके रूपमें अवतीर्ण होनेका कारण यह था कि उन्होंने रावणको वर दे दिया था कि उसकी मृत्यु नर-वानर आदिके अतिरिक्त किसी देव आदिसे न हो। अब इसी रूपमें रहकर रामजीकी सहायता पहुँचायी जा सकती थी। जब भगवान् विष्णुने वामनका अवतार धारणकर बलिकी यज्ञशालामें गमन किया और संकल्प लेनेके बाद अपना विराट् रूप प्रकट किया तब इन्होंने उनके त्रिलोकीको नापते-नापते इनकी सात प्रदक्षिणा कर लीं। इनकी इस अपूर्व शक्ति और साहसको देखकर बड़े-बड़े मुनि और देवता इनकी प्रशंसा करने लगे। रामावतारमें तो मानो ये भगवान्‌के प्रधान मन्त्री ही थे। सीताके अन्वेषणमें ये हनुमान्‌जीके साथ थे और जब समुद्रपार जानेकी किसीको हिम्मत न पड़ी, तब इन्होंने हनुमान्‌जीको इनकी शक्तिका स्मरण कराया और लंकामें जाकर क्या करना चाहिये, इस विषयमें सम्मति दी। समय-समयपर सलाह देनेके अलावा ये लड़ते भी थे और लंकाके युद्धमें इन्होंने बड़े-बड़े राक्षसोंका संहार किया।

भगवान् रामके चरणोंमें इनका इतना प्रेम था कि उनके अयोध्या पहुँचनेपर इन्होंने वहाँसे अपने घर जाना अस्वीकार कर दिया और हठ किया कि मैं आपके चरणोंको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। जबतक भगवान् रामने द्वापरमें आकर दर्शन देनेकी प्रतिज्ञा नहीं की तबतक ये अपने हठपर अड़े ही रहे। अन्ततः उनकी आज्ञा मानकर अपने घर आये और नित्य भगवान्‌की प्रतीक्षामें उन्हींका चिन्तन-स्मरण करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

द्वापरयुगमें श्रीकृष्णावतार हुआ। उस समय द्वारकाके एक यदुवंशी सत्राजित्‌ने सूर्यकी उपासनाकर स्यमन्तकमणि प्राप्त की। एक दिन स्यमन्तकमणिको पहनकर उसका छोटा भाई प्रसेन जंगलमें गया हुआ था, वहाँ एक सिंहने उसे मार डाला और मणिको छीन लिया। तत्पश्चात् ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने सिंहको मारकर

वह मणि ले ली। इधर द्वारकामें कानोकान यह बात फैलने लगी कि श्रीकृष्ण उस मणिको चाहते थे, उन्होंने ही प्रसेनको मारकर मणिको ले लिया होगा। यह बात भगवान्‌ने भी सुनी। यद्यपि लोकदृष्टिसे तो भगवान्‌ने कलंकके परिमार्जन और मणिके अन्वेषणके लिये ही यात्रा की, परंतु वास्तवमें बात यह थी कि उन्हें अपने पुराने भक्त जाम्बवान्‌को दर्शन देकर कृतार्थ करना था, जिनका एक-एक क्षण बड़ी व्याकुलताके साथ भगवान्‌की प्रतीक्षामें ही बीत रहा था।

हाँ, तो भगवान् कृष्ण जाम्बवान्‌के घर पहुँच गये। उस समय उनका पुत्र मणिके साथ खेलता हुआ पालनेमें झूल रहा था। अपरिचित मनुष्यको देखकर वह रोने लगा और मणिकी ओर भगवान्‌की दृष्टि देखकर उसकी धाई भी चिल्ला उठी। जाम्बवान् आये, भगवान्‌को इस रूपमें वे नहीं पहचान सके। भगवान्‌की कुछ ऐसी ही लीला थी। दोनोंमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ। सत्ताईस दिनतक लगातार द्वन्द्वयुद्ध करते-करते जब एकने भी हार नहीं मानी तब भगवान्‌ने एक घूँसा लगाया, जिससे तुरंत जाम्बवान्‌का शरीर शिथिल पड़ गया और उनके मनमें यह बात आयी कि मेरे प्रभुके अतिरिक्त और किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है कि मुझे इस प्रकार पराजित कर सके। यह भावना उठते ही देखते हैं तो उनके सामने धनुष-बाणधारी भगवान् रामचन्द्र खड़े हैं। उन्होंने अपने इष्टदेवको साष्टांग नमस्कार करके स्तुति की, षोडशोपचार-पूजा की और उपहारस्वरूप उस मणिके साथ अपनी कन्या जाम्बवतीका समर्पण कर दिया और इस प्रकार अपने जीवन और अपने सर्वस्वको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ाकर जीवनका सच्चा लाभ लिया। वास्तवमें प्रभुके चरणोंमें समर्पित हो जाना ही इस जीवनका परम और चरम लक्ष्य है।

श्रीसुग्रीवजी

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥

श्रीरामजी सुग्रीवसे कहते हैं—'भैया! सब भाई भरतके समान आदर्श नहीं हो सकते। सब पुत्र हमारी तरह पितृभक्त नहीं हो सकते और सभी सुहृद् तुम्हारी तरह दुःखके साथी नहीं हो सकते।'

सभी सम्बन्धोंके एकमात्र स्थान श्रीहरि ही हैं। उनसे जो भी सम्बन्ध जोड़ा जाय, उसे वे पूरा निभाते हैं। सच्ची लगन होनी चाहिये, एकनिष्ठ प्रेम होना चाहिये। प्रेमपाशमें बँधकर प्रभु स्वामी बनते हैं। वे सखा, सुहृद्, भाई, पुत्र, सेवक—सभी कुछ बननेको तैयार हैं। उन्हें शिष्टाचारकी आवश्यकता नहीं, वे सच्चा स्नेह चाहते हैं।

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥

(रा०च०मा० १। २९क)

सुग्रीवको भगवान्‌ने स्थान-स्थानपर अपना सखाभक्त माना है। बालि और सुग्रीव—ये दो भाई थे। दोनोंमें ही परस्पर बड़ा स्नेह था। बालि बड़ा था, इसलिये वही वानरोंका राजा था। एक बार एक राक्षस रात्रिमें किष्किन्धा आया। आकर बड़े जोरसे गरजने लगा। बालि उसे मारनेके लिये नगरसे अकेला ही निकला। सुग्रीव भी भाईके स्नेहके कारण उसके पीछे-पीछे चला। वह राक्षस एक बड़ी भारी गुफामें घुस गया। बालि अपने छोटे भाईको द्वारपर बैठाकर उस राक्षसको मारने उसके पीछे-पीछे उस गुफामें चला गया। सुग्रीवको बैठे-बैठे एक माह बीत गया, किंतु बालि उस गुफामेंसे नहीं निकला। एक महीनेके बाद

गुफामेंसे रक्तकी धार निकली। सुग्रीवने समझा, मेरा भाई मर गया है, अब वह राक्षस बाहर निकलकर मुझे भी मार डालेगा, अतः उस गुफाको एक बड़ी भारी शिलासे ढककर वह किष्किन्धापुरी लौट गया। मन्त्रियोंने जब राजधानीको राजासे हीन देखा, तब उन्होंने सुग्रीवको राजा बना दिया। थोड़े ही दिनोंमें बालि आ गया। सुग्रीवको राजगद्दीपर बैठा देखकर वह बिना ही जाँच-पड़ताल किये क्रोधसे आग-बबूला हो गया और उसे मारनेको दौड़ा। सुग्रीव भी अपनी प्राणरक्षाके लिये भागा। भागते-भागते वह मतंग ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचा। बालि वहाँ शापवश जा नहीं सकता था। अतः वह लौट आया और सुग्रीवका धन-स्त्री आदि सब कुछ उसने छीन लिया। राज्य, स्त्री और धनके हरण होनेपर दुखी सुग्रीव अपने हनुमान् आदि चार मन्त्रियोंके साथ ऋष्यमूकपर्वतपर रहने लगा।

सीताजीका हरण हो जानेपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणजीके साथ उन्हें खोजते-खोजते शबरीके बतानेपर ऋष्यमूकपर्वतपर आये। सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर हनुमान्‌जीको भेजा। हनुमान्‌जी उन्हें आदरपूर्वक ले आये। अग्निके साक्षित्वमें श्रीराम एवं सुग्रीवमें मित्रता हुई। सुग्रीवने अपना सब दुःख भगवान्‌को सुनाया। भगवान्‌ने कहा—'मैं बालिको एक ही बाणसे मार दूँगा।' सुग्रीवने परीक्षाके लिये अस्थिसमूह दिखाया।········श्रीरामजीने उसे पैरके अँगूठेसे ही गिरा दिया। फिर सात ताड़वृक्षोंको एक ही बाणसे गिरा दिया। सुग्रीवको विश्वास हो गया कि श्रीरामजी बालिको मार देंगे। सुग्रीवको लेकर श्रीरामजी बालिके यहाँ गये। बालि लड़ने आया, दोनों भाइयोंमें बड़ा युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने तककर एक ऐसा बाण बालिको मारा कि वह मर गया।

बालिके मरनेपर श्रीरामजीकी आज्ञासे सुग्रीव राजा बनाये गये और बालिके पुत्र अंगदको युवराजका पद दिया गया। तदनन्तर सुग्रीवने वानरोंको इधर-उधर श्रीसीताजीकी खोजके लिये भेजा और श्रीहनुमान्‌जीद्वारा सीताजीका समाचार पाकर वे अपनी असंख्य वानरी सेना लेकर लंकापर चढ़ गये। वहाँ उन्होंने बड़ा पुरुषार्थ दिखलाया। सुग्रीवने संग्राममें रावणतकको इतना छकाया कि वह भी इनके नामसे डरने लगा।

लंका-विजय करके ये भी श्रीरामजीके साथ श्रीअवधपुरी आये और वहाँ श्रीरामजीने उनका परिचय कराते हुए गुरु वसिष्ठजीसे कहा—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

(रा०च०मा० ७।८।७-८)

श्रीरामजीने सुग्रीवजीको स्थान-स्थानपर 'प्रिय सखा' कहा है और अपने मुखसे स्पष्ट कहा है कि 'तुम्हारे समान आदर्श निःस्वार्थ सखा संसारमें बिरले ही होते हैं।' श्रीरामजीने थोड़े दिन इन्हें अवधपुरीमें रखकर विदा कर दिया और ये भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण-कीर्तन करते हुए अपनी पुरीमें रहने लगे। अन्तमें जब भगवान् निजलोक पधारे, तब ये भी आ गये और भगवान्‌के साथ ही साकेत गये। सुग्रीव-जैसे भगवत्कृपाप्राप्त सखा संसारमें बिरले ही होते हैं। उनका समस्त जीवन रामकाज और रामस्मरणमें ही बीता। यही जगमें जीवनका परम लाभ है। भगवान्‌से प्रार्थना करते हुए सुग्रीवजी कहते हैं—

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसंगीतकथासु वाणी।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम्॥
त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्त्रं स शृणोतु कर्णः।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्त्रं तव मन्दिराणि॥

अङ्गानि ते पादरजोविमिश्रतीर्थानि बिभ्रत्वहिशत्रुकेतो।
शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यैर्जुष्टं पदं राम नमत्वजस्रम्॥

(अ० रा० ४।१।९१—९३)

'प्रभो! मेरी चित्तवृत्ति सदा आपके चरण-कमलोंमें लगी रहे, मेरी वाणी सदा आपका नामकीर्तन एवं लीलागान करती रहे, हाथ आपके भक्तोंकी सेवामें लगे रहें और मेरा शरीर (आपके पाद-स्पर्श आदिके मिससे) सदा आपका अंग-संग करता रहे। मेरे नेत्र सर्वदा आपकी मूर्ति, आपके भक्त और अपने गुरुका दर्शन करते रहें; कान निरन्तर आपके दिव्य जन्म-कर्मोंकी कथा सुनते रहें और मेरे पैर सदा आपके मन्दिरोंकी यात्रा करते रहें। हे गरुडध्वज! मेरा शरीर आपकी चरण-रजसे युक्त तीर्थोदकको धारण करे और मेरा सिर निरन्तर आपके उन चरणोंमें प्रणाम किया करे, जिनकी शिव और ब्रह्मादि देवगण भी सदैव सेवा करते हैं।'

श्रीविभीषणजी

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥*

शरणागतिके ज्वलन्त उदाहरण श्रीविभीषणजी हैं। ये राक्षसवंशमें उत्पन्न होकर भी वैष्णवाग्रगण्य बने। पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा हुए, विश्रवाके सबसे बड़े पुत्र कुबेर हुए, जिन्हें ब्रह्माजीने चतुर्थ प्रजापति बनाया। विश्रवाके एक असुरकन्यासे रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण—ये तीन पुत्र और हुए। तीनोंने ही घोर तप किया। उनकी उग्र तपस्या देखकर ब्रह्माजी उनके सामने प्रकट हुए। वरदान माँगनेको कहा। रावणने त्रैलोक्यविजयी होनेका वरदान माँगा, कुम्भकर्णने छः महीनेकी नींद माँगी। किंतु विभीषणजीने कुछ भी नहीं माँगा। उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—'मुझे भगवद्भक्ति प्रदान कीजिये।' सबको यथायोग्य वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और रावणने कुबेरको निकालकर असुरोंकी प्राचीन पुरी लंकाको अपनी राजधानी बनाया। विभीषण भी अपने भाई रावणके साथ लंकापुरीमें आकर रहने लगे।

रावणने त्रैलोक्यविजय किया, वह दण्डकारण्यमें पंचवटीसे जगन्माता सीताजीको हर लाया। विभीषणजीने उसे बहुत समझाया 'दूसरेकी स्त्रीको ऐसे हर लाना ठीक नहीं। तुम समझते नहीं, श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं; उनसे विरोध करना ठीक नहीं।' रावणने अपने भक्त भाईकी एक भी बात नहीं मानी, वह अपनी जिदपर अड़ा रहा।

सीताजीको खोजनेके लिये लंकामें श्रीहनुमान्जी आये। द्वार-द्वार और गली-गलीमें वे सीताजीको खोजते फिरे। उसी खोजमें उन्होंने विभीषणजीका घर देखा। घरके चारों ओर रामनाम अंकित थे। तुलसीके वृक्ष लगे हुए थे। देखकर हनुमान्जी आश्चर्यमें पड़ गये और सोचने लगे—

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥

अरुणोदयका समय था, उसी समय श्रीरामनाम स्मरण करते हुए विभीषणजी जागे। हनुमान्जीको अभूतपूर्व आनन्द हुआ।

'हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी।'

परस्परमें दो अदृश्य तार मिलकर एक हो गये। अपनेको अपनेने पहचान लिया। विभीषणजी बोले—आपके प्रति हमारा स्वाभाविक प्रेम हो रहा है। भाई-बन्धुओंमें तो मेरा प्रेम होता नहीं, इसलिये या तो आप

* भगवान् कहते हैं, जो एक बार भी आर्त होकर, शरणागत बनकर, सच्चे हृदयसे 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे अभय चाहता है, उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, ऐसा मेरा व्रत है।

साक्षात् श्रीराम हैं या उनके दास हैं—

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

तब हनुमान्‌जीने अपना पूरा परिचय दिया। भगवान्‌के दूत जानकर विभीषणजी प्रेमसे अधीर हो उठे और अत्यन्त दीनतासे बोले—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

हनुमान्‌जीने कहा—'भैया! तुम अपनेको इतना नीच, दीन क्यों समझते हो? अरे, प्रभु तो दीनोंके ही नाथ हैं, पतितोंके ही पावन हैं; तुम स्वयं सोचो मैं ही कौन-सा कुलीन हूँ। जब मुझ-जैसे चंचल वानरको उन्होंने अपना लिया तो फिर तुम्हारी तो बात ही क्या?' विभीषणजी बोले—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

परस्परमें बातें हुईं। हनुमान्‌जीके द्वारा सीताजीका पता पूछनेपर उन्होंने सब बातें बतायीं। सीताजीकी खबर पाकर हनुमान्‌जीने उत्पात शुरू किया, वे पकड़े गये। उन्हें मारनेकी आज्ञा हुई। विभीषणजीने दूतको मारना अनीति बताकर कुछ और दण्ड देनेको कहा। वह ऐसा दण्ड हुआ कि विभीषणजीके मन्दिरको छोड़कर पूरी लंका जल गयी।

श्रीरामजीने लंकापर चढ़ाई कर दी। विभीषणजीने रावणको बहुत समझाया कि जानकीजीको दे दो। रावणने क्रोधमें आकर विभीषणजीको लात मारी और कहा—'दुष्ट! मेरा खाता है, गीत उनके गाता है? वहीं चला जा, यहाँ अब मत रहना।' जब भाईने देशनिकालेकी आज्ञा दे दी तो विवश होकर उन्होंने घोषणा कर दी कि 'अच्छा, तो मैं प्रभुकी शरण जाता हूँ।' वे आकाशमार्गसे भगवान्‌के यहाँ पहुँचे। उन्हें राक्षस जानकर भालु-वानर भाँति-भाँतिके तर्क करने लगे। किसीने कुछ कहा, किसीने कुछ; किंतु शरणागतप्रतिपालक प्रभु बोले, 'उसने एक बार कहा है—मैं तुम्हारी शरण हूँ। बस, इतना ही पर्याप्त है; उसे अब मैं छोड़ नहीं सकता। प्रभुने उसे बुलाकर आते ही लंकाका राज्य दे दिया। विभीषणकी कामना तो प्रभुपादपद्मोंके स्पर्शसे नष्ट हो गयी थी, फिर भी प्रभु भक्तोंकी पूर्व कामनाओंको भी पूरा करते हैं। विभीषणने अपना सर्वस्व भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण कर दिया और हर प्रकारसे भगवान्‌की सेवा की।

रावण सपरिवार मारा गया। विभीषणको राज्य मिला। उन्होंने वानर-भालुओंका खूब सत्कार किया, पुष्पक विमानपर चढ़ाकर वे श्रीरामजीको अवधपुरीतक पहुँचाने गये। वहाँ भगवान्‌ने गुरुजीसे अपना प्रिय सखा बताकर इनकी बड़ी प्रशंसा की। भगवान्‌ने इनका बड़ा सम्मान किया और अजर-अमर होनेका आशीर्वाद दिया। प्रातःस्मरणीय सात चिरंजीवियोंमें भक्तवर विभीषणजी भी हैं और वे अभीतक वर्तमान हैं। भगवान् कितने भक्तवत्सल हैं, वे शरणागतके सब दोष भूल जाते हैं—

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥

श्रीप्रियादासजी विभीषणजीकी भक्तिका वर्णन एक प्रसंगके माध्यमसे निम्न कवित्तोंमें करते हैं—

भक्ति जो विभीषण की कहै ऐसो कौन जन ऐ पै कछु कही जात सुनो चितलाय कै।
चलत जहाज परी अटक विचार कियौ कोऊ अङ्गहीन नर दियौ लै बहाय कै॥
जाय लग्यौ टापू ताहि राक्षसनि गोद लियौ मोद भरि राजा पास गये किलकाय कै।
देखत सिंहासन ते कूदि परे नैन भरे याहि के आकार राम देखे भाग पाय कै॥ २८॥
देखत सिंहासन ते कूदि परे नैन भरे याहि के आकार राम देखे भाग पाय कै।
रचि कै सिंहासन पै लै बैठाये ताही छन राक्षसन रीझि देत मानि शुभ घरी है।
चाहत मुखारबिन्द अति ही आनन्द भरि ढरकत नैन नीर टेकि ठाड़ो छरी है॥

तऊ न प्रसन्न होत छन छन छीन ज्योति हूजिये कृपाल मति मेरी अति हरी है।
करो सिन्धु पार मेरे यही सुख सार दियो रतन अपार लाये वाही ठौर फेरी है॥ २९॥
रामनाम लिखि सीस मध्य धरि दियो याको यही जल पार करै भाव साँचो पायो है।
ताही ठौर बैठ्यौ मानो नयो और रूप भयो गयो जो जहाज सोई फिरि करि आयो है॥
लियो पहिचान पूछ्यो सब सौ बखान कियो हियो हुलसायो सुनि बिनै कै चढ़ायो है।
पर्‌यो नीर कूदि नेकु पाँय न परस कर्‌यो हर्‌यो मन देखि रघुनाथ नाम भायो है॥ ३०॥

कवित्तोंमें बताया गया है कि एक बारकी बात है, समुद्रमें एक जहाज जा रहा था, वह किसी कारणसे अटक गया। अनेक उपाय करनेपर भी जब जहाज न चला, तब समुद्रने रोका है और भेंट चाहता है, ऐसा मानकर नाविकोंने एक दुर्बल पंगु-मनुष्यको बलिदानकी तरह समुद्रमें बहा दिया। वह मरा नहीं, तरंगोंमें बहते-बहते लंका टापूमें जा लगा। राक्षस उसे लेकर विभीषणजीके पास आये, उसे देखते ही विभीषणजी सिंहासनसे कूद पड़े, उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—श्रीरामचन्द्रजी भी इसी आकारके थे, बड़े भाग्यसे आज इनका दर्शन हुआ है। विभीषणजीने उस मनुष्यको वस्त्र और अलंकारोंसे सजाकर सुसज्जित सिंहासनपर बैठाया और अनेक प्रकारसे उसका सम्मान किया। फिर भी वह मनुष्य प्रसन्न नहीं हो रहा था। क्षण-क्षणमें उसकी कान्ति क्षीण हो रही थी। तब विभीषणने प्रार्थना की कि प्रभो! कृपा कीजिये, सेवाके लिये मुझे आज्ञा दीजिये। यह सुनकर उस मनुष्यने कहा—मुझे समुद्रके उस पार पहुँचा दो, इसीमें मुझे बड़ा भारी सुख होगा। तब बहुमूल्य अपार रत्नराशि भेंटमें उसे देकर विभीषणजी समुद्रतटपर फिर ले आये। विभीषणजीने उस मनुष्यके सिरपर श्रीरामनाम लिखकर रख दिया और कहा कि यही रामनाम तुम्हें समुद्रसे पार कर देगा। विभीषणकी कृपासे उस मनुष्यमें भी सच्चा प्रेम और विश्वास उत्पन्न हो गया और वह उसी ठौर बैठ गया। संयोगवश वही जहाज फिर लौटकर आया, जिससे इसे गिराया गया था। जहाजपरके लोगोंने इसे पहचान लिया। पूछनेपर उसने उल्लासपूर्वक सब वृत्तान्त बताया। सुनकर लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन लोगोंने बड़ी अनुनय-विनय करके उस मनुष्यको जहाजपर चढ़ा लिया। लोभवश नाविकोंने उससे रत्नराशि छीननी चाही, तब वह जलमें कूद पड़ा और थलकी तरह जलमें चलने लगा। उसके पैरोंमें जल छूतक नहीं रहा था। यह देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये और उससे इसका कारण पूछा। उसने विभीषणद्वारा बतायी गयी श्रीरामनाम-महिमा सबको बतायी। अब तो सब बहुत पछताये, क्षमा माँगी और नाममें सबका अपार प्रेम हो गया। ऐसे श्रीरामनिष्ठ भक्त थे विभीषणजी!

श्रीशबरीजी

'पवित्र जीवनके बिना पवित्रतम परमात्माको कोई नहीं प्राप्त कर सकता।' उषःकालमें पम्पासरके तटपर महर्षि मतंग अपने शिष्योंसे कह रहे थे। 'अतः मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्रताका पालन करो। शुचि भोजन, शुचि परिधान और अपना प्रत्येक व्यवहार पवित्र होने दो। जीवमात्रपर दया और भगवन्नाममें अनुरक्तिका सदा ध्यान रखो। तभी स्थावर-जंगम, लता-वृक्ष आदि विश्वकी प्रत्येक वस्तुमें उन्हें देख सकोगे। यही सच्चा धर्म है। जाति-कुलकी बाधासे यह धर्म सदा मुक्त है।'

महर्षि और उनके शिष्यगण चले गये थे। शबरी उनके चरण-चिह्नोंपर लोट रही थी, जैसे उसे कोई अमूल्य निधि मिल गयी हो, वृक्षकी ओटसे ऋषिके समस्त उपदेश-आदेश सुन लिये थे उसने। उसकी आँखें बरस रही थीं।

शबरीका मन उसके शैशवसे ही अशान्त था। भोले-भाले पशु-पक्षियोंकी हत्या देखकर वह सिहर

उठती थी। उनकी लहू-लूहान देह देखकर वह अपनी आँखें बन्द कर लेती थी। अकेले कोनेमें मुँह छिपाकर रोने लगती थी।

चिन्ता, शोक और क्लेशसे उसके दिन बीतते रहे। वह नवयौवन-सम्पन्ना नारी बनी। विवाहकी तैयारी हो गयी। पति वीर था उसका। एक बाणसे दो-दो पक्षियोंको मार लेता था। तेज-से-तेज दौड़ता हुआ हिरन उसकी आँखोंके सामनेसे नहीं बच सकता था। प्रशंसा शबरीने भी सुनी। पर वह छटपटा उठी। एकान्तमें जाकर अशान्त मनसे विश्वके प्राणाधारसे प्रार्थना करने लगी, 'देव! मुझे पापोंसे बचाइये। मैं अधमसे भी अधम मूर्ख नारी हूँ। मुझे पथका ज्ञान नहीं। आप मेरी रक्षा करें, नाथ! मैं आपकी शरण हूँ।' प्रार्थना करते-करते रात अधिक हो गयी। शबरीने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

अर्धरात्रिका समय था। सर्वत्र नीरवताका साम्राज्य था। आकाशमें तारे किंकर्तव्यविमूढ़ हो टुकुर-टुकुर ताक रहे थे। शबरी चुपकेसे दबे पाँव घरसे निकल पड़ी और घने जंगलोंमें जाकर विलीन हो गयी।

कण्टकाकीर्ण पथ, नदी, वन और पर्वतका उसे ध्यान नहीं था। वह भागती चली जा रही थी— अनिश्चित स्थानकी ओर। उस समय उसे केवल यही ध्यान था कि मैं अपने माँ-बापके हाथ न आ जाऊँ। हिंसासे बचकर आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर प्रभु-भजन करूँ।

भागनेमें उसे अपने तन-मनकी सुधि नहीं थी। न क्षुधा थी न तृषा। दो दिन बाद वह पम्पासरपर पहुँची थी। वह थक गयी थी। प्रातः हो चला था। पूर्व क्षितिजपर अरुणिमा बिखर गयी थी। उसी समय स्नानार्थी मतंग ऋषिकी चर्चा उसने सुन ली थी। महर्षिके दर्शनसे अद्भुत प्रभाव उसके मनपर पड़ा था। अपूर्व शान्तिका उसे आज अनुभव हुआ था। वहीं रहनेका उसने निश्चय कर लिया। पर 'उसके रहनेसे ऋषियोंके तपमें विघ्न पड़ेगा' इस विचारसे उसने अपने रहनेके लिये ऋषियोंके आश्रमसे दूर एक छोटी-सी कुटिया बना ली।

उसने समझ लिया था भगवान्के प्राणाधार उनके भक्त होते हैं। भक्तोंकी कृपा हो जानेपर भगवद्दर्शन निश्चय ही हो जायँगे। वह एक पहर रात्रि रहते ही ऋषियोंकी कुटियोंके आस-पासकी भूमि तथा पंपासरकी ओर जानेवाले मार्गपर झाड़ू लगा देती। एक कंकड़ी भी किसी महर्षि या उनके सौभाग्यशाली भक्तके चरणोंमें चुभ न जाय, इसलिये वह बार-बार झाड़ू लगाती और वहाँ जल छिड़ककर सुगन्धित पुष्प डाल देती। कुटियोंके द्वारपर सूखी लकड़ियोंका ढेर रख आती, जिससे समिधा लानेके लिये मुनिजनोंको किसी प्रकारका कष्ट न उठाना पड़े।

शबरीका यह नित्यका काम था। पर मुनिलोग चकित थे। गुप्त रीतिसे यह सेवाकार्य कौन कर जाता है—ऋषिगण कुछ तै नहीं कर पाये। शिष्योंने पहरा दिया। शबरी पकड़ ली गयी। मतंग ऋषिके सामने उपस्थित कर दिया शिष्योंने उसे।

शबरी काँप रही थी। उसमें बोलनेका साहस नहीं था। ऋषिकी अपराधिनी थी वह। मतंग ऋषिने उसे देखा। उनके मुँहसे निकल गया—'भगवद्भक्तिमें जाति बाधा नहीं डाल सकती। शबरी परम भगवद्भक्त है।' शिष्यगण एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। महर्षि मतंगने शबरीसे कहा, 'तुम मेरी कुटियाके पास ही रह जाओ। मैं कुटियाकी व्यवस्था कर देता हूँ।'

शबरी दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लेट गयी। नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। आज उसका भाग्योदय हुआ है। अब वह तपोधन महर्षिकी सेवा खुलकर कर सकेगी।

मतंग ऋषिपर अन्य ऋषिगण कुपित हो गये। 'अनधिकार चेष्टा की है महर्षिने! वे मर्यादाका उल्लंघन

कर रहे हैं।' नैष्ठिक तपोव्रतधारी ऋषि भगवद्भक्तकी महिमा नहीं समझ पा रहे थे।

'अधम कहींकी, स्पर्श कर दिया मुझे। पुनः स्नान करना पड़ेगा!' क्रोधसे उन्मत्त एक ऋषि शबरीको डाँटकर पुनः पम्पासरकी ओर चले।

शबरी ध्यानमग्न जा रही थी, उसे ऋषिका ध्यान नहीं था। ऋषिके बिगड़नेका भी उसे कोई ध्यान नहीं हुआ। वह अपने प्राणधनके रूप और नाममें छकी हुई सरोवरसे लौट रही थी!

ऋषिने स्नान नहीं किया। सरोवरमें कीड़े पड़ गये थे। जल रक्तमें परिणत हो गया था। खिन्न होकर वे स्नान किये बिना ही लौट आये।

× × ×

'आपके बिना मैं नहीं रह सकूँगी, मुनिनाथ! फूट-फूटकर रोती हुई शबरी महर्षि मतंगसे कह रही थी। 'मेरे आधार आप ही हैं। आपके ही द्वारा मुझे ऋषियोंकी थोड़ी-बहुत सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपके ही चरणारविन्दोंमें रहकर मैं भगवान्‌को पानेके लिये विकल हो रही हूँ। आपके बिना मैं कहींकी नहीं रहूँगी। परमार्थ-सिद्धि भी नहीं कर सकूँगी। देव! आपके साथ मैं भी अपना प्राण छोड़ दूँगी प्रभो!'

'अधीर मत हो, बेटी!' मतंग ऋषिने शबरीको समझाया। 'मेरा अन्तिम समय निकट आ गया है। मुझे जाना ही चाहिये। पर तू अभी ठहर जा। दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम यहाँ शीघ्र आनेवाले हैं। तू उनके दर्शन करेगी और तेरी सारी साधना पूरी हो जायगी।' ऋषिने नश्वर कायाको त्याग दिया। शबरी चिल्ला पड़ी।

× × ×

'महर्षिकी बात सत्य होगी ही। भगवान् दण्डकारण्यमें पधारेंगे। मुझे दर्शन मिलेगा।' शबरी आनन्दमें छकी रहने लगी। पत्तेकी खड़खड़ाहटसे भी वह चौंक जाती थी, कहीं भगवान् आ तो नहीं गये। वह प्रतिदिन मार्ग साफ करके मीलोंतक भगवान्‌को जोह आया करती थी। 'भगवान् पहले मेरे यहाँ पधारेंगे' ऋषियोंका निश्चय था।

भगवान् आये और आते ही शबरीकी कुटियाका पता पूछने लगे। ऋषि चकित थे। प्रेमरूप भगवान् शबरीकी कुटियामें पधारे। आह! शबरीका क्या कहना?

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥

(रा०च०मा० ३।३४।६-९)

वह प्रेममें आत्मविभोर हो गयी थी। वाणी उसकी अवरुद्ध हो गयी थी। चरणोंको पकड़कर अनन्त सौन्दर्यमय भगवान्‌की ओर टकटकी लगाकर देखने और आँसू बहानेके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं कर पा रही थी। उसके वशकी कोई बात नहीं थी।

'प्रभो! आपके लिये एकत्र किये हुए फल-मूलादि रखे हैं' बड़ी कठिनतासे अर्घ्य-पाद्य देनेके बाद शबरीने कहा। वह चुने हुए मीठे-मीठे बेरोंको प्रतिदिन भगवान्‌के लिये रखती थी। उन बेरोंको ले आयी। बड़े प्रेमसे देने लगी। भगवान् आनन्दपूर्वक खाने लगे। भगवान्‌को उन बेरोंमें इतना अधिक स्वाद और आनन्दका अनुभव हो रहा था, जैसे प्रेममयी जन्मदायिनी जननी कौसल्याजी उन्हें भोजन करा रही हों।

अपनी अभीप्सा-पूर्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे हाथ जोड़कर वह अत्यन्त प्रेमसे प्रार्थना करने लगी—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

शुद्ध प्रेम और दीनता देखकर भगवान्‌ने उत्तर दिया—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥

फिर भगवान्‌ने उसके सामने नवधा भक्तिका निरूपण किया। इसी बीचमें ऋषियोंका समुदाय (शबरीके आश्रममें) भगवान्‌के दर्शन-निमित्त आ गया। उस समय ऋषियोंका ज्ञानाभिमान लुप्त हो गया था। वे मतंग ऋषिके तिरस्कारके लिये मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे थे। उनके मुँहसे निकल गया—'शबरी! तू धन्य है।'

पम्पासरमें कीड़े पड़ने और जल रक्तके रूपमें परिणत होनेके सम्बन्धमें श्रीलक्ष्मणजीने ऋषियोंको बताया, 'मतंगमुनिसे द्वेष एवं बालब्रह्मचारिणी, संन्यासिनी, परम भगवद्भक्त और साध्वी शबरीके अपमान करनेसे तथा आपलोगोंके अभिमानसे सरोवरकी यह दुर्दशा हुई है। शबरीके पुनः स्पर्श करते ही वह शुद्ध हो जायगा।'

भगवान्‌के आदेशानुसार शबरीने सरोवरको स्पर्श किया, उसका जल पूर्ववत् निर्मल हो गया।

भगवान् उसकी कुटियासे चलने लगे। शबरी अधीर हो गयी। चरणोंकी दृढ़ भक्ति भगवान्‌ने उसे दे ही दी थी। अब उसे कुछ पाना शेष नहीं था। उसकी सारी आकांक्षा प्रभुने पूरी कर दी थी, अब वह भगवान्‌से विलग होकर किसलिये जीवन-धारण करती। ऋषिजनोंके सामने ही उसने अपनी पार्थिव देह त्याग दी। ऋषिगण शबरीका जय-जयकार करने लगे। धन्य थी शबरी और धन्य थी शबरीकी प्रेममयी अद्वितीय भक्ति!

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज शबरीके भक्तिमय दिव्य चरित्रको रूपायित करते हुए निम्न कवित्तोंमें लिखते हैं—

वन में रहति नाम शबरी कहत सब चाहत टहल साधु तन न्यूनताई है।
रजनी के शेष ऋषि आश्रम प्रवेश करि लकरीन बोझ धरि आवै मन भाई है॥
न्हाइबे को मग झारि कांकरनि बीनि डारि वेगि उठि जाइ नेकु देति न लखाई है।
उठत सबारे कहैं कौन धौं बुहारि गयो भयौ हिये सोच कोऊ बड़ो सुखदाई है॥ ३१॥
बड़ेई असङ्ग वे मतङ्ग रस रंग भरे धरे देखि बोझ कह्यो कौन चोर आयो है।
करै नित चोरी अहो गहो वाहि एक दिन बिना पाये प्रीति वाकी मन भरमायो है॥
बैठे निशि चौकी देत शिष्य सब सावधान आय गई गहि लई काँपै तनु नायो है।
देखत ही ऋषि जलधारा बही नैनन ते बैनन सों कह्यो जात कहा कछु पायो है॥ ३२॥
डीठि हू न सोहीं होत मानि तन गोत छोत परी जाय सोच सोत कैसे के निकारिये।
भक्ति को प्रताप ऋषि जानत निपट नीके कैऊ कोटि विप्रताई यापै वारि डारिये॥
दियो बास आश्रम में श्रवन में नाम दियो कियो सुनि रोष सबै कीनी पाँति न्यारिये।
शबरी सों कह्यो तुम राम दरसन करो मैं तो परलोक जात आज्ञा प्रभु पारिये॥ ३३॥
गुरू को वियोग हिये दारुन लै शोक दियो जियो नहीं जात तऊ राम आसा लागी है।
न्हाइबे की बाट निशि जात ही बुहारि सब भई यौं अबार ऋषि देखि व्यथा पागी है॥
छुयो गयो नेकु कहूँ खीझत अनेक भाँति करिकै विवेक गयो न्हान यह भागी है।
जल सों रुधिर भयौ नाना कृमि भरि गयो नयो पायो सोच तौ हू जानै न अभागी है॥ ३४॥

लावै बन बेर लागी राम की अवसेर भल चाखै धरि राखै फिर मीठे उन जोग हैं।
मारग में जाइ रहै लोचन बिछाइ कभूँ आवैं रघुराइ दृग पावैं निज भोग हैं॥
ऐसे ही बहुत दिन बीते मग जोहत ही आय गये औचक सो मिटे सब सोग हैं।
ऐ पै तनु नूनताई आई सुधि छिपी जाय पूछैं आप सबरी कहाँ ठाड़े सब लोग हैं॥ ३५॥
पूछि पूछि आये तहाँ शबरी स्थान जहाँ कहाँ वह भागवती देखौं दृग प्यासे हैं।
आय गई आश्रम में जानि कै पधारे आप दूर ही ते साष्टांग करी चख भासे हैं॥
रवकि उठाय लई विथा तनु दूर गई नई नीरझरी नैन परे प्रेम पासे हैं।
बैठे सुखपाइ फल खाइकै सराहे वेई कह्यो कहा कहौं मेरे मग दुख नासे हैं॥ ३६॥
करत हैं सोच सब ऋषि बैठे आश्रम में जल को बिगार सो सुधार कैसे कीजिये।
आवत सुने हैं वन पथ रघुनाथ कहूँ आवैं जब कहैं याको भेद कहि दीजिये॥
इतने ही माँझ सुनि सबरी के विराजे आनि गयो अभिमान चलो पग गहि लीजिये।
आय खुनसाय कही नीर कौ उपाय कहौ गहौ पग भीलिनी के छुये स्वच्छ भीजिये॥ ३७॥

इन कवित्तोंका भाव संक्षेपमें इस प्रकार है—

शबरी वनमें निवास करने लगीं, इनके मनमें साधु-सन्तोंकी टहल करनेकी बड़ी इच्छा थी, पर साधु-सन्त सेवा स्वीकार नहीं करेंगे, इसलिये थोड़ी रात रहनेपर ही वे ऋषियोंके आश्रममें छिपकर जातीं और लकड़ियोंके बोझ रख आतीं। प्रातःकाल शीघ्र ही उठकर सरोवरपर जाने-आनेके मार्गको झाड़-बुहारकर उसकी कंकड़ियोंको बीनकर अलग डाल देती थीं। यह सेवा करते हुए इनको कोई भी नहीं देख पाता था। सबेरे उठकर ऋषिलोग आपसमें कहते कि मार्गको नित्य कौन झाड़ जाता है और लकड़ियोंके बोझ कौन रख जाता है?

वनवासी ऋषियोंमें एक मतंग नामक ऋषि थे। वे परम विरक्त और भक्तिरसके आनन्दसे परिपूर्ण थे। लकड़ियोंके बोझ रखे देखकर वे अपने शिष्योंसे कहने लगे कि इस तपोवनमें ऐसा कौन आ गया? जो नित्य चोरीसे सेवा करता है। उसे एक दिन पकड़ो, उस सन्त-सेवा-प्रेमीभक्तके प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिये। आज्ञा पाकर मतंगजीके शिष्य सावधानीसे पहरा देने लगे। जैसे ही शबरीजीने लकड़ियोंका बोझ रखा, वैसे ही शिष्योंने उसे पकड़ लिया। वह बेचारी भय और संकोचवश काँपने लगी और उनके पैरोंपर गिर गयी। उस भक्तिमयी भीलनीको देखते ही मतंगजीके आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

मतंगजी भगवद्भक्तिके प्रभावको बहुत अच्छी तरह जानते थे। वे सोच-विचारकर शिष्योंसे बोले कि भक्तिके प्रतापसे यह इतनी पवित्र है कि इसके ऊपर कई कोटि ब्राह्मणता न्यौछावर कर देनी चाहिये। मतंगजीने शबरीको आश्रमकी एक पर्णकुटीमें रहनेका स्थान दिया और उसके कानमें **श्रीसीताराम** मन्त्र दिया और कहा, 'मैं प्रभुकी आज्ञासे उनके धामको जा रहा हूँ, तुम इसी आश्रममें रहकर भजन करो। यहीं श्रीरामजीका दर्शन प्राप्त करोगी।'

गुरुदेव श्रीमतंगजीके वियोगने शबरीजीके हृदयको बड़ा कठोर कष्ट दिया, उनसे जीवित नहीं रहा जाता था, पर श्रीरामजीके दर्शनोंकी आशा लगी थी, इसीलिये जीवित रहीं। मुनियोंके स्नानमार्गको थोड़ी रात रहे झाड़-बुहार आती थीं। एक दिन विलम्ब हो गया। स्नानके लिये ऋषि आने-जाने लगे, मार्ग सँकरा था, कोई ऋषि शबरीजीसे किंचित् छू गये। तब वे अनेक प्रकारसे शबरीजीको डाँटने-फटकारने लगे। शबरीजी भागकर अपनी कुटीमें चली आयीं। वे ऋषि सोच-विचार करके पुनः स्नान करनेके लिये गये। सरोवरमें

प्रवेश करते ही उसका जल अनेक कीड़ोंसे भरे हुए रुधिरके समान हो गया। इससे ऋषिको एक नया दु:ख उत्पन्न हो गया। भक्तस्पर्शसे अपनेको अपवित्र समझनेवाले मुनिके अपराधसे ही सरोवरका जल अपवित्र हुआ था, पर उस अभागेने यह रहस्य नहीं जाना। उलटे ऐसा समझा कि शबरीके स्पर्शजन्य दोषसे ही जल दूषित हो गया है।

शबरीजीको श्रीरामजीकी बड़ी भारी चिन्ता रहती, वे आगमनकी प्रतीक्षामें अति व्याकुल रहतीं। वनसे बेर बीन-बीनकर लातीं, चखकर देखतीं (जिस वृक्षके) जो फल मीठे होते, उन्हें श्रीरामके योग्य समझकर उनके लिये रखती थीं। उत्कण्ठावश अपने प्रभुके आगमनके मार्गमें जाकर उसे स्वच्छ एवं कोमल बनातीं एवं सोचा करतीं कि राघवेन्द्रसरकार कब आयेंगे ? कब मेरे नेत्र उसके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करेंगे ? इसी प्रकार प्रभुके आगमनकी बाट देखते-देखते जब बहुत दिन बीत गये, तब एक दिन अचानक ही श्रीरामजी आ गये। उसके सभी शोक मिट गये। परंतु उसे अपने शरीरके नीचकुलमें उत्पन्न होनेकी बात याद आ गयी, इसलिये वह संकोचवश भागकर कहीं छिप गयी।

भगवान् श्रीराम वनवासी लोगोंसे और ऋषियोंसे पूछते-पूछते वहाँ आये, जहाँ शबरीजीका स्थान था। वहाँ शबरीको न देखकर भगवान् कहने लगे कि भाग्यशालिनी हरिभक्ता कहाँ है ? मेरे नेत्र उसके दर्शनरूपी सुधाके प्यासे हैं। स्वयं सरकार मेरे आश्रममें पधारे—यह जानकर शबरीजी भी आश्रमकी ओर दौड़ीं। दूरसे ही जहाँसे प्रभुको देखा वहींसे सप्रेम साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। शबरीके नेत्र प्रफुल्लित हो गये। भगवान्‌ने समीप जाकर शीघ्रतासे ललककर उसे उठा लिया। कोमल करकमलके स्पर्शसे तन-मनकी सब व्यथा दूर हो गयी। नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी झड़ी लग गयी। भगवान् श्रीराम परम सुखी होकर आसनपर विराजे। शबरीजीने अर्घ्यपाद्यपूर्वक बेर आदि फल अर्पण किये। श्रीरामजीने उन्हें प्रेमसे खाकर उनके अद्भुत सुन्दर स्वादकी बार-बार प्रशंसा की।

उधर सभी ऋषि आश्रममें बैठकर सोच-विचार कर रहे थे कि सरोवरका जल बिगड़ गया है, उसे शुद्ध करनेके लिये यज्ञ-याग, सर्वतीर्थजलनिक्षेप आदि सब उपाय हमने कर लिये, पर वह शुद्ध नहीं हुआ, अब बताओ वह कैसे सुधरे ? सबोंने परस्पर विचारकर निश्चय किया कि वनके मार्गसे श्रीरघुनाथजी आ रहे हैं, यह सुना है, जब वे आयें, तब हमलोग उनसे कहें कि आप इसका भेद बताइये। इतनेमें ही उन ऋषियोंने सुना कि श्रीरामजी तो शबरीके आश्रममें आकर विराजे हैं। तब सबका ब्राह्मणत्वका अहंकार दूर हो गया और वे कहने लगे कि चलो, वहीं चलकर उनके चरणोंमें प्रणाम करें। वे ऋषिगण शबरीके आश्रममें आकर बोले—प्रभो श्रीराम! आप सरोवरके जलको शुद्ध करनेका उपाय बताइये। भगवान्‌ने उत्तर दिया कि शबरीके चरणोंका स्पर्श करो, उसके बाद सरोवरके जलसे इसके चरणस्पर्श कराओ। जल तुरंत पवित्र हो जायगा ? भगवान्‌की आज्ञासे ऋषियोंने ऐसा ही किया। सरोवरका जल अति निर्मल हो गया। भक्तिकी ऐसी महिमा देखकर ऋषियोंके हृदय प्रेमभावसे द्रवित हो गये।

महर्षि मतंगकी वाणी आज सत्य हो गयी थी। भगवान्‌ने उसे नवधा भक्तिका उपदेश दिया। शबरीने सीताजीकी खोजके लिये प्रभुको सुग्रीवसे मित्रता करनेकी सलाह दी और स्वयंको योगाग्निमें भस्मकर सदाके लिये श्रीरामके पाद-पद्मोंमें लीन हो गयी।

श्रीजटायुजी

प्रजापति कश्यपजीकी पत्नी विनतासे दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड़। इनमेंसे भगवान् सूर्यके सारथि अरुणजीके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु। बचपनमें सम्पाति और जटायु उड़ानकी होड़ लगाकर ऊँचे

जाते हुए सूर्यमण्डलके पासतक चले गये। असह्य तेज न सह सकनेके कारण जटायु तो लौट आये; किंतु सम्पाति ऊपर ही उड़ते गये। सूर्यके अधिक निकट जानेपर सम्पातिके पंख सूर्य-तापसे भस्म हो गये। वे समुद्रके पास पृथ्वीपर गिर पड़े। जटायु लौटकर पंचवटीमें आकर रहने लगे। महाराज दशरथसे आखेटके समय इनका परिचय हो गया और महाराजने इन्हें अपना मित्र बना लिया।

वनवासके समय जब श्रीरामजी पंचवटी पहुँचे, तब जटायुसे उनका परिचय हुआ। मर्यादापुरुषोत्तम अपने पिताके सखा गृध्रराजका पिताके समान ही सम्मान करते थे। जब छलसे स्वर्णमृग बने मारीचके पीछे श्रीराम वनमें चले गये और जब मारीचकी कपटपूर्ण पुकार सुनकर लक्ष्मणजी बड़े भाईको ढूँढ़ने चले गये, तब सूनी कुटियासे रावण सीतीजीको उठाकर बलपूर्वक रथमें उन्हें ले चला। श्रीविदेहराज-दुहिताका करुणक्रन्दन सुनकर जटायु क्रोधमें भर गये। वे ललकारते-धिक्कारते रावणपर टूट पड़े और एक बार तो राक्षसराजके केश पकड़कर उसे भूमिमें पटक ही दिया।

जटायु वृद्ध थे। वे जानते थे कि रावणसे युद्धमें वे जीत नहीं सकते। परंतु नश्वर शरीर राम-काजमें लग जाय, इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा? रावणसे उनका भयंकर संग्राम हुआ। अन्तमें रावणने उनके पंख तलवारसे काट दिये। वे भूमिपर गिर पड़े। जानकीजीको लेकर रावण भाग गया। श्रीराम विरह-व्याकुल होकर जानकीजीको ढूँढ़ते हुए वहाँ आये। जटायु मरणासन्न थे। उनका चित्त श्रीरामके चरणोंमें लगा था। उन्होंने कहा—'राघव! राक्षसराज रावणने मेरी यह दशा की है। वही दुष्ट सीताजीको लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चला गया है। मैंने तो तुम्हारे दर्शनके लिये ही अबतक प्राणोंको रोक रखा था। अब वे बिदा होना चाहते हैं। तुम आज्ञा दो।'

श्रीराघवके नेत्र भर आये। उन्होंने कहा—'आप प्राणोंको रोकें। मैं आपके शरीरको अजर-अमर तथा स्वस्थ बनाये देता हूँ।' जटायु परम भागवत थे। शरीरका मोह उन्हें था नहीं। उन्होंने कहा—'श्रीराम! जिनका नाम मृत्युके समय मुखसे निकल जाय तो अधम प्राणी भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है—ऐसी तुम्हारी महिमा श्रुतियोंमें वर्णित है, आज वही तुम प्रत्यक्ष मेरे सम्मुख हो; फिर मैं शरीर किस लाभके लिये रखूँ?'

दयाधाम श्रीरामभद्रके नेत्रोंमें जल भर आया। वे कहने लगे—'तात! मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ। तुमने तो अपने ही कर्मसे परम गति प्राप्त कर ली। जिनका चित्त परोपकारमें लगा रहता है, उन्हें संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अब इस शरीरको छोड़कर आप मेरे धाममें पधारें।'

श्रीरामने जटायुको गोदमें रख लिया था। अपनी जटाओंसे वे उन पक्षिराजकी देहमें लगी धूलि झाड़ रहे थे। जटायुने श्रीरामके मुख-कमलका दर्शन करते हुए उनकी गोदमें ही शरीर छोड़ दिया—उन्हें भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हुआ। वे तत्काल नवजलधर-सुन्दर, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, तेजोमय शरीर धारणकर वैकुण्ठ चले गये। जैसे सत्पुत्र श्रद्धापूर्वक पिताकी अन्त्येष्टि करता है, वैसे ही श्रीरामने जटायुके शरीरका सम्मानपूर्वक दाहकर्म किया और उन्हें जलांजलि देकर श्राद्ध किया। पक्षिराजके सौभाग्यकी महिमाका कहाँ पार है। त्रिभुवनके स्वामी श्रीराम, जिन्होंने दशरथजीकी अन्त्येष्टि नहीं की, उन्होंने अपने हाथों जटायुकी अन्त्येष्टि विधिपूर्वक की। उस समय उन्हें श्रीजानकीजीका वियोग भी भूल गया था।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने जटायुकी इस अनुपम भक्तिका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

जानकी हरण कियो रावण मरण काज सुनि सीतावाणी खगराज दौर्‌यौ आयो है।
बड़ी ये लड़ाई लीन्ही देह वारि फेरि दीन्ही राखे प्राण राममुख देखिबो सुहायो है॥

आये आपु गोद शीश धारि दृग धार सींच्यो दई सुधि लई गति तनहू जरायो है।
दशरथ वत मान कियो जल दान यह अति सम्मान निज रूप धाम पायो है॥ ३८॥

श्रीध्रुवजी

ध्रुव स्वायम्भुव मनुके पौत्र थे। महाराज उत्तानपादकी बड़ी पत्नी सुनीतिकी कोखसे उनका जन्म हुआ था। एक समयकी बात है, राजदरबार लगा था। महाराज उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सुरुचि एवं उसके पुत्र उत्तमके साथ राजसिंहासनपर विराजमान थे। सुरुचिके रूप-लावण्यने राजाको वशीभूत कर लिया था। सुरुचिकी रुचि ही उत्तानपादकी रुचि हो गयी थी। एक दिन पाँच वर्षका बालक ध्रुव अपने सखाओंके साथ खेलता-खेलता राजसभामें जा पहुँचा। अपने छोटे भाई उत्तमको पिताकी गोदमें बैठे देखकर बालक ध्रुवने भी पिताकी गोदमें बैठना चाहा। सुरुचि इसे कैसे सहन कर सकती थी? सुनीतिसे उसका सौतियाडाह जो था। 'अरे, तुम्हारा इतना साहस! यदि पिताकी गोदमें बैठना चाहते हो तो तपस्या करके भगवान्‌की आराधना करो। भगवान्‌को प्रसन्न करके मेरी कोखसे जन्म लो, तभी तुम्हें यह अधिकार प्राप्त हो सकता है।' कहते हुए सुरुचिने हाथ पकड़कर ध्रुवको राजाकी गोदसे अलग कर दिया।

यद्यपि अबोध बालक ध्रुव पूरी बात न समझ सका, परंतु 'मेरा अपमान हुआ है और भगवान्‌की आराधनासे ही अपमानसे छुटकारा मिल सकता है'—इतनी बात तो उनकी समझमें आ ही गयी। केवल इतनी-सी बात बालक ध्रुवको अमोघ भगवत्कृपाका अनुभव करानेमें हेतु बन गयी। विपरीत परिस्थितियाँ प्रायः मनुष्यको भगवत्कृपा प्राप्त करानेमें बड़ी सहायक होती हैं।

रुदन ही तो बालकका बल है। ध्रुव रोता-रोता अपनी माता सुनीतिके पास पहुँचा। सुनीतिने उसकी पूरी बात सुनी और कहा—'बेटा! सचमुच मैं अभागिनी हूँ। तुम्हारे पिता तुम्हारी छोटी माता सुरुचिके हाथ बिके हुए हैं। तुम्हारी अभिलाषा तो एक भगवान् ही पूर्ण कर सकते हैं। भगवान् विष्णुकी आराधनासे सब कुछ सुलभ है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो भगवान् न दे सकें।' 'भगवान् विष्णु सब कुछ दे सकते हैं।' निर्मल-हृदय ध्रुवके मनमें यह बात घर कर गयी।

'माँ! मुझे आज्ञा दो, मैं भगवान्‌से मिलकर उन्हींसे सब कुछ प्राप्त करूँगा।' ध्रुवने दृढ़ निश्चयके साथ माता सुनीतिसे निवेदन किया। 'बेटा! अभी तो तुम निरे बालक हो, कुछ बड़े हो जाओ, उसके बाद यह कार्य करना।' माताने ध्रुवको बहुत समझाया, परंतु ध्रुवके निश्चयमें माँ सुनीति कुछ भी परिवर्तन न कर सकीं और अन्तमें भगवत्कृपापर पूर्ण विश्वास रखनेवाली माताने बालकको वनमें जानेकी आज्ञा दे दी।

भगवान् कैसे और कहाँ मिलते हैं—यह तो ध्रुवको ज्ञात नहीं था, परंतु भगवान् मिलते हैं, इस निश्चयके साथ ध्रुवने वनकी राह ली। भगवान्‌की ओर बढ़नेवालेकी सहायता भगवत्कृपा स्वयं करती है। मार्गमें ध्रुवको देवर्षि नारद मिले। नारद ध्रुवकी पूरी बात सुनकर विस्मय प्रकट करने लगे—'बेटा! तुम्हारी आयु अभी छोटी है, इस उम्रमें क्या मानापमान? प्रसन्न रहो और जैसे भगवान् रखें, उसीमें सन्तोष करो। भगवान्‌का मिलना बड़ा कठिन है। बड़े-बड़े योगी-मुनि दीर्घकालतक तपस्या करके भी उनका दर्शन अनेक जन्मोंके पश्चात् कर पाते हैं।' देवर्षिकी ये बातें सुनकर भी ध्रुवके निश्चयमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। 'मुने! आप बड़े कृपालु हैं। आपने जो उपदेश दिया, वह बहुत उत्तम है; परंतु मुझे तो भगवान् शीघ्र मिल सकें, आप ऐसा उपाय ही बताइये। जिससे मैं दुर्लभ पद प्राप्त कर सकूँ।' दृढ़ निष्ठा और निश्चयके साथ ध्रुवने देवर्षिके चरणोंमें नम्र निवेदन किया। ध्रुवके हृदयमें भय और संशयका बिल्कुल स्थान नहीं था। देवर्षिका हृदय ध्रुवकी निष्ठा देखकर पिघल गया।

ध्रुवपर सन्त-कृपा हुई। देवर्षिने उसे अमोघ आशीर्वाद दिया—'बेटा! तेरा कल्याण होगा। अब तुम श्रीयमुनाजीके तटस्थित मधुवनमें चले जाओ। वहाँ निरन्तर **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जाप करो। त्रिकाल यमुनामें स्नान करके सुस्थिर आसनपर बैठ जाना, प्राणायाम करना, चित्तको स्थिर और एकाग्र करके भगवान् विष्णुका ध्यान करना।' ध्रुव यमुनाजीके किनारे मधुवनमें जा पहुँचे और भगवान्की आराधनामें लग गये। नारदजीकी कृपासे उन्हें विधिका ज्ञान तो हो ही गया था। दिन-पर-दिन वे अपने व्रतको कठोर करने लगे। निर्भय-निर्द्वन्द्व उपासना चलने लगी। भगवान्की कृपापर उनका दृढ़ विश्वास था। मन, वाणी और शरीर—तीनोंसे वे कृपानिधि भगवान्के साथ एकाकार हो रहे थे।

साधनामें भय और प्रलोभनरूपा बाधाओंका ताँता लग जाता है। ध्रुवके सामने भी बड़ी भयंकर परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। उन्हें डरानेके लिये बड़ी भयावनी राक्षसियाँ आयीं। मायाने माता सुनीतिका रूप धारणकर ध्रुवके सम्मुख प्रकट हो ममताका जाल डालना चाहा। ध्रुवको एकमात्र भगवत्कृपाका आश्रय था। उन्होंने उसकी बातें सुन करके भी अनसुनी कर दीं। वे प्रभुके ध्यानमें मग्न रहे। इतनेमें वहाँ 'मारो, पकड़ो, खा डालो' चिल्लाते हुए भयंकर राक्षस प्रकट हो गये। माता सुनीतिका रूप धारण करके आयी मायाका आर्तनाद सुनकर भी ध्रुव अपनी तपस्यामें अटल ही रहे। किसी भी तरहके विघ्न उनकी साधनामें बाधा न डाल सके।

उनकी कठोर तपस्याके छः महीने पूरे होने जा रहे थे। सुरपति घबरा उठे—'कहीं ध्रुव हमारा पद न छीन ले। देवतालोग पहुँचे भगवांन्के पास। भगवान्ने देवताओंको आश्वासन दिया—'ध्रुव मेरा भक्त है, वह किसीका कोई अनिष्ट नहीं करेगा। मैं उसे दर्शन देकर तृप्त करूँगा।' देवतालोग निर्भय होकर चले गये, परंतु कृपानिधान भगवान् विष्णु अब अपने भक्तका कष्ट सहन नहीं कर पा रहे थे। वे तत्काल गरुड़ारूढ़ होकर ध्रुवके पास पहुँच गये, परंतु फिर भी ध्रुव अपने ध्यानमें मग्न रहे। भक्तको साध्य तो प्रिय होता ही है, किंतु साध्यसे साधन भी कम प्रिय नहीं लगता। अन्तमें भगवान्को उनके ध्यानसे अपने स्वरूपको हटाना पड़ा, तब कहीं ध्रुवने विकल होकर नेत्र खोले। साक्षात् भगवान्को अपने सामने उपस्थित देखकर ध्रुव तुरंत उनके चरणोंमें लोट गये। प्रेमसे वाणी गद्गद हो गयी, शरीर रोमांचित हो गया और नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। उनकी वाणी प्रेमसे अवरुद्ध थी। वे केवल हाथ जोड़े प्रभुके सामने खड़े थे, स्तुति करना चाहते हुए भी स्तुति करनेमें असमर्थ थे। करुणालय भगवान् श्रीहरिने अपना वेदमय शंख ध्रुवके कपोलसे स्पर्श करा दिया। शंखका स्पर्श होते ही ध्रुवको दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी। सम्पूर्ण वेद-ज्ञान सुलभ हो गया। ध्रुव दिव्य वाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे—

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान्॥

(श्रीमद्भा० ४।९।१७)

'भगवन्! आप परमानन्दमूर्ति हैं—जो लोग ऐसा समझकर निष्काम भावसे आपका निरन्तर भजन करते हैं, उनके लिये राज्यादि भोगोंकी अपेक्षा आपके चरणकमलोंकी प्राप्ति ही भजनका सच्चा फल है। स्वामिन्! यद्यपि बात ऐसी ही है, तो भी गौ जैसे तुरंत जन्मे हुए बछड़ेको दूध पिलाती और व्याघ्रादिसे बचाती रहती है, उसी प्रकार आप भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये निरन्तर आतुर रहनेके कारण हम-जैसे सकाम जीवोंकी

भी कामना पूर्ण करके संसार-भयसे उनकी रक्षा करते रहते हैं।'

'प्रभो! आपकी कृपाका क्या कहना! बड़े-बड़े ऋषियों और मुनियोंको भी जिस रूपके दर्शन नहीं होते, आपने उस दिव्य स्वरूपका दर्शन मुझे छ: मासके अल्पसमयमें ही दे दिया। अब मैं कृतार्थ हो गया। आपकी विलक्षण कृपा प्राप्त करके अब मेरे चित्तमें कोई कामना नहीं है। मुझे केवल आपके सांनिध्यकी ही इच्छा है।'

'बेटा ध्रुव! तुम्हारे मनमें अब कोई कामना नहीं है, परंतु मेरी आज्ञाका तुम्हें पालन करना ही होगा। मैं तुम्हें जो पद देता हूँ, वह ग्रहण करना होगा। मेरी आज्ञासे तुम्हें राज्यभार सँभालना होगा। ग्रह-नक्षत्रोंसे ऊपर तुम्हें ध्रुव-पद प्राप्त होगा। जीवनभर तुमपर मेरी अनोखी कृपा बरसती रहेगी। कल्पके अन्तमें तुम मेरे पास ही आओगे, जहाँसे तुम्हें फिर लौटना नहीं होगा।' कृपालु श्रीहरिने ध्रुवको कृपामय आदेश दिया।

भगवान् श्रीहरिके विरहका संताप लेकर राज्यकी कामना न होते हुए भी प्रभुके आदेशानुसार ध्रुव वनसे लौट आये। पितासहित सभी राजपुरुषों एवं सौतेली माँने उनका अभिनन्दनकर आशीर्वाद दिया। सुनीतिने तो आरती उतारते हुए प्रेमाश्रुओंसे अपने प्रिय पुत्रका अभिषेक किया।

युवावस्थामें ध्रुवने अपने माता-पिताकी आज्ञासे गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया।

ध्रुवके भाई उत्तमको आखेटका दुर्व्यसन था। एक बार वह आखेट करते-करते स्वयं भी एक यक्षका आखेट बन गया। ध्रुव भाई उत्तमके निधनकी जानकारीके लिये वनमें गये। वहाँ उनका यक्षोंसे घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें पितामह मनुने युद्धमें आकर भयंकर संहार बन्द करवाया। यक्षपति कुबेर भक्त ध्रुवके व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हुए। कुबेरने ध्रुवको वरदान देना चाहा, परंतु ध्रुवने उनसे विनम्रतापूर्वक भगवद्भक्तिकी ही याचना की।

ध्रुवने अनेक यज्ञ-यागादि किये। उन्होंने भगवान् शंकरकी भी आराधनाकर उन्हें प्रसन्न किया तथा भगवद्भक्तिका ही अमोघ आशीर्वाद प्राप्त किया।

ध्रुवने छत्तीस सहस्र वर्षतक धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन किया। भगवत्प्रेमका उनके जीवनमें उत्तरोत्तर विकास हुआ। अन्त समयमें भगवान्‌के पार्षद सुनन्द एवं नन्द उन्हें लेने आये और वे कालके सिरपर पैर रखकर विमानपर आरूढ़ हो सदेह भगवद्धामको चले गये।

श्रीउद्धवजी

उद्धवजी भगवान्‌के सखा-भक्त थे। अक्रूरके साथ जब भगवान् व्रजसे मथुरा आ गये और कंसको मारकर सब यादवोंको सुखी बना दिया, तब भगवान्‌ने एकान्तमें अपने प्रिय सखा उद्धवको बुलाकर कहा— 'उद्धव! व्रजकी गोपांगनाएँ मेरे वियोगमें व्याकुल होंगी, उन्हें जाकर तुम समझा आओ। उन्हें मेरा सन्देश सुना आओ कि मैं तुमसे अलग नहीं, सदा तुम्हारे ही साथ हूँ।' उद्धवजी अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर नन्दके व्रजमें गये। वहाँ चारों ओरसे उन्हें व्रजवासियोंने घेर लिया और लगे भाँति-भाँतिके प्रश्न करने; कोई आँसू बहाने लगा, कोई मुरली बजाते-बजाते रोने लगा, कोई भगवान्‌का कुशल-समाचार पूछने लगा। उद्धवजीने सबको यथायोग्य उत्तर दिया और सबको धैर्य बँधाया।

एकान्तमें जाकर उन्होंने गोपियोंको अपना ज्ञान-सन्देश सुनाया। उन्होंने कहा—'भगवान् वासुदेव किसी एक जगह नहीं हैं, वे तो सर्वत्र व्यापक हैं। उनमें भगवत्-बुद्धि करो, सर्वत्र उन्हें देखो।' गोपियोंने रोते-रोते कहा—'उद्धवजी! तुम ठीक कहते हो, किंतु हम गँवारी वनचरी इस गूढ़ ज्ञानको भला कैसे समझ सकती हैं? हम तो उन श्यामसुन्दरकी भोली-भाली सूरतपर ही अनुरक्त हैं। उनका वह हास्ययुक्त मुखारविन्द,

वह काली-काली घुँघराली अलकावली, वह वंशीकी मधुर ध्वनि हमें हठात् अपनी ओर खींच रही है। वृन्दावनकी समस्त भूमिपर उनकी अनन्त स्मृतियाँ अंकित हैं। तिलभर भी जमीन खाली नहीं, जहाँ उनकी कोई मधुर स्मृति न हो। हम इन यमुनापुलिन, वन, पर्वत, वृक्ष और लताओंमें उन श्यामसुन्दरको देखती हैं। इन्हें देखकर उनकी स्मृति मूर्तिमान् होकर हमारे हृदयपटलपर नाचने लगती है।

उनके ऐसे अलौकिक प्रेमको देखकर उद्धवजी अपना समस्त ज्ञान भूल गये और अत्यन्त करुणाके स्वरमें कहने लगे—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६३)

'मैं इन व्रजांगनाओंकी चरणधूलिकी भक्तिभावसे वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी हुई हरि-कथा तीनों भुवनोंको पावन करनेवाली है।' व्रजमें जाकर उद्धवजी ऐसे प्रभावित हुए कि वे सब ज्ञान-गाथा भूल गये।

भगवान्‌के द्वारका पधारनेपर ये भी उनके साथ गये। यदुवंशियोंके मन्त्रिमण्डलमें इनका भी एक प्रधान स्थान था। इनकी भगवान्‌में अनन्य भक्ति थी। जब इन्होंने समझा कि भगवान् अब इस लोककी लीलाका संवरण करना चाहते हैं, तब ये एकान्तमें जाकर बड़ी दीनताके साथ कहने लगे—

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि॥

(श्रीमद्भा० ११। ६। ४३)

'हे भगवन्! हे नाथ! मैं आपके चरणोंसे आधे क्षणके लिये भी अलग होना नहीं चाहता। मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये।'

भगवान्‌ने कहा—'उद्धव! मैं इस लोकसे इस शरीरद्वारा अन्तर्हित होना चाहता हूँ। मेरे अन्तर्हित होते ही यहाँ घोर कलियुग आ जायगा। इसलिये तुम बदरिकाश्रमको चले जाओ और वहाँ तपस्या करो। तुम्हें कलियुगका धर्म नहीं व्यापेगा।'

भगवान्‌की ऐसी ही मर्जी है, यह समझकर उद्धवजी चले तो गये, किंतु उनका मन भगवान्‌की लीलाओंमें ही लगा रहा। जब सब यादव प्रभासक्षेत्रको चले गये तो भगवान्‌की अन्तिम लीलाको देखने उद्धवजी भी प्रभासमें पहुँचे। तबतक समस्त यदुवंशियोंका संहार हो चुका था। उद्धवजी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान् सरस्वती नदीके तटपर एक अश्वत्थवृक्षके नीचे विराजमान थे, उद्धवजीने रोते-रोते उन्हें प्रणाम किया। दैवयोगसे पराशरके शिष्य मैत्रेयजी भी वहाँ आ गये। दोनोंको भगवान्‌ने इस समस्त जगत्‌की सृष्टि, स्थिति, प्रलयका ज्ञान कराया और इस अन्तिम ज्ञानको विदुरजीके प्रति उपदेश करनेके लिये भी भगवान् मैत्रेयजीको आज्ञा कर गये।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर उद्धवजी बदरिकाश्रमको चले। भगवान् अपने परमधामको पधारे। उद्धवजीके हृदयमें भगवान्‌का वियोग भर रहा था, अतः उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वे खूब रोते थे। किंतु रोना भी किसी सुहृदयके सामने हो तो हृदय हलका होता है। दैवयोगसे उद्धवजीको विदुरजी मिल गये। विदुरजीने पूछा—'यदुवंशके सब लोग कुशलपूर्वक तो हैं?' यदुकुलका नाम सुनते ही उद्धवजी ढाह बाँधकर रो पड़े और रोते-रोते बोले—

कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह।
किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम्॥
दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २। ७-८)

'कृष्णरूपी सूर्यके अस्त होनेपर, कालरूपी सर्पके ग्रसे जानेपर हे विदुरजी! हमारे कुलकी अब कुशल क्या पूछते हो? यह पृथ्वी हतभागिनी है और उनमें भी ये यदुवंशी सबसे अधिक भाग्यहीन हैं, जो दिन-रात पासमें रहनेपर भी भगवान्‌को नहीं पहचान सके, जैसे समुद्रमें रहनेवाले जीव चन्द्रमाको नहीं पहचान सकते।'

इसके बाद उद्धवजीने यदुवंशके क्षयकी सब बातें सुनायीं।

उद्धवजी परम भागवत थे, ये भगवान्‌के अभिन्नविग्रह थे। इनके सम्बन्धमें भगवान्‌ने स्पष्ट कहा है—

अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम्।
अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः॥
नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः।
अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु॥

(श्रीमद्भा० ३। ४। ३०-३१)

'मेरे इस लोकसे चले जानेके पश्चात् उद्धव मेरे ज्ञानकी रक्षा करेंगे। उद्धव मुझसे गुणोंमें तनिक भी कम नहीं हैं, अतः वे ही सबको इसका उपदेश करेंगे।'

जिनके लिये भगवान् ऐसा कहते हैं, उनके भगवत्प्रेमके सम्बन्धमें क्या कहा जा सकता है!

श्रीअम्बरीषजी

वैवस्वत मनुके प्रपौत्र तथा राजर्षि नाभागके पुत्र महाराज अम्बरीषजी सप्तद्वीपवती सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी थे और उनके ऐश्वर्यकी संसारमें कोई तुलना न थी। कोई दरिद्र मनुष्य भोगोंके अभावमें वैराग्यवान् बन जाय, यह तो सरल है; किंतु धन-दौलत होनेपर, विलासभोगकी पूरी सामग्री प्राप्त रहते वैराग्यवान् होना, विषयोंसे दूर रहना महापुरुषोंके ही वशका है और यह भगवान्‌की कृपासे ही होता है। थोड़ी सम्पत्ति और साधारण अधिकार भी मनुष्यको मदान्ध बना देता है, किंतु जो भाग्यवान् अशरण-शरण दीनबन्धु भगवान्‌के चरणोंका आश्रय ले लेते हैं, जो उन मायापति श्रीहरिकी रूपमाधुरीका सुधास्वाद पा लेते हैं, मायाकी मादकता उन्हें रूखी लगती है। मोहनकी मोहनी जिनके प्राण मोहित कर लेती है, मायाका ओछापन उन्हें लुभानेमें असमर्थ हो जाता है। वे तो जलमें कमलकी भाँति सम्पत्ति एवं ऐश्वर्यके मध्य भी निर्लिप्त ही रहते हैं। वैवस्वत मनुके प्रपौत्र तथा राजर्षि नाभागके पुत्र अम्बरीषको अपना ऐश्वर्य स्वप्नके समान असत् जान पड़ता था। वे जानते थे कि सम्पत्ति मिलनेसे मोह होता है और बुद्धि मारी जाती है। भगवान् वासुदेवके भक्तोंको पूरा विश्व ही मिट्टीके ढेलों-सा लगता है। विश्वमें तथा उसके भोगोंमें नितान्त अनासक्त अम्बरीषजीने अपना सारा जीवन परमात्माके पावन पाद-पद्मोंमें ही लगा दिया था।

जैसा राजा, वैसी प्रजा। महाराज अम्बरीषके प्रजाजन, राजकर्मचारी—सभी लोग भगवान्‌के पवित्र चरित सुनने, भगवान्‌के नाम-गुणका कीर्तन करने और भगवान्‌के पूजन-ध्यानमें ही अपना समय लगाते थे। भक्तवत्सल भगवान्‌ने देखा कि मेरे ये भक्त तो मेरे चिन्तनमें ही लगे रहते हैं, तो भक्तोंके योगक्षेमकी रक्षा

करनेवाले प्रभुने अपने सुदर्शनचक्रको अम्बरीष तथा उनके राज्यकी रक्षामें नियुक्त कर दिया। जब मनुष्य अपना सब भार उन सर्वेश्वरपर छोड़कर उनका हो जाता है, तब वे दयामय उसके योगक्षेमका दायित्व अपने ऊपर लेकर उसे सर्वथा निश्चिन्त कर देते हैं। चक्र अम्बरीषके द्वारपर रहकर राज्यकी रक्षा करने लगा।

(क) राजर्षि अम्बरीषके एकादशीव्रतनिष्ठाकी कथा

राजा अम्बरीषने एक बार अपनी पत्नीके साथ श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये वर्षकी सभी एकादशियोंके व्रतका नियम किया। वर्ष पूरा होनेपर पारणके दिन उन्होंने धूम-धामसे भगवान्‌की पूजा की। ब्राह्मणोंको गोदान किया। यह सब करके जब वे पारण करने जा रहे थे, तभी महर्षि दुर्वासा शिष्योंसहित पधारे। राजाने उनका सत्कार किया और उनसे भोजन करनेकी प्रार्थना की। दुर्वासाजीने राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और स्नान करने यमुना-तटपर चले गये। द्वादशी केवल एक घड़ी शेष थी। द्वादशीमें पारण न करनेसे व्रत भंग होता। उधर दुर्वासाजी आयेंगे कब, यह पता नहीं था। अतिथिसे पहले भोजन करना अनुचित था। ब्राह्मणोंसे व्यवस्था लेकर राजाने भगवान्‌के चरणोदकको लेकर पारण कर लिया और भोजनके लिये ऋषिकी प्रतीक्षा करने लगे।

दुर्वासाजीने स्नान करके लौटते ही तपोबलसे राजाके पारण करनेकी बात जान ली। वे अत्यन्त क्रोधित हुए कि मेरे भोजनके पहले इसने क्यों पारण किया। उन्होंने मस्तकसे एक जटा उखाड़ ली और उसे जोरसे पृथ्वीपर पटक दिया। उससे कालाग्निके समान कृत्या नामकी भयानक राक्षसी निकली। वह राक्षसी तलवार लेकर राजाको मारने दौड़ी। राजा जहाँ-के-तहाँ स्थिर खड़े रहे। उन्हें तनिक भी भय नहीं लगा। सर्वत्र सब रूपोंमें भगवान् ही हैं, यह देखनेवाला भगवान्‌का भक्त भला, कहीं अपने ही दयामय स्वामीसे डर सकता है? अम्बरीषको तो कृत्या भी भगवान् ही दीखती थी। परंतु भगवान्‌का सुदर्शनचक्र तो भगवान्‌की आज्ञासे पहलेसे ही राजाकी रक्षामें नियुक्त था। उसने पलक मारते कृत्याको भस्म कर दिया और दुर्वासाकी भी खबर लेने उनकी ओर दौड़ा। अपनी कृत्याको इस प्रकार नष्ट होते और ज्वालामय कराल चक्रको अपनी ओर आते देख दुर्वासाजी प्राण लेकर भागे। वे दसों दिशाओंमें, पर्वतोंकी गुफाओंमें, समुद्रमें—जहाँ-जहाँ छिपनेको गये, चक्र वहीं उनका पीछा करता गया। आकाश-पातालमें सब कहीं वे गये। इन्द्रादि लोकपाल तो उन्हें क्या शरण देते, स्वयं ब्रह्माजी और शंकरजीने भी आश्रय नहीं दिया। दया करके शिवजीने उनको भगवान्‌के ही पास जानेको कहा। अन्तमें वे वैकुण्ठ गये और भगवान् विष्णुके चरणोंपर गिर पड़े। दुर्वासाने कहा—प्रभो! आपका नाम लेनेसे नारकी जीव नरकसे भी छूट जाते हैं, अत: आप मेरी रक्षा करें। मैंने आपके प्रभावको न जानकर आपके भक्तका अपराध किया, इसलिये आप मुझे क्षमा करें।

भगवान् अपनी छातीपर भृगुकी लात तो सह सकते हैं, अपने प्रति किया गया अपराध वे कभी मनमें ही नहीं लेते, पर भक्तके प्रति किया गया अपराध वे क्षमा नहीं कर सकते। प्रभुने कहा—महर्षि! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं तो भक्तोंके पराधीन हूँ। साधु भक्तोंने मेरे हृदयको जीत लिया है। साधुजन मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। मुझे छोड़कर वे और कुछ नहीं जानते और उनको छोड़कर मैं भी और कुछ नहीं जानता। साधु भक्तोंको छोड़कर मैं अपने इस शरीरको भी नहीं चाहता और इन लक्ष्मीजीको जिनकी एकमात्र गति मैं ही हूँ उन्हें भी नहीं चाहता। जो भक्त स्त्री-पुत्र, घर-परिवार, धन-प्राण, इहलोक-परलोक सबको त्यागकर मेरी शरण आया है, भला मैं उसे कैसे छोड़ सकता हूँ? जैसे पतिव्रता स्त्री पतिको अपनी सेवासे वशमें कर लेती है, वैसे ही समदर्शी भक्तजन मुझमें चित्त लगाकर मुझे भी अपने वशमें कर लेते हैं। नश्वर स्वर्गादिकी तो चर्चा ही क्या, मेरे भक्त मेरी सेवाके

आगे मुक्तिको भी स्वीकार नहीं करते। ऐसे भक्तोंके मैं सर्वथा अधीन हूँ, अतएव ऋषिवर! आप उन महाभाग नाभागतनयके ही पास जायँ। वहीं आपको शान्ति मिलेगी।

इधर राजा अम्बरीष बहुत ही चिन्तित थे। उन्हें लगता था कि मेरे ही कारण दुर्वासाजीको मृत्युभयसे ग्रस्त होकर भूखे ही भागना पड़ा। ऐसी अवस्थामें मेरे लिये भोजन करना कदापि उचित नहीं है। अतः वे केवल जल पीकर ऋषिके लौटनेकी पूरे एक वर्षतक प्रतीक्षा करते रहे। वर्षभरके बाद दुर्वासाजी जैसे भागे थे, वैसे ही भयभीत दौड़ते हुए आये और उन्होंने राजाका पैर पकड़ लिया। ब्राह्मणके द्वारा पैर पकड़े जानेसे राजाको बड़ा संकोच हुआ। उन्होंने स्तुति करके सुदर्शनको शान्त किया।

महर्षि दुर्वासा मृत्युके भयसे छूटे। सुदर्शनका अत्युग्र ताप, जो उन्हें जला रहा था, शान्त हुआ। अब प्रसन्न होकर वे कहने लगे—आज मैंने भगवान्‌के दासोंका महत्त्व देखा। राजन्! मैंने तुम्हारा इतना अपराध किया था, पर तुम मेरा कल्याण ही चाहते हो। जिन प्रभुका नाम लेनेसे ही जीव समस्त पापोंसे छूट जाता है, उन तीर्थपाद श्रीहरिके भक्तोंके लिये कुछ भी कार्य शेष नहीं रह जाता। राजन्! तुम बड़े दयालु हो। मेरा अपराध न देखकर तुमने मेरी प्राणरक्षा की।

अम्बरीषके मनमें ऋषिके वाक्योंसे कोई अभिमान नहीं आया। उन्होंने इसको भगवान्‌की कृपा समझा। महर्षिके चरणोंमें प्रणाम करके बड़े आदरसे राजाने उन्हें भोजन कराया। उनके भोजन करके चले जानेपर एक वर्ष पश्चात् उन्होंने वह पवित्र अन्न प्रसादरूपसे लिया। बहुत कालतक परमात्मामें मन लगाकर प्रजापालन करनेके पश्चात् अम्बरीषजीने अपने पुत्रको राज्य सौंप दिया और भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर वनमें चले गये। वहाँ भजन तथा तप करते हुए उन्होंने भगवान्‌को प्राप्त किया।

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीअम्बरीषजीके चरित्रका निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

अम्बरीष भक्त की जो रीस कोऊ करै और बड़ो मति बौर किहूँ जान नहिं भाखिये।
दुरबासा रिषि सीष सुनी नहीं कहूँ साधु मानि अपराध सिर जटा खैंचि नाखिये॥
लई उपजाय काल कृत्या विकराल रूप भूप महाधीर रह्यो ठाढ़ो अभिलाखिये।
चक्र दुख मानि लै कृशानु तेज राख करी परी भीर ब्राह्मण को भागवत साखिये॥ ३९॥
भाज्यो दिशा दिशा सब लोक लोकपाल पास गयो नयो तेज चक्र चून किये डारे हैं।
ब्रह्मा शिव कही यह गही तुम टेव बुरी दासनि को भेद नहिं जान्यो वेद धारे हैं॥
पहुँचे बैकुण्ठ जाय कह्यौ दुःख अकुलाय हाय हाय राखौ प्रभु खरो तन जारे हैं।
मैं तो हौं अधीन तीनि गुन को न मान मेरे भक्तवात्सल्य गुण सबही को टारे हैं॥ ४०॥
मोको अति प्यारे साधु उनकी अगाधमति कर्‍यो अपराध तुम सह्यो कैसे जात हैं।
धाम धन वाम सुत प्राण तनु त्याग करैं ढरैं मेरी ओर निशिभोर मोसों बात है॥
मेरेउ न सन्त बिनु और कछु साँची कहौं जाओ वाही ठौर जाते मिटै उत्पात है।
बड़ेई दयाल सदा दीन प्रतिपाल करैं न्यूनता न धरैं कहूँ भक्ति गात गात है॥ ४१॥
ह्वै करि निरास ऋषि आयो नृप पास चल्यो गर्व सों उदास पग गहे दीन भाष्यो है।
राजा लाज मानि मृदु कहि सनमान कर्‍यो ढर्‍यो चक्र ओर करजोरि अभिलाष्यो है॥
भक्त निष्काम कभूं कामना न चाहत हैं चाहत हैं विप्र दुख दूरि करो चाख्यो है।
देखि कै विकलताई सदा सन्त सुखदाई आई मान माँझ सब तेज ढाँकि राख्यो है॥ ४२॥

इन कवित्तोंका भाव संक्षेपमें इस प्रकार है—

(ख) भक्त अम्बरीषकी छोटी रानीके विवाहकी कथा

भक्तवर अम्बरीषकी अपूर्व भगवद्भक्तिपर एक राजकुमारी लुब्ध हो गयी। उसने निश्चय किया कि मैं उन्हींको अपने पतिके रूपमें वरण करूँगी। अपना दृढ़ विचार उसने पिताके समक्ष उपस्थित कर दिया। पिताने एक पत्रमें सारी बातें लिखकर उसे ब्राह्मणके द्वारा अम्बरीषके पास भेजा।

ब्राह्मणदेव नृपशिरोमणि अम्बरीषके पास पहुँचे और पत्र उन्हें दे दिया। पत्र पढ़कर नरेशने कहा, 'भगवद्भजन और राज्य-कार्यसे मुझे तनिक भी अवकाश नहीं मिलता कि किसी भी रानीकी सेवामें उपस्थित हो सकूँ। रानियाँ भी मेरे अधिक हैं। ऐसी स्थितिमें किसी अन्य राजकुमारीका परिणय मुझे प्रिय नहीं है।'

ब्राह्मणदेव लौट आये। श्रीअम्बरीषका सन्देश राजा और उनकी पुत्रीको उन्होंने सुना दिया। राजकुमारीके मनकी कली विकसित हो गयी। उसने सोचा—'ऐसे पुरुष जिन्हें विलास आदिसे पूरी विरक्ति और भगवान्‌के चरणोंमें अनुपम अनुरक्ति है, धन्य हैं। मैं उन्हें अवश्य ही पति बनाऊँगी। इस प्रकार अपना जीवन सफल कर लूँगी।'

ब्राह्मणदेवता पुनः अम्बरीषके पास पहुँचे और बोले—'राजकुमारीने अत्यन्त विनयसे कहा है कि आपके विचारोंको सुनकर मेरा हृदय गद्‌गद हो गया है। मनसे आपको मैंने पति बना लिया है। पत्नीके रूपमें यदि आपने मुझे स्वीकार नहीं किया तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। स्त्री-वधके महापापसे आप नहीं बच सकेंगे।'

धर्मप्राण नरेशने विवाह करना स्वीकार कर लिया। उन्होंने ब्राह्मणको अपना खड्ग देकर कहा, 'आप इससे राजकुमारीकी भाँवरी फिरा लें।'

प्रसन्नमन ब्राह्मण लौटे। राजकुमारी हर्षातिरेकसे नाच उठीं। खड्गसे भाँवरी फिराकर उसका विवाह-संस्कार पूर्ण हुआ। वे माता-पितासे विदा होकर पतिगृहमें आ गयीं। परम भगवद्-भक्त पतिकी शान्त मूर्तिके दर्शनकर उन्होंने अपना अहोभाग्य समझा।

(ग) छोटी रानीके भगवद्भावने सबको भगवद्भक्त बना दिया

अम्बरीषने देखा, उनके पूजाकी समस्त सामग्रियाँ धोकर यथास्थान रखी रहती हैं। पूजा-गृह धुला मिलता है। यह उन्हें अभीष्ट नहीं था; क्योंकि प्रभु-सेवाका सारा कार्य वे स्वयं अपने ही हाथों करना उचित समझते थे और इसीमें उन्हें प्रसन्नता मिलती थी। पता लगानेके लिये एक दिन रात्रिमें वे पूजागृहमें छिप गये। एक प्रहर रात रहते ही नयी रानीने वहाँ प्रवेश किया और पूजाके पात्र मलने लगीं। राजाका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा, 'यदि ऐसा ही करना है तो भगवान् को अपने भवनमें पधरा लो, प्रिये!' रानीकी आकांक्षा पूरी हुई। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी।

भगवान् उनके भवनमें ही पधारे। अब वे रात रहते ही स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान्‌की धूप-दीपादि षोडशोपचारसे अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमसे पूजा करतीं और भजनमें बैठतीं तो दोपहर बीत जाता। उन्हें खान-पानकी कुछ सुधि ही नहीं रहती। दासियोंके बार-बारके आग्रहपर वे भजनसे उठ पातीं।

यह समाचार अम्बरीषने भी सुना। दूसरे दिन सूर्योदयके समय ही वे छोटी रानीके पूजा-गृहमें आये। उन्होंने देखा, रानीने भगवान्‌को अत्यन्त सुन्दर ढंगसे सजा रखा है। धूपकी मधुर सुगन्ध उड़ रही है। घृत-दीप जल रहा है। रानी पद्मासन लगाये भगवान्‌के सामने बैठी हैं। मधुर स्वरमें वीणाके तार झनझना रहे हैं और भजनकी मधुर स्वर-लहरियाँ वीणाके तारोंके स्वरोंमें विलीन होती जा रही हैं। रानीकी आँखें अश्रुरूपी मोतियोंकी माला पिरोती जा रही हैं।

रानीकी तन्मयता! स्वर्गीय भजन!! अद्वितीय प्रभु-प्रेम!!! अम्बरीष पीछे खड़े-खड़े देख रहे थे। भजन

राजर्षि अम्बरीषकी रानी [पृ० ११८]

चन्द्रहास और विषया [पृ० १२९]

राजा चित्रकेतु [पृ० १३४]

राजर्षि प्रियव्रत [पृ० १६४]

भगवती सती [पृ० १७२]

रानी मदालसा [पृ० १७९]

राजर्षि भगीरथ [पृ० १९२]

राजा शिबि [पृ० २०९]
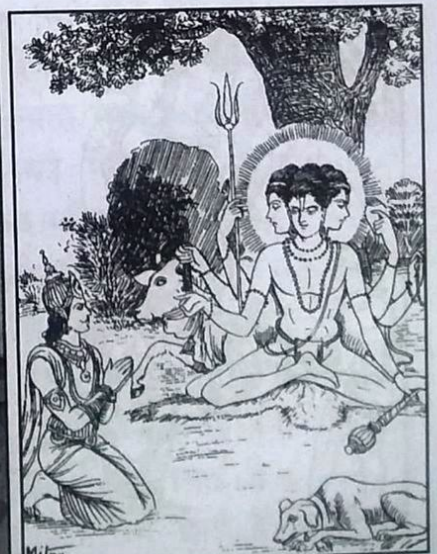
अलर्क और दत्तात्रेय [पृ० २१४]

पतिप्राणा जयदेवपत्नी [पृ० ३९५]

बिल्वमंगल और चिन्तामणि [पृ० ४०१]

भक्तिमयी रतिवन्ती [पृ० ४२०]

कर्माबाईका वात्सल्यभाव [पृ० ४२२]

श्रीवारमुखीजी [पृ० ४५०]

पीपादम्पतीकी सन्तनिष्ठा [पृ० ४७२]

धन्नापर प्रभुकृपा [पृ० ४७६]

सेना नाईके रूपमें भगवान् [पृ० ४७७]

भक्तिमती सुरसुरी [पृ० ४८२]

समाप्त हुआ। शरीरकी छाया देखकर रानीने पीछे सिर घुमाया तो पतिदेवको देखा। उनके स्वागतके लिये वे उठने ही वाली थीं कि अत्यन्त प्रेमसे अम्बरीषने कहा, 'प्रिये! मेरे स्वागतकी आवश्यकता नहीं है—वही भजन फिर सुनाओ।'

रानीके सौभाग्यका क्या कहना! पतिदेव रीझ चुके थे। परमपतिको रिझाना था। वीणा उठी। पतली अँगुलियाँ तारोंपर थिरकने लगीं। मधुर स्वर-लहरीमें थिरकता हुआ भजन अम्बरीषको बेसुध कर रहा था। वे समाधिस्थ-से हो गये थे। उनकी आँखें बरस रही थीं।

उस दिनसे प्रतिदिन नियमपूर्वक भक्तवर अम्बरीष अपनी छोटी रानीके पास प्रातःकाल ही आ जाते। भजन-पूजनमें कभी-कभी दिन-का-दिन निकल जाता। वे रानीको अत्यन्त प्यार करने लगे।

'भजन-पूजनसे राजा प्रसन्न होते हैं' यह सोचते ही अम्बरीषकी समस्त रानियाँ खूब विधि और प्रेमसे अपने-अपने भवनमें भगवान्‌का विग्रह पधराकर पूजन करने लगीं। समस्त रानियाँ प्रभुके भजनमें तल्लीन हो गयीं।

'राजाकी प्रसन्नता भगवद्भजनमें है' यह समाचार समस्त प्रजामें फैल गया। फिर क्या था! राज्यकी समस्त प्रजा भगवान्‌की भक्ति करने लगी। राजा-रानी और समस्त प्रजाके प्राण भगवान् बन गये। भगवान्‌की कृपा सबपर बरसने लगी। धन्य अम्बरीष और धन्य उनकी भक्ति!

राजर्षि अम्बरीषकी रानीकी इस भगवद्भक्तिका वर्णन श्रीप्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

एक नृप सुता सुनि अम्बरीष भक्ति भाव भयो हिय भाव ऐसो वर कर लीजिये।
पिता सों निशंक ह्वै कै कही पति कियो मैं ही विनय मानि मेरी वेगि चीठी लिख दीजिये॥
पाती लैके चल्यो विप्र छिप्र वही पुरी गयो नयो चाव जान्यो ऐ पै कैसे तिया धीजिये।
कहो तुम जाय रानी बैठी सत आय मोको बोल्यो न सुहाय प्रभु सेवा माँझ भीजिये॥ ४३॥
कह्यो नृप सुता सों जु कीजिये जतन कौन पौन जिमि गयो आयो काम नाहीं बिया को।
फेरिकै पठायो सुख पायो मैं तो जान्यो वह बड़े धर्मज्ञ वाके लोभ नाहीं तिया को॥
बोली अकुलाय मन भक्ति ही रिझाय लियो कियो पति मुख नहीं देखौं और पिया को।
जायके निशंक यह बात तुम मेरी कहो चेरी जो न करौ तौपै लेवो पाप जिया को॥ ४४॥
कही विप्र जाय सुनि चाय भहराय गयो दयो लै खड़ग यासों फेरी फेर लीजिये।
भयो जू विवाह उत्साह कहूं मात नाहिं आई घर अम्बरीष देखि छवि भीजिये॥
कह्यौ नव मन्दिर में झारिकै बसेरो देवो देवो सब भोग विभौ नाना सुख कीजिये।
पूरब जनम कोऊ मेरे भक्ति गन्ध हुती याते सम्बन्ध पायो यहै मानि धीजिये॥ ४५॥
रजनी के सेस पति भौन में प्रवेश कियो लियो प्रेम साथ ढिग मन्दिर के आइये।
बाहिरी टहल पात्र चौका करि रीझि रही गही कौन जाय जामे होत न लखाइये॥
आवत ही राजा देखि लगै न निमेष किहूँ कौन चोर आयो मेरी सेवा लै चुराइये।
देखि दिन तीनि फेर चीन्हिके प्रवीन कही ऐसो मन जौ पै प्रभु माथे पधराइये॥ ४६॥
लई बात मानि मानो मन्त्र लै सुनायौ कान होत ही बिहान सेवा नीकी पधराई है।
करत सिंगार फिर आपु ही निहारि रहै लहै नहीं पार दृग झरी सी लगाई है॥
भई बढ़वार राग भोग सों अपार भाव भक्ति विस्तार रीति पुरी सब छाई है।
नृप हू सुनत अब लागि चोप देखिबे की आये ततकाल मति अति अकुलाई है॥ ४७॥

हरे हरे पाँव धरै पौरियान मने करै खरे अरबैं कब देखौं भागभरी को।
गये चलि मन्दिर लौं सुन्दरी न सुधि अङ्ग रङ्ग भीजि रही दृग लाइ रहे झरी को॥
बीन लै बजावै गावैं लालन रिझावै त्यों त्यों अति मनभावै कहैं धन्य यह घरी को।
द्वार पै रह्यो न जाय गये ढिग ललचाय भई उठि ठाढ़ि देखि राजा गुरु हरी को॥ ४८॥
वैसे ही बजाओ बीनताननि नवीन लैके झीन सुर कान परै जाति मति खोइये।
जैसे रंग भीजि रही कही सो न जात मोपै ऐपै मन नैन चैन कैसे करि गोइये॥
करि कै अलापचारी फेरि कै सँभारि तान आइ गयो ध्यान रूप ताहि माँझ भोइये।
प्रीति रस रूप भई राति सब बीति गई नई कछु रीति अहो जामें नहिं सोइये॥ ४९॥
बात सुनी रानी और राजा गये नई ठौर भई सिरमौर अब कौन वाकी सर है।
हमहूँ लै सेवा करैं पति मति वश करैं धरैं नित्य ध्यान विषय बुद्धि राखी धर है॥
सुनिकै प्रसन्न भये अति अम्बरीष ईस लागी चोप फैलि गई भक्ति घर घर है।
बढ़ैं दिन दिन चाव ऐसोई प्रभाव कोई पलटै सुभाव होत आनँद को भर है॥ ५०॥

श्रीविदुरजी एवं उनकी धर्मपत्नी (विदुरानीजी)

माण्डव्य ऋषिके शापसे यमराजजीने ही दासीपुत्रके रूपमें धृतराष्ट्र तथा पाण्डुके भाई होकर जन्म लिया था। यमराजजी भागवताचार्य हैं। अपने इस रूपमें मनुष्य-जन्म लेकर भी वे भगवान्‌के परम भक्त तथा धर्मपरायण ही रहे। विदुरजी महाराज धृतराष्ट्रके मन्त्री थे और सदा इसी प्रयत्नमें रहते थे कि महाराज धर्मका पालन करें। नीतिशास्त्रके ये महान् पण्डित और प्रवर्तक थे। इनकी विदुरनीति बहुत ही उपादेय और प्रख्यात है।

जब कभी पुत्र-स्नेहवश धृतराष्ट्र पाण्डवोंको क्लेश देते या उनके अहितकी योजना सोचते, तब विदुरजी उन्हें समझानेका प्रयत्न करते। स्पष्टवादी और न्यायका समर्थक होनेपर भी धृतराष्ट्र इन्हें बहुत मानते थे। दुर्योधन अवश्य ही इनसे जला करता था। धर्मरत पाण्डुके पुत्रोंसे ये स्नेह करते थे। जब दुरात्मा दुर्योधनने लाक्षाभवनमें पाण्डवोंको जलानेका षड्यन्त्र किया, तब विदुरजीने उन्हें बचानेकी व्यवस्था की और गुह्य भाषामें सन्देश भेजकर युधिष्ठिरको पहले ही सावधान कर दिया तथा उस भयंकर गृहसे बच निकलनेकी युक्ति भी बता दी।

सज्जनोंको सदा न्याय एवं धर्म ही अच्छा लगता है। अन्याय तथा अधर्मका विरोध करना उनका स्वभाव होता है। इसके लिये अनेकों बार दुर्जनोंसे उन्हें तिरस्कृत तथा पीड़ित भी होना पड़ता है। विदुरजी दुर्योधनके दुष्कर्मोंका प्रबल विरोध करते थे। जब कौरवोंने भरी सभामें द्रौपदीको अपमानित करना प्रारम्भ किया, तब वे रुष्ट होकर सभाभवनसे चले गये। पाण्डवोंके वनवासके समय दुर्योधनके भड़कानेसे धृतराष्ट्रने विदुरजीको कह दिया—तुम सदा पाण्डवोंकी ही प्रशंसा करते हो, अतः उन्हींके पास चले जाओ। विदुरजी वनमें पाण्डवोंके पास चले गये। उनके चले जानेपर धृतराष्ट्रको उनकी महत्ताका पता लगा। विदुरसे रहित अपनेको वे असहाय समझने लगे। तब दूत भेजकर विदुरजीको उन्होंने फिर बुलाया। मानापमानमें समान भाव रखनेवाले विदुरजी लौट आये।

पाण्डवोंके वनवासके तेरह वर्ष कुन्तीदेवी विदुरजीके यहाँ ही रही थीं। जब श्रीकृष्णचन्द्र सन्धि कराने पधारे, तब दुर्योधनका स्वागत-सत्कार उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उन मधुसूदनको कभी ऐश्वर्य सन्तुष्ट नहीं कर पाता, वे तो भक्तके भावभरे तुलसीदल एवं जलके ही भूखे रहते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रने धृतराष्ट्र, भीष्म,

भूरिश्रवा आदि समस्त लोगोंका आतिथ्य अस्वीकार कर दिया और विदुरजीके घर वे बिना निमन्त्रणके ही पहुँच गये। अपने सच्चे भक्तका घर तो उनका अपना ही घर है। विदुरके शाकको उन त्रिभुवनपतिने नैवेद्य बनाया। विदुरानीके केलेके छिलकेकी कथा प्रसिद्ध है। महाभारतके अनुसार विदुरजीने विविध व्यंजनादिसे उनका सत्कार किया था।

महाराज धृतराष्ट्रको भरी सभामें श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख तथा केशवके चले जानेपर अकेले भी विदुरने समझाया—दुर्योधन पापी है। इसके कारण कुरुकुलका विनाश होता दीखता है। इसे बाँधकर आप पाण्डवोंको दे दें। दुर्योधन इससे बहुत बिगड़ा। उसने कठोर वचन कहे। विदुरजीको युद्धमें किसीका पक्ष लेना नहीं था, अत: शस्त्र छोड़कर वे तीर्थाटनको चले गये। अवधूतवेशमें वे तीर्थोंमें घूमते रहे। बिना माँगे जो कुछ मिल जाता, वही खा लेते। नंगे शरीर कन्द-मूल खाते हुए वे तीर्थोंमें लगभग ३६ वर्ष विचरते रहे। अन्तमें मथुरामें इन्हें उद्धवजी मिले। उनसे महाभारतके युद्ध, यदुकुलके क्षय तथा भगवान्‌के स्वधामगमनका समाचार मिला। भगवान्‌ने स्वधाम पधारते समय महर्षि मैत्रेयको आदेश दिया था विदुरजीको उपदेश करनेका। उद्धवजीसे यह समाचार पाकर विदुरजी हरद्वार गये। वहाँ मैत्रेयजीसे उन्होंने भगवदुपदिष्ट तत्त्वज्ञान प्राप्त किया और फिर हस्तिनापुर आये। हस्तिनापुर विदुरजी केवल बड़े भाई धृतराष्ट्रको आत्मकल्याणका मार्ग प्रदर्शन करने आये थे। उनके उपदेशसे धृतराष्ट्र एवं गान्धारीका मोह दूर हो गया और वे विरक्त होकर वनको चले गये। विदुरजी तो सदासे विरक्त थे। वनमें जाकर उन्होंने भगवान्‌में चित्त लगाकर योगियोंकी भाँति शरीरको छोड़ दिया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीविदुरजी और उनकी धर्मपत्नीके चरित्रका वर्णन इस प्रकार किया है—

न्हात ही विदुर नारि अंगन पखारि करि आइ गये द्वार कृष्ण बोलिकै सुनायो है।
सुनत ही स्वर सुधि डारी लै निदरि मानो राख्यो मद भरि दौरि आनिकै चितायो है॥
डारि दियो पीतपट कटि लपटाय लियो हियौ सकुचायो वेष वेगि ही बनायो है।
बैठी ढिग आइ केरा छीलि छिलका खवाइ आयो पति खीझ्यो दुःख कोटि गुनो पायो है॥ ५१॥
प्रेम को बिचारि आपु लागे फलसार दैन चैन पायो हियो नारि बड़ी दुखदाई है।
बोले रीझि श्याम तुम कीनो बड़ोकाम ऐपै स्वाद अभिराम वैसी वस्तु में न पाई है॥
तिया सकुचाय कर काटि डारौं हाय प्राणप्यारे को खवाइ छीलि छिलका न भाई है।
हित ही की बातें दोऊ पार पावैं नाहिं कोऊ नीकेकै लड़ावै सोई जानै यह गाई है॥ ५२॥

कवित्तोंका भाव इस प्रकार है—

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण विदुरजीके दरवाजेपर पहुँचे, उस समय उनकी स्त्री स्नान कर रही थी। आते ही श्रीकृष्णने बाहरसे आवाज लगायी। विदुरानीने सुनते ही श्रीकृष्णकी आवाज पहचान ली और सुध-बुध भूल गयी, जैसे उस स्वरमें कोई आकर्षण हो। वस्त्र पहने बिना ही वह ज्यों-की-त्यों दौड़ आयी और किवाड़ खोलकर भगवान्‌के दर्शन किये। भगवान्‌ने जब उनका यह हाल देखा, तो झटसे कमरसे लिपटा हुआ पीताम्बर उनके शरीरपर डाल दिया। अब विदुरानीको होश आया। वह बड़ी लज्जित हुई और जल्दी ही अन्दर जाकर कपड़े पहन आयी। इसके अनन्तर वह श्रीकृष्णके पास आकर बैठ गयी और खिलानेके लिये लाये हुए केलोंको छील-छीलकर प्रेममें बेसुध होनेके कारण गूदेके स्थानपर छिलके खिलाने लगीं। इतनेमें पतिदेव श्रीविदुरजी भी आ गये। उन्होंने यह दृश्य देखा, तो अपनी पत्नीपर बहुत झल्लाये। विदुरानीको

जब अपनी भूल मालूम हुई तो उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

प्रेमाधिक्यके कारण पत्नीसे हुई भूलको विचारकर श्रीविदुरजी भगवान्‌को केलेके गूदे खिलाने लगे। अब उनके हृदयको शान्ति मिली। फिर भी बार-बार यही सोचते रहे कि इस स्त्रीने छिलका खिलाकर भगवान्‌को बड़ा कष्ट दिया। इसपर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'विदुरजी! आपने यह काम ठीक किया कि मुझे केले खिलाये, पर सच बात तो यह है कि इतनेपर भी जैसा स्वाद उन छिलकोंमें मिला था, वैसा इन केलोंके गूदोंमें कहाँ!' उधर श्रीविदुरानी अपने मनमें कह रही थी—'हाय! इन हाथोंको मैं कैसे काट डालूँ, जिन्होंने गूदा तो फेंक दिया और छिलका खिला दिया। धन्य हैं विदुर-विदुरानी और धन्य है उनकी भक्ति! सूरदासजीने भी प्रभुद्वारा विदुरजीके यहाँ भोजन करनेका प्रधान कारण प्रेम ही माना है—

सबसों ऊँची प्रेम सगाई।
दुरजोधनके मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खाई॥
जूठे फल सबरीके खाये, बहु बिधि स्वाद बताई।
प्रेमके बस नृप सेवा कीन्हीं आप बने हरि नाई॥
राजसु-जग्य जुधिष्ठिर कीन्हों तामें जूँठ उठाई।
प्रेमके बस पारथ रथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई॥
ऐसी प्रीति बढ़ी बृंदाबन, गोपिन नाच नचाई।
सूर कूर इहि लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई॥

श्रीअक्रूरजी

अक्रूरजीका जन्म यदुवंशमें ही हुआ था। ये कुटुम्बके नातेसे वसुदेवजीके भाई लगते थे। इनके पिताका नाम श्वफल्क था। ये कंसके दरबारके एक दरबारी थे। कंसके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर बहुत-से यदुवंशी इधर-उधर भाग गये थे, किंतु ये जिस-किसी प्रकार कंसके दरबारमें ही पड़े हुए थे।

जब अनेक उपाय करके भी कंस भगवान्‌को नहीं मरवा सका, तब उसने एक चाल चली। उसने एक धनुषयज्ञ रचा और उसमें मल्लोंके द्वारा मरवा डालनेके लिये गोकुलसे गोप-ग्वालोंके सहित श्रीकृष्ण-बलरामको बुलवाया। उन्हें आदरपूर्वक लानेके लिये अक्रूरजीको भेजा गया। कंसकी आज्ञा पाकर अक्रूरजीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। वे भगवान्‌के दर्शनके लिये बड़े उत्कण्ठित थे। किसी-न-किसी प्रकार वे भगवान्‌के दर्शन करना चाहते थे। भगवान्‌ने स्वतः ही कृपा करके ऐसा संयोग जुटा दिया। जीव अपने पुरुषार्थसे प्रभुके दर्शन करना चाहे तो यह उसकी अनधिकार चेष्टा है। कोटि जन्ममें भी उतनी पवित्रता, वैसी योग्यता जीव नहीं प्राप्त कर सकता कि जिससे वह परात्पर प्रभुके सामने पुरुषार्थके बलपर पहुँच सके। जब प्रभु ही अपनी अहैतुकी कृपाके द्वारा जीवको अपने समीप बुलाना चाहें, तभी वह वहाँ जा सकता है। प्रभुने कृपा करके घर बैठे ही अक्रूरजीको बुला दिया।

प्रातःकाल मथुरासे रथ लेकर वे नन्दगाँव भगवान्‌को लेने चले। रास्तेमें अनेक प्रकारके मनोरथ करते जाते थे। सोचते थे—अहा, उन पीताम्बरधारी बनवारीको मैं इन्हीं चक्षुओंसे देखूँगा, उनके सुन्दर मुखारविन्दको, घुँघराली काली-काली अलकावलीसे युक्त सुकपोलोंको निहारूँगा। वे जब मुझे अपने सुकोमल करकमलोंसे स्पर्श करेंगे, उस समय मेरे समस्त शरीरमें बिजली-सी दौड़ जायगी। वे मुझसे हँस-हँसकर बातें करेंगे। मुझे पास बिठायेंगे। बार-बार प्रेमपूर्वक चाचा-चाचा कहेंगे। मेरे लिये वह कितने सुखकी स्थिति होगी। इस प्रकार भाँति-भाँतिकी कल्पनाएँ करते हुए वे वृन्दावनके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने वज्र,

अंकुश, यव, ध्वजा आदि चिह्नोंसे विभूषित श्यामसुन्दरके चरणचिह्नोंको देखा। बस, फिर क्या था! वे उन घनश्यामके चरणचिह्नोंको देखते ही रथसे कूद पड़े और उनकी वन्दना करके उस धूलिमें लोटने लगे। उन्हें उस धूलिमें लोटनेमें कितना सुख मिल रहा था, यह कहनेकी बात नहीं है। जैसे-तैसे व्रज पहुँचे। सर्वप्रथम बलदेवजीके साथ श्यामसुन्दर ही उन्हें मिले। उन्हें छातीसे लगाया, घर ले गये। कुशल पूछी, आतिथ्य किया और सब समाचार जाने।

दूसरे दिन रथपर चढ़कर अक्रूरके साथ श्यामसुन्दर और बलराम मथुरा चले। गोपियोंने उनका रथ घेर लिया, बड़ी कठिनतासे वे आगे बढ़ सके। थोड़ी दूर चलकर यमुना-किनारे अक्रूरजी नित्य-कर्म करने ठहरे। स्नान करनेके लिये ज्यों ही उन्होंने डुबकी लगायी कि भीतर चतुर्भुज श्रीश्यामसुन्दर दिखायी दिये। घबराकर ऊपर आये तो दोनों भाइयोंको रथपर बैठे देखा। फिर डुबकी लगायी तो फिर वही मूर्ति जलके भीतर दिखायी दी। अक्रूरजीको ज्ञान हो गया कि जलमें, स्थलमें, शून्यमें—कोई भी ऐसा स्थान नहीं, जहाँ श्यामसुन्दर विराजमान न हों। भगवान् उन्हें देखकर हँस पड़े। वे भी प्रणाम करके रथपर बैठ गये। मथुरा पहुँचकर भगवान् रथपरसे उतर पड़े और बोले—हम अकेले ही पैदल जायँगे। अक्रूरजीने बहुत प्रार्थना की—आप रथपर पहले मेरे घर पधारें, तब कहीं अन्यत्र जायँ। भगवान्‌ने कहा—आपके घर तो तभी जाऊँगा, जब कंसका अन्त हो जायगा। अक्रूरजी दुखी मनसे चले गये।

कंसको मारकर भगवान् अक्रूरजीके घर गये। अब अक्रूरजीके आनन्दका क्या ठिकाना! जिनके दर्शनके लिय योगीन्द्र-मुनीन्द्र हजारों-लाखों वर्ष तपस्या करते हैं, वे स्वतः ही बिना प्रयासके घरपर पधार गये। अक्रूरजीने उनकी विधिवत् पूजा की और कोई आज्ञा चाही। भगवान्‌ने अक्रूरजीको अपना अन्तरंग सुहृद् समझकर आज्ञा दी कि हस्तिनापुरमें जाकर हमारी बूआके लड़के पाण्डवोंके समाचार ले आइये। हमने सुना है, धृतराष्ट्र उन्हें दुःख देता है। भगवान्‌की आज्ञा पाकर अक्रूरजी हस्तिनापुर गये और धृतराष्ट्रको सब प्रकारसे समझाकर और पाण्डवोंके समाचार लेकर लौट आये।

भगवान् जब मथुरापुरीको त्यागकर द्वारका पधारे, तब अक्रूरजी भी उनके साथ ही गये। अक्रूरजी इतने पुण्यशील थे कि वे जहाँ रहते, वहाँ खूब वर्षा होती, अकाल नहीं पड़ता। किसी प्रकारका कष्ट और महामारी आदि उपद्रव नहीं होते। एक बार वे जब किसी कारणवश द्वारकासे चले गये थे, तब द्वारकामें दैविक और भौतिक दुःखोंसे प्रजाको बड़ा भारी मानसिक और शारीरिक कष्ट सहना पड़ा था। आखिर भगवान्‌ने उनको ढुँढ़वाकर वापस बुलवाया। ये सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्णके चाचा होनेपर भी उनके सच्चे भक्त थे। अन्तमें भगवान्‌के साथ ही वे परम धामको पधारे।

श्रीसुदामाजी

विप्रवर सुदामा जन्मसे ही दरिद्र थे। श्रीकृष्णचन्द्र जब अवन्तीमें महर्षि सान्दीपनिके यहाँ शिक्षा प्राप्त करने गये, तब सुदामाजी भी वहीं गुरुके आश्रममें थे। वहाँ श्रीकृष्णचन्द्रसे उनकी मैत्री हो गयी। दीनबन्धुको छोड़कर दीनोंसे भला और कौन मित्रता करेगा? श्यामसुन्दर तो गिने-चुने दिन गुरु-गृह रहे और उतने ही दिनोंमें वे समस्त वेद-वेदांग, शास्त्रादि तथा सभी कलाओंकी शिक्षा पूर्ण करके चले आये। वे द्वारकाधीश हो गये। सुदामाकी भी जब शिक्षा पूरी हुई, तब गुरुदेवकी आज्ञा लेकर वे भी अपनी जन्मभूमि लौट आये। विवाह करके उन्होंने भी गृहस्थाश्रम स्वीकार किया। एक टूटी झोंपड़ी, टूटे-फूटे दो-चार पात्र और लज्जा ढकनेको कुछ मैले चिथड़े—बस, इतनी ही गृहस्थी थी सुदामाकी। जन्मसे सरल, सन्तोषी सुदामा किसीसे कुछ माँगते नहीं थे। जो कुछ बिना माँगे मिल जाय, भगवान्‌को अर्पण करके उसीपर उनका एवं उनकी

पत्नीका जीवन-निर्वाह होता था। प्रायः पति-पत्नीको उपवास करना पड़ता था। उन दोनोंके शरीर क्षीण-कंकालप्राय हो रहे थे।

जिसने श्यामसुन्दरकी स्वप्नमें भी एक झाँकी कर ली, उसके हृदयसे वह मोहिनी मूर्ति कभी हटती नहीं; फिर सुदामा तो उन भुवन-मोहनके सहपाठी रह चुके थे। उन वनमालीके साथ बहुत दिनतक उन्होंने पढ़ा था, गुरुकी सेवा की थी, वनमें साथ-साथ कुश, समिधा, फल-फूल एकत्र किये थे। उस मयूरमुकुटीने उनके चित्तको चुरा लिया था। वे उसीका बराबर ध्यान करते, उसीका गुणगान करते। पत्नीसे भी वे अपने सखाके रूप, गुण, उदारता आदिका बखान करते थकते न थे।

सुदामाकी पत्नी सुशीला, साध्वी एवं पतिपरायणा थी। उसे अपने कष्टकी कोई चिन्ता नहीं थी; किंतु उसके दुबले, क्षीणकाय, धर्मात्मा पतिदेवको जब उपवास करना पड़ता था, तब उसे अपार कष्ट होता था। एक बार जब कई दिनों उपवास करना पड़ा, तब उसने डरते-डरते स्वामीसे कहा—'महाभाग! ब्राह्मणोंके परम भक्त, साक्षात् लक्ष्मीपति, शरणागतवत्सल यादवेन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र आपके मित्र हैं। आप एक बार उनके पास जाइये। आप कुटुम्बी हैं, दरिद्रताके कारण क्लेश पा रहे हैं, अवश्य आपको प्रचुर धन देंगे। वे द्वारकाधीश अपने श्रीचरणोंकी सेवा करनेवालेको अपने आपको दे डालते हैं; फिर धन दे देंगे, इसमें तो सन्देह ही क्या है। मैं जानती हूँ कि आपके मनमें धनकी रत्तीभर भी इच्छा नहीं है, पर आप कुटुम्बी हैं। आपके कुटुम्बका इस प्रकार कैसे निर्वाह होगा? आप अवश्य द्वारका जायँ।'

सुदामाने देखा कि ब्राह्मणी भूखके कष्टसे व्याकुल हो गयी है, दरिद्रतासे घबराकर वह मुझे द्वारका भेज रही है। किंतु श्यामसुन्दरके पास धनकी इच्छासे जानेमें उन्हें बड़ा संकोच हुआ। उन्होंने स्त्रीसे कहा—'पगली! ब्राह्मणको धनसे क्या काम? तू कहे तो मैं भिक्षा माँग लाऊँ, पर धनके लिये द्वारका जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। हमें तो सन्तोषपूर्वक भगवान्‌का भजन करनेमें ही सुख मानना चाहिये।'

ब्राह्मणीने बहुत आग्रह किया। वह चाहती थी कि सुदामा अपने मित्रसे केवल मिल आयें एक बार। सुदामाने भी सोचा कि श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन हो जायँ, यह तो परम लाभकी बात है। परंतु मित्रके पास खाली हाथ कैसे जायँ? कहनेपर किसी प्रकार ब्राह्मणी किसी पड़ोसिनसे चार मुट्ठी रूखे चिउरे माँग लायी और उनको एक चिथड़ेमें बाँधकर दे दिया। वह पोटली बगलमें दबाकर सुदामाजी चल पड़े द्वारकाकी ओर।

अब कई दिनोंकी यात्रा करके सुदामा द्वारका पहुँचे, तब वहाँका ऐश्वर्य देखकर हक्के-बक्के रह गये। गगनचुम्बी स्फटिकमणिके भवन, स्वर्णके कलश, रत्नखचित दीवारें—स्वर्ग भी जहाँ फीका, झोपड़ी-सा जान पड़े, उस द्वारकाको देखकर दरिद्र ब्राह्मण ठक् रह गये। किसी प्रकार उन्हें पूछनेका साहस हुआ। एक नागरिकने श्रीकृष्णचन्द्रका भवन दिखा दिया। ऐसे कंगाल, चिथड़े लपेटे, मैले-कुचैले ब्राह्मणको देखकर द्वारपालको आश्चर्य नहीं हुआ। उसके स्वामी ऐसे ही दीनोंके अपने हैं, यह उसे पता था। उसने सुदामाको प्रणाम किया। परंतु जब सुदामाने अपनेको भगवान्‌का 'मित्र' बताया, तब वह चकित रह गया। देवराज इन्द्र भी अपनेको जहाँ बड़े संकोचसे 'दास' कह पाते थे, वहाँ यह कंगाल 'मित्र' कह रहा था। किंतु उन अशरण-शरण कृपासिन्धुका कौन कैसा मित्र है, यह भला, कब किसीने जाना है। नियमानुसार सुदामाजीको द्वारपर ठहराकर द्वारपाल आज्ञा लेने भीतर गया।

त्रिभुवनके स्वामी, सर्वेश्वर यादवेन्द्र अपने भवनमें शय्यापर बैठे थे। श्रीरुक्मिणीजी अपने हाथमें रत्नदण्ड लेकर व्यजन कर रही थीं भगवान्‌को। द्वारपालने भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और कहा—'एक फटे चिथड़े लपेटे, नंगे सिर, नंगे बदन, शरीर मैला-कुचैला, बहुत ही दुर्बल ब्राह्मण द्वारपर खड़ा है। पता नहीं,

वह कौन है और कहाँका है ? बड़े आश्चर्यसे चारों ओर वह देखता है। अपनेको प्रभुका मित्र कहता, प्रभुका निवास पूछता है और अपना नाम 'सुदामा' बताता है।'

'सुदामा' यह शब्द कानमें पड़ा कि श्रीकृष्णचन्द्रने जैसे सुधि-बुधि खो दी। मुकुट धरा रहा, पटुका भूमिपर गिर गया, चरणोंमें पादुकातक नहीं, वे विह्वल दौड़ पड़े। द्वारपर आकर दोनों हाथ फैलाकर सुदामाको इस प्रकार हृदयसे लगा लिया, जैसे चिरकालसे खोयी निधि मिल गयी हो। सुदामा और श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंके नेत्रोंसे अजस्र अश्रुप्रवाह चलने लगा। कोई एक शब्दतक नहीं बोला। नगरवासी, रानियाँ, सेवक—सब चकित हो देखते रह गये। देवता पुष्पवर्षा करते हुए ब्राह्मणके सौभाग्यकी प्रशंसा करने लगे।

बड़ी देरमें जब उद्धवादिने सावधान किया, तब श्यामसुन्दर सुदामाको लेकर अपने भवनमें पधारे। प्रिय सखाको उन्होंने अपने दिव्य पलंगपर बैठा दिया। स्वयं उनके पैर धोने बैठे। 'ओह, मेरे सखाके पैर इस प्रकार बिवाइयोंसे फट रहे हैं! इतनी दरिद्रता, इतना कष्ट भोगते हैं ये विप्रदेव!' हाथमें सुदामाका चरण लेकर कमललोचन अश्रु गिराने लगे। उनकी नेत्र-जलधारासे ही ब्राह्मणके चरण धुल गये। रुक्मिणीजीने भगवान्‌की यह भावविह्वल दशा देखकर अपने हाथों सुदामाके चरण धोये। जिन भगवती महालक्ष्मीकी कृपा-कोरकी याचना सारे लोकपाल करते हैं, वे आदरपूर्वक कंगाल ब्राह्मणका पाद-प्रक्षालन करती रहीं। द्वारकेशने वह चरणोदक अपने मस्तकपर छिड़का, तमाम महलोंमें छिड़कवाया। दिव्य गन्धयुक्त चन्दन, दूब, अगुरु, कुंकुम, धूप, दीप, पुष्प, माला आदिसे विधिपूर्वक सुदामाकी भगवान्‌ने पूजा की। उन्हें नाना प्रकारके पक्वान्नोंसे भोजन कराके तृप्त किया। आचमन कराके पान दिया।

जब भोजन करके सुदामा बैठ गये, तब भगवान्‌की पटरानियाँ स्वयं अपने हाथों उनपर पंखा झलने लगीं। श्रीकृष्णचन्द्र उनके समीप बैठ गये और उनका हाथ अपने हाथमें लेकर बातें करने लगे। श्यामसुन्दरने उनसे गुरुगृहमें रहनेकी चर्चा की, अपनी मित्रताके मधुर संस्मरण कहे, घरकी कुशल पूछी। सुदामाके मनमें कहीं कोई कामना नहीं थी। धनकी इच्छा लेश भी उनके मनमें नहीं थी। उन्होंने कहा—'देवदेव! आप तो जगद्‌गुरु हैं। आपको भला, गुरुगृह जानेकी आवश्यकता कहाँ थी। यह तो मेरा सौभाग्य था कि मुझे आपका साथ मिला। सम्पूर्ण मंगलोंकी उत्पत्ति आपसे ही है। वेदमय ब्रह्म आपकी मूर्ति हैं। आपका गुरुगृहमें अध्ययन तो एक लीलामात्र था।'

अब हँसते हुए लीलामयने पूछा—'भाई! आप मेरे लिये भेंट क्या लाये हैं? प्रेमियोंकी दी हुई जरा-सी वस्तु भी मुझे बहुत प्रिय लगती है और अभक्तोंका विपुल उपहार भी मुझे सन्तुष्ट नहीं करता।'

सुदामाका साहस कैसे हो द्वारकाके इस अतुल ऐश्वर्यके स्वामीको रूखे चिउरे देनेका! वे मस्तक झुकाकर चुप रह गये। सर्वान्तर्यामी श्रीहरिने सब कुछ जानकर यह निश्चय कर ही लिया था कि 'यह मेरा निष्काम भक्त है। पहले भी कभी धनकी इच्छासे इसने मेरा भजन नहीं किया और न अब इसे कोई कामना है; किंतु अपनी पतिव्रता पत्नीके कहनेसे जब यह यहाँ आ गया, तब मैं इसे वह सम्पत्ति दूँगा, जो देवताओंको भी दुर्लभ है।'

'यह क्या है? भाभीने मेरे लिये जो कुछ भेजा है, उसे आप छिपाये क्यों जा रहे हैं?' यह कहते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं पोटली खींच ली। पुराना जीर्ण वस्त्र फट गया। चिउरे बिखर पड़े। भगवान्‌ने अपने पीतपटमें कंगालकी निधिके समान उन्हें शीघ्रतासे समेटा और एक मुट्ठी भरकर मुखमें डालते हुए कहा—'मित्र! यही तो मुझको परम प्रसन्न करनेवाली प्रिय भेंट है। ये चिउरे मेरे साथ समस्त विश्वको तृप्त कर देंगे।'

'बड़ा मधुर, बहुत स्वादिष्ट! ऐसा अमृत-जैसा पदार्थ तो कभी कहीं मिला ही नहीं!' इस प्रकार प्रशंसा करते हुए जब श्रीकृष्णचन्द्रने दूसरी मुट्ठी भरी, तब रुक्मिणीजीने उनका हाथ पकड़ते हुए कहा—'प्रभो! बस कीजिये। मेरी कृपासे इस लोक और परलोकमें मिलनेवाली सब प्रकारकी सम्पत्ति तो इस एक मुट्ठी चिउरेसे ही इस ब्राह्मणको मिल चुकी। अब इस दूसरी मुट्ठीसे आप और क्या करनेवाले हैं? अब आप मुझपर दया कीजिये।' भगवान् मुट्ठी छोड़कर मुसकराने लगे।

कुछ दिनोंतक सुदामाजी वहाँ रहे। श्रीकृष्णचन्द्र तथा उनकी पटरानियोंने बड़ी सेवा की उनकी। अन्तमें अपने सखाकी आज्ञा लेकर वे घरको विदा हुए। लीलामयने दूरतक पहुँचाकर उनको विदा किया। सुदामाजीको धनकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। श्रीकृष्णचन्द्र बिना माँगे ही बहुत कुछ देंगे, ऐसी भावना भी उनके हृदयमें नहीं उठी थी। द्वारकासे कुछ नहीं मिला, इसका उन्हें कोई खेद तो हुआ ही नहीं। उलटे वे सोचते जा रहे थे—'ओह! मैंने अपने परम उदार सखाकी ब्राह्मण-भक्ति देखी। कहाँ तो मैं दरिद्र, पापी और कहाँ वे लक्ष्मीनिवास पुण्यचरित्र! किंतु मुझे उन्होंने उल्लसित होकर हृदयसे लगाया, अपनी प्रियाके पलंगपर बैठाया, मेरे चरण धोये। साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीकी अवतार रुक्मिणीजी मुझपर चँवर करती रहीं! मेरे परम सुहृद् श्रीकृष्ण कितने दयालु हैं। मनुष्यको उनके चरणोंकी सेवा करनेसे ही तीनों लोकोंकी सम्पत्ति, सब सिद्धियाँ और मोक्षतक मिल जाता है। उनके लिये मुझे धन देना कितना सरल था; किंतु उन दयामयने सोचा कि यह निर्धन धन पाकर मतवाला हो जायगा और मेरा स्मरण नहीं करेगा, अतः मेरे कल्याणके लिये उन्होंने धन नहीं दिया।'

धन्य सुदामा! घरमें भूखी स्त्रीको छोड़ आये हैं, अन्न-वस्त्रका ठिकाना नहीं, पत्नीको जाकर क्या उत्तर देंगे, इसकी चिन्ता नहीं, राजराजेश्वर मित्रसे मिलकर कोरे लौटे—इसकी ग्लानि नहीं। धनके लिये धनके भक्त भगवान्की आराधना करते हैं और धन न मिलनेपर उन्हें कोसते हैं; किंतु सुदामा-जैसे भगवान्के भक्त तो भगवान्को ही चाहते हैं। भगवान्के पास सुदामा पत्नीकी प्रेरणासे गये थे। सुदामाके मनमें कोई कामना नहीं थी, पर पत्नीने धन पानेकी इच्छासे ही प्रेरित किया था उन्हें। भक्तवांछाकल्पतरु भगवान्ने विश्वकर्माको भेजकर उनके ग्रामको द्वारका-जैसी भव्य सुदामापुरी बनवा दिया था। एक रातमें झोपड़ीके स्थानपर देवदुर्लभ ऐश्वर्यपूर्ण मणिमय भवन खड़े हो गये थे। जब सुदामा वहाँ पहुँचे, उन्हें जान ही न पड़ा कि जागते हैं कि स्वप्न देख रहे हैं। कहाँ मार्ग भूलकर पहुँच गये, यह भी वे समझ नहीं पाते थे। इतनेमें बहुत-से सेवकोंने उनका सत्कार किया, उन्हें भवनमें पहुँचाया। उनकी ब्राह्मणी अब किसी स्वर्गकी देवी-जैसी हो गयी थी। उसने सैकड़ों दासियोंके साथ आकर उनको प्रणाम किया। उन्हें घरमें ले गयी। सुदामाजी पहले तो विस्मित हो गये, पर पीछे सब रहस्य समझकर भाव-गद्गद हो गये। वे कहने लगे—'मेरे सखा उदार-चक्र-चूड़ामणि हैं। वे माँगनेवालेको लज्जित न होना पड़े, इसलिये चुपचाप छिपाकर उसे पूर्णकाम कर देते हैं। परंतु मुझे यह सम्पत्ति नहीं चाहिये। जन्म-जन्म मैं उन सर्वगुणागारकी विशुद्ध भक्तिमें लगा रहूँ, यही मुझे अभीष्ट है।'

सुदामा वह ऐश्वर्य पाकर भी अनासक्त रहे। विषय-भोगोंसे चित्तको हटाकर भजनमें ही वे सदा लगे रहे। इस प्रकार वे ब्रह्मभावको प्राप्त हो गये।

श्रीप्रियादासजीने सुदामाजीकी भक्तिप्रेममयी कथाका वर्णन इस प्रकार किया है—

बड़ो निष्काम सेर चूनहू न धाम ढिग आई निजभाम प्रीति हरिसों जनाई है।
सुनि सोच पर्‍यो हियो खरो अरबर्‍यो मन गाढ़ो लैकै कर्‍यो बोल्यो हाँजू सरसाई है॥

जावो एक बार वह वदन निहार आवो जोपै कछु पावो ल्यावो मोको सुखदाई है।
कही भली बात सात लोक में कलंक ह्वै है जानियत याही लिये कीन्ही मित्रताई है॥ ५३॥
तिया सुनि कहै कृष्ण रूप क्यों न चहै ? जाय दहै दुख आप ही सो बचन सुनाये हैं।
आई सुधि प्यारे की विचारे मति टारे सब धारे पग मग झूमि द्वारावती आये हैं॥
देखि के विभूति सुख उपज्यो अभूत कोऊ चल्यो मुख माधुरी के लोचन तिसाये हैं।
डरपत हियो ड्योढ़ी लाँघि मन गाढ़ो कियो लियो कर गहि चाह तहाँ पहुँचाये हैं॥ ५४॥
देख्यो श्याम आयो मित्र चित्रवत रहे नेकु हितको चरित्र दौरि रोइ गरे लागे हैं।
मानो एकतन भयो लयो ऐसे लाइ छाती नयो यह प्रेम छूटै नाहिं अङ्ग पागे हैं॥
आई दुबराई सुधि मिलन छुटाई ताने आने जल रानी पग धोये भाग जागे हैं।
सेज पधराइ गुरु चरचा चलाइ सुख सागर बढ़ाइ आपु अति अनुरागे हैं॥ ५५॥
चिउड़ा छिपाये काँख पूछैं कहा ल्याये मोंको अति सकुचाये भूमि तकैं दृग भीजे हैं।
खैंचि लई गाँठि मूठि एक मुख मांझ दई दूसरी हूँ लेत स्वाद पाइ आपु रीझे हैं॥
गह्यो कर रानी सुख सानी प्यारी वस्तु यह पावो बाँटि मानो श्रीसुदामा प्रेम धीजे हैं।
श्याम जू विचारि दीनी सम्पति अपार विदा भये पै न जानीं सार बिछुरनि छीजे हैं॥ ५६॥
आये निजग्राम वह अति अभिराम भयो नयो पुर द्वारका सों देखि मति गई है।
तिया रंग भीनी सङ्ग सतनि सहेली लीनी कीनी मनुहारि यों प्रतीति उर भई है॥
वहै हरि ध्यान रूप माधुरी को पान तासों राखैं निज प्रान जाके प्रीति रीति नई है।
भोग की न चाह ऐसे तनु निरबाह करैं ढरैं सोई चाल सुख जाल रसमई है॥ ५७॥

श्रीचन्द्रहासजी

जाको राखै साइँयाँ, मारि सकै न कोय। बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

(क) अनाथ चन्द्रहासपर भगवान् शालग्रामकी कृपा

केरलदेशमें एक मेधावी नामक राजा राज्य करते थे। शत्रुओंने उनके देशपर चढ़ाई की। युद्धमें महाराज मारे गये। उनकी रानी पतिके साथ सती हो गयीं। उस समयतक राजाके एक ही पुत्र थे—चन्द्रहास। राजकुमारकी अभी शैशवावस्था ही थी। धायने चुपकेसे उन्हें नगरसे निकाला और कुन्तलपुर ले गयी। वह स्वामिभक्ता धाय मेहनत-मजदूरी करके राजकुमारका पालन-पोषण करने लगी। चन्द्रहास बड़े ही सुन्दर थे और बहुत सरल तथा विनयी थे। सभी स्त्री-पुरुष ऐसे भोले सुन्दर बालकसे स्नेह करते थे।

जो अनाथ हो जाता है, जिसके कोई नहीं होता, जिसका कोई सहारा नहीं होता, उसके अनाथनाथ, अनाश्रयोंके आश्रय श्रीकृष्ण अपने हो जाते हैं, वे उसके आश्रय बन जाते हैं। अनाथ बालक चन्द्रहासको उनके बिना और कौन आश्रय देता ? उन दयामयकी प्रेरणासे एक दिन नारदजी घूमते हुए कुन्तलपुर पहुँचे। बालकको अधिकारी समझकर वे उसे एक शालग्रामकी मूर्ति देकर नाम-मन्त्र बता गये। नन्हा बालक देवर्षि की कृपासे हरिभक्त हो गया। अब जिस समय वह अपने-आपको भूलकर अपने कोमल कण्ठसे भगवन्नामका गान करते हुए नृत्य करने लगता, देखनेवाले मुग्ध हो उठते। चन्द्रहासको प्रत्यक्ष दीखता कि उसीकी अवस्थाका परम सुन्दर साँवरा-सलोना बालक हाथमें मुरली लिये उसके साथ नाच रहा है, गा रहा है। इससे चन्द्रहास और भी तन्मय हो जाता।

कुन्तलपुरके राजा परम भगवद्भक्त एवं संसारके विषयोंसे पूरे विरक्त थे। उनके कोई पुत्र तो था नहीं,

केवल चम्पकमालिनी नामकी एक कन्या थी। महर्षि गालवको राजाने अपना गुरु बनाया था और गुरुके उपदेशानुसार वे भगवान्‌के भजनमें ही लगे रहते थे। राज्यका पूरा प्रबन्ध मन्त्री धृष्टबुद्धि करता था। मन्त्रीकी पृथक् भी बहुत बड़ी सम्पत्ति थी और कुन्तलपुरके तो एक प्रकारसे वे ही शासक थे। उनके सुयोग्य पुत्र मदन तथा अमल उनकी राज्यकार्यमें सहायता करते थे। उनके 'विषया' नामकी एक सुन्दरी कन्या थी। मन्त्रीकी रुचि केवल राजकार्य और धन एकत्र करनेमें ही थी; किंतु उनके पुत्र मदनमें भगवान्‌की भक्ति थी। वह साधु-सन्तोंका सेवक था। इसलिये मन्त्रीके महलमें जहाँ विलास तथा राग-रंग चलता था, वहीं कभी-कभी सन्त भी एकत्र हो जाते थे। भगवान्‌की पावन कथा भी होती थी। अतिथि-सत्कार तथा भगवन्नाम-कीर्तन भी होते थे। इन कार्योंमें रुचि न होनेपर भी मन्त्री अपने पुत्रको रोकते नहीं थे।

एक दिन मन्त्रीके महलमें ऋषिगण बैठे थे। भगवान्‌की कथा हो रही थी। उसी समय सड़कपर भवनके सामनेसे भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए चन्द्रहास बालकोंकी मण्डलीके साथ निकले। बच्चोंकी अत्यन्त मधुर कीर्तन-ध्वनि सुनकर ऋषियोंके कहनेसे मदनने सबको वहीं बुला लिया। चन्द्रहासके साथ बालक नाचने-गाने लगे। मन्त्री धृष्टबुद्धि भी इसी समय वहाँ आ गये। मुनियोंने तेजस्वी बालक चन्द्रहासको तन्मय होकर कीर्तन करते देखा। वे मुग्ध हो गये। कीर्तन समाप्त होनेपर स्नेहपूर्वक समीप बुलाकर ऋषियोंने उन्हें बैठा लिया और उनके शरीरके लक्षणोंको देखने लगे। ऋषियोंने चन्द्रहासके शारीरिक लक्षण देखकर धृष्टबुद्धिसे कहा—'मन्त्रिवर! तुम इस बालकका प्रेमपूर्वक पालन करो। इसे अपने घर रखो। यही तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्तिका स्वामी तथा इस देशका नरेश होगा।'

'एक अज्ञात-कुल-शील, राहका भिखारी बालक मेरी सम्पत्तिका स्वामी होगा।' यह बात धृष्टबुद्धिके हृदयमें तीर-सी लगी। वे तो अपने लड़केको राजा बनानेका स्वप्न देख रहे थे। अब एक भिक्षुक-सा लड़का उनकी सारी इच्छाओंको नष्ट कर दे, यह उन्हें सहन नहीं हो रहा था। उन्होंने किसीसे कुछ कहा नहीं, पर सब लड़कोंको मिठाई देनेके बहाने घरके भीतर ले गया। मिठाई देकर दूसरे लड़कोंको तो उन्होंने विदा कर दिया, केवल चन्द्रहासको रोक लिया। एक विश्वासी वधिकको बुलाकर उसे चुपचाप समझाकर उसके साथ चन्द्रहासको भेज दिया।

वधिकको पुरस्कारका भारी लोभ मन्त्रीने दिया था। चन्द्रहासने जब देखा कि मुझे यह सुनसान जंगलमें रातके समय लाया है, तब इसका उद्देश्य समझकर कहा—'भाई! तुम मुझे भगवान्‌की पूजा कर लेने दो, तब मारना।' वधिकने अनुमति दे दी। चन्द्रहासने शालग्रामजीकी मूर्ति निकालकर उनकी पूजा की और उनके सम्मुख गद्गद कण्ठसे स्तुति करने लगा। भोले बालकका सुन्दर रूप, मधुर स्वर तथा भगवान्‌की भक्ति देखकर वधिककी आँखोंमें भी आँसू आ गये। उसका हृदय एक निरपराध बालकको मारना स्वीकार नहीं करता था। परंतु उसे मन्त्रीका भय था। उसने देखा कि चन्द्रहासके एक पैरमें छः अँगुलियाँ हैं। वधिकने तलवारसे जो एक अँगुली अधिक थी, उसे काट लिया और बालकको वहीं छोड़कर वह लौट गया। धृष्टबुद्धि वह अँगुली देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें लगा कि 'अपने बुद्धि-कौशलसे ऋषियोंकी अमोघ वाणी मैंने झूठी कर दी।'

कुन्तलपुर राज्यके अधीन एक छोटी रियासत थी—चन्दनपुर। वहाँके नरेश कुलिन्दक किसी कार्यसे बड़े सबेरे वनकी ओरसे घोड़ेपर चढ़े जा रहे थे। उनके कानोंमें बड़ी मधुर भगवन्नाम-कीर्तन-ध्वनि पड़ी। कटी अँगुलीकी पीड़ासे भूमिमें पड़े-पड़े चन्द्रहास करुण-कीर्तन कर रहे थे। राजाने कुछ दूरसे बड़े आश्चर्यसे देखा कि एक छोटा देवकुमार-जैसा बालक भूमिपर पड़ा है। उसके चारों ओर अद्भुत प्रकाश फैला है। वनकी हरिणियाँ उसके पैर चाट रही हैं। पक्षी उसके ऊपर पंख फैलाकर छाया किये हुए हैं और उसके लिये वृक्षोंसे पके फल ला रहे हैं। राजाके और पास जानेपर पशु-पक्षी वनमें चले गये। राजाके कोई संतान

नहीं थी। उन्होंने सोचा कि 'भगवान्‌ने मेरे लिये ही यह वैष्णव देवकुमार भेजा है।' घोड़ेसे उतरकर बड़े स्नेहसे चन्द्रहासको उन्होंने गोदमें उठाया। उनके शरीरकी धूलि पोंछी और उन्हें अपने राजभवनमें ले आये।

चन्द्रहास अब चन्दनपुरके युवराज हो गये। यज्ञोपवीत-संस्कार होनेके पश्चात् गुरुके यहाँ रहकर उन्होंने वेद, वेदांग तथा शास्त्रोंका अध्ययन किया। राजकुमारके योग्य अस्त्र-शस्त्र चलाना तथा नीतिशास्त्रादि सीखा। अपने सद्‌गुणोंसे वे राजपरिवारके लिये प्राणके समान प्रिय हो गये। राजाने उन्हींपर राज्यका भार छोड़ दिया। राजकुमारके प्रबन्धसे छोटी-सी रियासत हरिगुण-गानसे पूर्ण हो गयी। घर-घर हरिचर्चा होने लगी। सब लोग एकादशीव्रत करने लगे। पाठशालाओंमें हरिगुणगान अनिवार्य हो गया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचन्द्रहासजीके बाल्यकालका वर्णन निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

हुतो एक नृप ताके सुत चन्द्रहास भयो परी यों विपत्ति धाई लाई और पुर है।
राजा कौ दीवान ताके रही घर आन बाल आपने समान संग खेलै रस ढुर है॥
भयो ब्रह्मभोज कोई ऐसोई संयोग बन्यो आये वै कुमार जहाँ विप्रन को सुर है।
बोलि उठे सबै तेरी सुता को जु पति यहै हुवो चाहै जानि सुनि गयो लाज घुर है॥ ५८॥
पर्‌यो सोच भारी कहा करौं यौं विचारी अहो सुता जो हमारी ताको पति ऐसो चाहिये।
डारौं याहि मार याको यहै है विचार तब बोलि नीच जन कह्यो मारो हिय दाहिये॥
लैके गये दूर देखि बाल छबि पूर हम योनि परै धूर दुःख ऐसो अवगाहिये।
बोले अकुलाय तोहिं मारेंगे सहाय कौन मागौं एक बात जब कहौं तब बाहिये॥ ५९॥
मानि लीन्हों बोल वे कपोल मध्य गोल एक गंडकी को सुत काढ़ि सेवा नीकी कीनी है।
भयो तदाकार यों निहार सुख भार भरि नैननि की कोर ही सों आज्ञा बध दीनी है॥
गिरे मुरझाइ दया आइ कछु भाय भरे ढरे प्रभु ओर मति आनन्द सों भीनी है।
हुती छटी आंगुरी सो काटि लई दूषन हो भूषन ही भयो जाइ कही सांच चीन्हीं है॥ ६०॥
वहै देश भूमि में रहत लघुभूप और और सुख सबै एक सुत चाह भारी है।
निकस्यो विपिन आनि देखि याहि मोदमानि कीन्हीं खगछाँह घिरी मृगीपाँति सारी है॥
दौरिकै निशंक लियो पाइ निधि रंक जियो कियो मनभायो सो बधायो श्रीहु वारी है।
कोऊ दिन बीते नृप भये चित चीते दियो राजको तिलक भावभक्ति बिसतारी है॥ ६१॥

(ख) चन्द्रहासके साथ धृष्टबुद्धिका षड्यन्त्र

चन्दनपुर रियासतकी ओरसे कुन्तलपुरको दस हजार स्वर्णमुद्राएँ 'कर' के रूपमें प्रतिवर्ष दी जाती थीं। चन्द्रहासने उन मुद्राओंके साथ और भी बहुत-से धन-रत्नादि उपहार भेजे। धृष्टबुद्धिने जब चन्दनपुर राज्यके ऐश्वर्य एवं वहाँके युवराजके सुप्रबन्धकी बहुत प्रशंसा सुनी, तब स्वयं वहाँकी व्यवस्था देखने वे चन्दनपुर आये। राजा तथा राजकुमारने उनका हृदयसे स्वागत किया। यहाँ आकर जब धृष्टबुद्धिने चन्द्रहासको पहचाना, तब उनका हृदय व्याकुल हो गया। उन्होंने इस लड़केको मरवा डालनेका पूरा निश्चय कर लिया। उन्होंने एक पत्र देकर कहा—'युवराज! बहुत ही आवश्यक काम है और दूसरे किसीपर मेरा विश्वास नहीं। तुम स्वयं यह पत्र लेकर कुन्तलपुर जाओ। मार्गमें पत्र खुलने न पाये। कोई इस बातको न जाने। इसे मदनको ही देना।'

चन्द्रहास घोड़ेपर चढ़कर अकेले ही पत्र लेकर कुन्तलपुरको चल पड़े। दिनके तीसरे पहर वे कुन्तलपुरके पास वहाँके राजाके बगीचेमें पहुँचे। बहुत प्यासे और थके थे, अतः घोड़ेको पानी पिलाकर एक ओर बाँध दिया और स्वयं सरोवरमें जल पीकर एक वृक्षकी शीतल छायामें लेट गये। लेटते ही उन्हें निद्रा आ गयी। उसी समय

उस बगीचेमें राजकुमारी चम्पकमालिनी अपनी सखियों तथा मन्त्री-कन्या 'विषया' के साथ घूमने आयी थी। संयोगवश अकेली विषया उधर चली आयी, जहाँ चन्द्रहास सोये थे। इस परम सुन्दर युवकको देखकर वह मुग्ध हो गयी और ध्यानसे उसे देखने लगी। उसे निद्रित कुमारके हाथमें एक पत्र दीख पड़ा। कुतूहलवश उसने धीरेसे पत्र खींच लिया और पढ़ने लगी। पत्र उसके पिताका था। उसमें मन्त्रीने अपने पुत्रको लिखा था—'इस राजकुमारको पहुँचते ही विष दे देना। इसके कुल, शूरता, विद्या आदिका कुछ भी विचार न करके मेरे आदेशका तुरंत पालन करना।' मन्त्रीकी कन्याको एक बार पत्र पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। उसकी समझमें ही न आया कि पिताजी ऐसे सुन्दर देवकुमारको क्यों विष देना चाहते हैं ? सहसा उसे लगा कि पिताजी इससे मेरा विवाह करना चाहते हैं। वे मेरा नाम लिखते समय भूलसे 'या' अक्षर छोड़ गये। उसने भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता प्रकट की कि 'पत्र मेरे हाथ लगा; कहीं दूसरेको मिलता तो कितना अनर्थ होता।' अपने नेत्रके काजलसे उसने पत्रमें 'विष' के आगे उससे सटाकर 'या' लिख दिया, जिससे 'विषया दे देना' पढ़ा जाने लगा। पत्रको बन्द करके निद्रित राजकुमारके हाथमें ज्यों-का-त्यों रखकर वह शीघ्रतासे चली गयी।

चन्द्रहासकी जब निद्रा खुली, तब वे शीघ्रतापूर्वक मन्त्रीके घर गये। मन्त्रीके पुत्र मदनने पत्र देखा और ब्राह्मणोंको बुलाकर उसी दिन गोधूलि मुहूर्तमें चन्द्रहाससे उन्होंने अपनी बहनका विवाह कर दिया। विवाहके समय कुन्तलपुर-नरेश स्वयं भी पधारे। चन्द्रहासको देखकर उन्हें लगा कि 'मेरी कन्याके लिये भी यही योग्य वर है।' उन्होंने चन्दनपुरके इस युवराजकी विद्या, बुद्धि, शूरता आदिकी प्रशंसा बहुत सुन रखी थी। अब राजपुत्रीका विवाह भी चन्द्रहाससे करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया।

धृष्टबुद्धि तीन दिन बाद लौटे। वहाँकी स्थिति देखकर वे क्रोधके मारे पागल हो गये। उन्होंने सोचा—'भले मेरी कन्या विधवा हो जाय, पर इस शत्रुका वध मैं अवश्य कराके रहूँगा।' द्वेषसे अन्धे हुए हृदयकी यही स्थिति होती है। अपने हृदयकी बात मन्त्रीने किसीसे कही नहीं। नगरसे बाहर पर्वतपर एक देवीका मन्दिर था। धृष्टबुद्धिने एक क्रूर वधिकको वहाँ यह समझाकर भेज दिया कि 'जो कोई देवीकी पूजा करने आये, उसे तुम मार डालना।' चन्द्रहासको उसने यह बताकर कि 'भवानीकी पूजा उसकी कुलप्रथाके अनुसार होनी चाहिये' सायंकाल देवीकी पूजा करनेका आदेश दिया।

इधर कुन्तलपुर-नरेशके मनमें वैराग्य हुआ। ऐसे उत्तम कार्यको करनेमें सत्पुरुष देर नहीं करते। राजाने मन्त्रीपुत्र मदनसे कहा—'बेटा! तुम्हारे बहनोई चन्द्रहास बड़े सुयोग्य हैं। उन्हें भगवान्‌ने ही यहाँ भेजा है। मैं आज ही उनके साथ राजकुमारीका ब्याह कर देना चाहता हूँ। प्रातःकाल उन्हें सिंहासनपर बैठाकर मैं तपस्या करने वन चला जाऊँगा। तुम उन्हें तुरंत मेरे पास भेज दो।'

(ग) चन्द्रहासकी भक्तिका प्रभाव

मनुष्यकी कुटिलता, दुष्टता, प्रयत्न क्या अर्थ रखते हैं। वह दयामय गोपाल जो करना चाहे, उसे कौन टाल सकता है। चन्द्रहास पूजाकी सामग्री लिये मन्दिरकी ओर जा रहे थे। मन्त्रिपुत्र मदन राजाका सन्देश लिये बड़ी उमंगसे उन्हें मार्गमें मिला। मदनने पूजाका पात्र यह कहकर स्वयं ले लिया कि 'मैं देवीकी पूजा कर आता हूँ', चन्द्रहासको उसने राजभवन भेज दिया। जिस मुहूर्तमें धृष्टबुद्धिने चन्द्रहासके वधकी व्यवस्था की थी, उसी मुहूर्तमें राजभवनमें चन्द्रहास राजकुमारीका पाणिग्रहण कर रहे थे और देवीके मन्दिरमें वधिकने उसी समय मन्त्रीके पुत्र मदनका सिर काट डाला! धृष्टबुद्धिको जब पता लगा कि चन्द्रहास तो राजकुमारीसे विवाह करके

राजा हो गये, उनका राज्याभिषेक हो गया और मारा गया मेरा पुत्र मदन, तब व्याकुल होकर वे देवीके मन्दिरमें दौड़े गये। पुत्रका शरीर देखते ही शोकके कारण उन्होंने तलवार निकालकर अपना सिर भी काट लिया। धृष्टबुद्धिको उन्मत्तकी भाँति दौड़ते देख चन्द्रहास भी अपने श्वसुरके पीछे दौड़े। वे तनिक देरमें ही मन्दिरमें आ गये। अपने लिये दो प्राणियोंकी मृत्यु देखकर चन्द्रहासको बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने निश्चय करके अपने बलिदानके लिये तलवार खींची। उसी समय भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। मातृहीन चन्द्रहासको उन्होंने गोदमें उठा लिया। उन्होंने कहा—'बेटा! यह धृष्टबुद्धि तो बड़ा दुष्ट था। यह सदा तुझे मारनेके प्रयत्नमें लगा रहा। इसका पुत्र मदन सज्जन और भगवद्भक्त था; किंतु उसने तेरे विवाहके समय तुझे अपना शरीर दे डालनेका संकल्प किया था, अतः वह भी इस प्रकार उऋण हुआ। अब तू वरदान माँग।'

चन्द्रहासने हाथ जोड़कर कहा—'माता! आप प्रसन्न हैं तो ऐसा वर दें, जिससे श्रीहरिमें मेरी अविचल भक्ति जन्म-जन्मान्तरतक बनी रहे और इस धृष्टबुद्धिके अपराधको आप क्षमा कर दें। मेरे लिये मरनेवाले इन दोनोंको आप जीवित कर दें और धृष्टबुद्धिके मनकी मलिनताका नाश कर दें।'

देवी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। धृष्टबुद्धि और मदन जीवित हो गये; चन्द्रहासको उन्होंने हृदयसे लगाया और वे भी भगवान्के परम भक्त हो गये। मदन तो भक्त था ही। उसने चन्द्रहासका बड़ा आदर किया। सब मिलकर सानन्द घर लौट आये।*

श्रीप्रियादासजीने धृष्टबुद्धिकी दुष्टता और चन्द्रहासकी इस सज्जनताका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

रहै जाके देश सो नरेश कछु पावै नाहीं बाँह बल जोरि दियो सचिव पठाइकै।
आयो घर जानि कियो अति सनमान सो पिछान लियो वहै बाल मारो छलछाइ कै॥
दई लिखि चीठी जाओ मेरेसुत हाथ दीजै कीजै वहीबात जाको आयौ लै लिखाइकै।
गये पुर पास बाग सेवा मति पाग करि भरी दृग नींद नेकु सोयो सुख पाइकै॥ ६२॥
खेलति सहेलिन मों आई वाहि बाग मांझ करि अनुराग भई न्यारी देखि रीझी है।
पाग मधि पाती छबिमाती झुंकि खैंचि लई बांची खोलि लिख्यौ विषदैन पिता खीझी है॥
विषया सुनाम अभिराम दृग अञ्जन सों विषया बनाइ मन भाइ रस भीजी है।
आइ मिली आलिन में लालनको ध्यान हिये पिये मद मानो गृह आइ तब धीजी है॥ ६३॥
उठ्यो चन्द्रहास जिहि पास लिख्यो ल्यायो आयो देखि मन भायो गाढ़े गरे सों लगायो है।
देई कर पाती बात लिखी मो सुहाती बोलि विप्र घरी एक माँझ व्याह उभरायो है॥
करी ऐसी रीति डारे बड़े नृप जीति श्री देत गई बीति चाव पार पै न पायो है।
आयो पिता नीच सुनि घूमि आई मीच मानों बानो लखि दूलह को शूल सरसायो है॥ ६४॥
बैठ्यो लै इकान्त सुत करी कहा भ्रान्त यह कह्यौ सो नितान्त कर पाती लै दिखाई है।
बाँचि आंच लागी मैं तो बड़ोई अभागी ऐ पै मारौं मति पागी बेटी रांड़ हू सुहाई है॥
बोलि नीच जाति बात कही तुम जावो मठ आवै यहाँ कोऊ मारि डारौ मोहि भाई है।
चन्द्रहास जू सों भाख्यौ देवी पूजि आवौ आप मेरी कुल पूज सदा रीति चलि आई है॥ ६५॥

* भक्त चन्द्रहासकी रम्य कथा अत्यन्त विस्तारसे जैमिनीयाश्वमेधपर्व ग्रन्थमें अध्याय ५० से ६० तक कुल ११ अध्यायोंमें वर्णित है। यह ग्रन्थ गीताप्रेससे प्रकाशित है।

चल्योई करन पूजा देशपति राजा कही मेरे सुत नाहीं राज वाही को लै दीजिये।
सचिव सुवन सों जु कह्यो तुम लावो जावो पावो नहिं फेरि समय अब काम कीजिये॥
दौर्‌यौ सुख पाइ जाइ मग ही में लियो जाय दियो सो पठाइ नृप रङ्गमाहि भीजिये।
देवी अपमान ते न डरौ सनमान करौं जात मारि डार्‌यौ यासों भाष्यो भूप लीजिये॥ ६६॥
काहू आनि कही सुत तेरो मार्‌यो नीचनि ने सींचन शरीर दृग नीर झरी लागी है।
चल्यो ततकाल देखि गिर्‌यो ह्वै बिहाल सिर पाथरसों फोरि मर्‌यौ ऐसो ही अभागी है॥
सुनि चन्द्रहास चलि वेगि मठ पास आये ध्याये पग देवता के काटे अङ्ग रागी है।
कह्यो तेरो द्वेषी याहि क्रोध करि मार्‌यो मैं ही उठैं दोऊ दीजै दान जिये बड़भागी है॥ ६७॥
कर्‌यो ऐसो राज सब देश भक्तराज कर्‌यो ढिग को समाज ताकी बात कहा भाखिये।
हरि हरि नाम अभिराम धाम धाम सुनैं और काम कामना न सेवा अभिलाषिये॥
काम क्रोध लोभ मद आदि लै कै दूरि किये जिये नृप पाइ ऐसो नैननि में राखिये।
कही जिती बात आदि अन्त लौं सुहाति हिये पढ़ै उठि प्रात फल जैमिनि में साखिये॥ ६८॥

श्रीचित्रकेतुजी

शूरसेन देशमें प्राचीन समयमें चित्रकेतु नामके एक राजा थे। बुद्धि, विद्या, बल, धन, यश, सौन्दर्य, स्वास्थ्य आदि सब था उनके पास। उनमें उदारता, दया, क्षमा, प्रजावात्सल्य आदि सद्‌गुण भी पूरे थे। उनके सेवक नम्र और अनुकूल थे। मन्त्री नीतिनिपुण तथा स्वामिभक्त थे। राज्यमें भीतर-बाहर कोई शत्रु नहीं था। राजाके बहुत-सी सुन्दरी रानियाँ थीं। इतना सब होनेपर भी राजा चित्रकेतु सदा दुखी रहते थे। उनकी किसी रानीके कोई सन्तान नहीं थी। वंश नष्ट हो जायगा, इस चिन्तासे राजाको ठीकसे निद्रातक नहीं आती थी। एक बार अंगिरा ऋषि सदाचारी भगवद्भक्त राजा चित्रकेतुके यहाँ पधारे। महर्षि राजापर कृपा करके उन्हें तत्त्वज्ञान देने आये थे, किंतु उन्होंने देखा कि मोहवश राजाको पुत्र पानेकी प्रबल इच्छा है। ऋषिने सोच लिया कि जब यह पुत्रवियोगसे दुखी होगा, तभी इसमें वैराग्य होगा और तभी कल्याणके सच्चे मार्गपर चलनेयोग्य होगा। अतः राजाकी प्रार्थनापर ऋषिने त्वष्टा देवताका यज्ञ किया और यज्ञसे बचा अन्न देकर यह कह दिया कि इसको तुम किसी रानीको दे देना। महर्षिने यह भी कहा कि इससे जो पुत्र होगा, वह तुम्हें हर्ष-शोक दोनों देगा।

उस अन्नको खाकर राजाकी एक रानी गर्भवती हुई। उसके पुत्र हुआ। राजा तथा प्रजा दोनोंको अपार हर्ष हुआ। अब पुत्रस्नेहवश राजा उसी रानीसे अनुराग करने लगे। दूसरी रानियोंकी याद ही अब उन्हें नहीं आती थी। राजाकी उपेक्षासे उनकी दूसरी रानियोंके मनमें सौतियाडाह उत्पन्न हो गया। सबने मिलकर उस नवजात बालकको एक दिन विष दे दिया और बच्चा मर गया। बालककी मृत्युसे मारे शोकके राजा पागल-से हो गये। राजाको ऐसी विपत्तिमें पड़ा देखकर उसी समय वहाँ देवर्षि नारदके साथ महर्षि अंगिरा आये। वे राजाको मृत बालकके पास पड़े देख समझाने लगे—राजन्! तुम जिसके लिये इतने दुखी हो रहे हो, वह तुम्हारा कौन है? इस जन्मसे पहले वह तुम्हारा कौन था? अब आगे यह तुम्हारा कौन रहेगा? जैसे रेतके कण जलके प्रवाहसे कभी एकत्र हो जाते हैं और फिर अलग-अलग हो जाते हैं, वैसे ही कालके द्वारा विवश हुए प्राणी मिलते और अलग होते हैं। यह पिता-पुत्रका सम्बन्ध कल्पित है। ये शरीर न जन्मके पूर्व थे, न मृत्युके पश्चात् रहेंगे। अतः तुम इनके लिये शोक मत करो।'

राजाको इन वचनोंसे कुछ सान्त्वना मिली। उसने पूछा—'महात्मन्! आप दोनों कौन हैं? मेरे-जैसे

विषयोंमें फँसे मूढ़बुद्धि लोगोंको ज्ञान देनेके लिये आप-जैसे भगवद्भक्त सिद्ध महापुरुष निःस्वार्थ भावसे पृथ्वीमें विचरा करते हैं। आप दोनों मुझपर कृपा करें। मुझे ज्ञान देकर इस शोकसे बचायें।'

महर्षि अंगिराने कहा—'राजन्! मैं तो तुम्हें पुत्र देनेवाला अंगिरा हूँ और मेरे साथ ये ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदजी हैं। तुम ब्राह्मणोंके और भगवान्‌के भक्त हो, अतः तुम्हें क्लेश नहीं होना चाहिये। मैं पहले ही तुम्हें ज्ञान देने आया था, पर उस समय तुम्हारा चित्त पुत्र-प्राप्तिमें लगा था। अब तुमने पुत्रके वियोगका क्लेश देख लिया। इसी प्रकार स्त्री, धन, ऐश्वर्य आदि भी नश्वर हैं। उनका वियोग भी चाहे जब सम्भव है और ऐसा ही दुःखदायी है। ये राज्य, गृह, भूमि, सेवक, मित्र, परिवार आदि सब शोक, मोह, भय और पीड़ा ही देनेवाले हैं। ये स्वप्नके दृश्योंके समान हैं। इनकी यथार्थ सत्ता नहीं है। अपनी भावनाके अनुसार ही ये सुखदायी प्रतीत होते हैं। द्रव्य, ज्ञान और क्रियासे बना इस शरीरका अभिमान ही जीवको क्लेश देता है। एकाग्रचित्तसे विचार करो और एकमात्र भगवान्‌को ही सत्य समझकर उन्हींमें चित्त लगाकर शान्त हो जाओ।'

राजाको बोध देनेके लिये देवर्षि नारदने जीवका आवाहन करके बालकको जीवितकर उससे कहा—'जीवात्मन्! देखो। ये तुम्हारे पिता-माता, बन्धु-बान्धव तुम्हारे लिये व्याकुल हो रहे हैं। तुम इनके पास क्यों नहीं रहते?'

जीवात्माने कहा—'ये किस-किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए थे? मैं तो अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियोंमें अनन्त कालसे जन्म लेता आ रहा हूँ। सभी जीव परस्पर कभी पिता, कभी पुत्र, कभी मित्र, कभी शत्रु, कभी सजातीय, कभी विजातीय, कभी रक्षक, कभी विनाशक, कभी आत्मीय और कभी उदासीन बनते हैं। ये लोग मुझे अपना पुत्र मानकर रोते क्यों हैं? शत्रु मानकर प्रसन्न क्यों नहीं होते? जैसे व्यापारियोंके पास वस्तुएँ आती और चली जाती हैं, एक पदार्थ आज उनका है, कल उनके शत्रुका है, वैसे ही कर्मवश जीव नाना योनियोंमें जन्म लेता घूमता है। जितने दिन जिस शरीरका साथ है, उतने दिन ही उसके सम्बन्धी अपने हैं। यह स्त्री-पुत्र, घर आदिका सम्बन्ध यथार्थ नहीं है। आत्मा न जन्मता न मरता है। वह नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म, सर्वाधार, स्वयंप्रकाश है। वस्तुतः भगवान् ही अपनी मायासे गुणोंके द्वारा विश्वमें नाना रूपोंमें व्यक्त हो रहे हैं। आत्माके लिये न कोई अपना है, न पराया। वह एक है और हित-अहित करनेवाले शत्रु-मित्र आदि नाना बुद्धियोंका साक्षी है। साक्षी आत्मा किसी भी सम्बन्ध तथा गुण-दोषको ग्रहण नहीं करता। आत्मा तो कभी मरता नहीं, वह नित्य है और शरीर नित्य है नहीं, फिर ये लोग क्यों व्यर्थ रो रहे हैं?'

राजपुत्रका जीवात्मा इतना कहकर चला गया। उसकी बातोंसे सबका मोह दूर हो गया। मृतकका अन्त्येष्टि-संस्कार करके राजा शान्त हो गये। जब बालकको विष देनेवाली रानियोंने यह ज्ञान सुना, तब उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। यमुनातटपर जाकर उन्होंने अपने पापका प्रायश्चित्त किया।

राजा चित्रकेतु ऋषियोंके उपदेशसे शोक, मोह, भय और क्लेश देनेवाले दुस्त्यज गृहके स्नेहको छोड़कर महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारदजीके पास जाकर उनसे भगवत्प्राप्तिका साधन पूछने लगे। नारदजीने उन्हें भगवान् शेषका ध्यान तथा स्तुति-मन्त्र बतलाया। उपदेश करके दोनों ऋषि चले गये। राजाने सात दिन केवल जलपर रहकर एकाग्र चित्तसे उस स्तुतिरूप विद्याका अखण्ड जप किया। उसके प्रभावसे वे विद्याधरोंके स्वामी हो गये। कुछ दिनोंमें राजा चित्रकेतु विद्याके बलसे मनोगतिके अनुसार भगवान् शेषके समीप पहुँच गये। यहाँ उन्होंने सनत्कुमारादि महर्षियोंसे सेवित संकर्षणभगवान्‌के दर्शन किये। राजाने प्रेमविह्वल होकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणिपात किया और वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। दयामय भगवान् प्रसन्न हुए। उन्होंने चित्रकेतुको परम तत्त्वका उपदेश किया। तत्त्वज्ञानका उपदेश करते हुए अन्तमें संकर्षण प्रभुने कहा—'राजन्!

मनुष्यशरीरमें ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है। जो मानव-देह पाकर भी ज्ञान नहीं पाता—आत्माको नहीं जानता, उसका फिर किसी योनिमें कल्याण नहीं होता। विषयोंमें लगनेसे ही दुःख होता है, उन्हें छोड़ देनेमें कोई भय नहीं है; अतः बुद्धिमान् पुरुषको विषयोंसे निवृत्त हो जाना चाहिये। जगत्के सभी स्त्री-पुरुष दुःखोंको दूर करने और सुख पानेके लिये अनेक प्रकारके कर्म करते हैं; पर उन कर्मोंसे न तो दुःख दूर हो पाते हैं और न सुख ही मिलता है। जो लोग अपनेको बुद्धिमान् मानकर कर्मोंमें लगे हैं, वे दुःख ही पाते हैं। आत्मा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे पृथक् है—यों समझकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि इन अवस्थाओंमें प्राप्त होनेवाले विषयोंसे निवृत्त हो जाय, लोक-परलोकसे चित्त हटा ले और ज्ञान-विज्ञानसे सन्तुष्ट होकर मेरी भक्ति करे। एक परमात्मा ही सब स्थानोंमें सर्वदा है—यह योगमार्गमें लगनेवालोंको जान लेना चाहिये।' इस प्रकार दिव्य उपदेश देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

चित्रकेतु द्वन्द्वरहित समदर्शी हो गये थे। वे कामना, स्पृहा, अहंकार छोड़कर सदा परमात्मामें ही चित्त लगाये रहते थे। तपोबलसे इच्छानुसार चौदहों भुवनोंमें वे घूम सकते थे। एक दिन विमानपर बैठकर वे आकाशमार्गसे जा रहे थे। उसी समय उन्होंने मुनियोंकी सभामें पार्वतीजीको भगवान् शंकरकी गोदमें बैठे देखा। चित्रकेतुको यह व्यवहार अनुचित लगा। उन्होंने इसकी कड़ी आलोचना की। भगवान् शंकर तो आलोचना सुनकर हँसकर रह गये, पर पार्वतीजीको क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दिया—'तू बड़ा अविनीत हो गया है, अतः भगवान्के चरणोंमें रहनेयोग्य नहीं है। जाकर असुरयोनिमें जन्म ग्रहण कर।'

शाप सुनकर चित्रकेतुको न डर लगा, न दुःख हुआ। असुरयोनिमें भी सर्वव्यापी भगवान् तो हैं ही, यह वे जानते थे। शिष्ट व्यवहार करनेके लिये विमानसे वे उतर पड़े और उन्होंने पार्वतीजीके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'माता! आपने जो शाप दिया है, उसे मैं सादर स्वीकार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि देवतालोग मनुष्यके लिये जो कुछ कहते हैं, वह उसके कर्मानुसार ही कहते हैं। अज्ञानसे मोहित प्राणी इस संसारचक्रमें घूमता हुआ सदा, सब कहीं सुख-दुःख भोगता ही रहता है। गुणोंके इस प्रवाहमें शाप-वरदान, स्वर्ग-नरक, सुख-दुःख—कुछ भी वास्तविक नहीं है। स्वयं मायातीत भगवान् अपनी मायासे प्राणियोंको रचते और उनके सुख-दुःख, बन्ध-मोक्षकी व्यवस्था करते हैं। उन ईश्वरका न कोई अपना है, न पराया; न कोई प्रिय है, न अप्रिय। वे सर्वत्र समान और असंग हैं। जब उन सर्वेश्वरको सुखसे प्रेम नहीं है, तब क्रोध तो होगा ही कैसे! परंतु उनकी मायासे मोहित जीव जो पुण्य-पापरूप कर्मोंको करता है, वे कर्म ही उसके सुख-दुःखादिके कारण होते हैं। देवि! मैं शापसे छूटनेके लिये आपको प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ। आपको मेरे वचन बुरे लगे, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें।'

इस प्रकार क्षमा माँगकर चित्रकेतु विमानपर बैठकर चले गये। उनकी यह असंग स्थिति देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। शंकरजीने कहा—'देवि! तुमने भगवान्के दासानुदासोंका माहात्म्य देखा? भगवान् नारायणके परायण भक्त किसीसे भी डरते नहीं। वे स्वर्ग, नरक तथा मोक्षमें भी एक-सी दृष्टि रखते हैं। भगवान्की लीलासे ही जीव देह धारण करके सुख-दुःख, जन्म-मरण, शाप-अनुग्रहका भागी होता है। जैसे रस्सीमें अज्ञानसे सर्पका भ्रम होता है, वैसे ही इष्ट-अनिष्टका बोध अज्ञानसे ही है। भगवान्के आश्रित भक्त ज्ञान-वैराग्यके बलसे किसी भी सांसारिक पदार्थको अच्छा मानकर ग्रहण नहीं करते। जब मैं, ब्रह्माजी, सनत्कुमार, नारद, महर्षिगण तथा इन्द्रादि देवता भी परमेश्वरकी लीलाका रहस्य नहीं जान पाते, तब अपनेको समर्थ माननेवाले क्षुद्र अभिमानी उन परम प्रभुका स्वरूप कैसे जान सकते हैं! उन श्रीहरिका न कोई अपना है, न पराया। वे सबके आत्मा होनेसे सबके प्रिय हैं। फिर यह महाभाग चित्रकेतु उन्हीं भगवान्का प्यारा भक्त है, उन्हींकी रुचिसे चलनेवाला है, शान्त और समदर्शी है। मैं भी उन्हीं अच्युतका भक्त हूँ। अतः मुझको

उसपर क्रोध नहीं आया। ऐसे शान्त, समदर्शी, भगवद्भक्त महापुरुषोंके चरित्रपर आश्चर्य नहीं करना चाहिये।' पार्वतीजीका आश्चर्य इन वचनोंसे दूर हो गया। शाप देनेमें समर्थ होनेपर भी चित्रकेतुने पार्वतीको शाप नहीं दिया था, उलटे उनका शाप स्वीकार करके क्षमा माँगी। इसी शापके फलसे त्वष्टाके यज्ञमें दक्षिणाग्निसे वे वृत्रासुरके रूपमें प्रकट हुए।

गज-ग्राह

द्रविड़ देशमें पहले पाण्ड्यराज्यके एक राजा थे इन्द्रद्युम्न। वे सदा भगवान्के स्मरण, ध्यान, पूजन तथा नामजपमें ही लगे रहते थे। एक बार वे कुलाचलपर्वतपर मौन होकर वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार करके श्रीहरिकी अर्चा करते थे। उसी समय वहाँ शिष्योंके साथ अगस्त्यजी पधारे। राजा उस समय भगवान्के पूजनमें लगे थे, अतः न तो कुछ बोले और न उन्होंने उठकर मुनिका सत्कार ही किया। अगस्त्यजीको इससे क्रोध आ गया। उन्होंने शाप देते हुए कहा—यह मूर्ख मतवाले हाथीकी भाँति बन गया है, ब्राह्मणका यह अपमान करता है, अतः इसे हाथीकी योनि प्राप्त हो।

शाप देकर अगस्त्यजी चले गये। उनके शापके प्रभावसे शरीर छूटनेपर राजा इन्द्रद्युम्न क्षीरसागरके मध्य त्रिकूट पर्वतपर हाथी हुए। वे बड़े ही बलवान् थे। उनके भयसे वहाँ व्याघ्र, सिंह भी गुफाओंमें छिप जाते थे। एक बार वे गजराज अपने यूथकी हथिनियों और कलभों (हाथीके बच्चों)-के साथ वनमें घूम रहे थे। धूप लगनेपर जब प्यास लगी, तब कमलकी गन्ध सूँघते हुए वह यूथ वहाँके सरोवरमें पहुँचा। वह सरोवर बहुत ही विशाल था। उसमें स्वच्छ जल भरा था। कमल खिले थे। सभी हाथियोंने जल पिया, स्नान किया और परस्पर सूँड़में जल लेकर उछालते हुए जलक्रीड़ा करने लगे।

उस सरोवरमें महर्षि देवलके शापसे ग्राह होकर हूहू नामक गन्धर्व रहता था। वह ग्राह जलक्रीड़ा करते हुए गजराजके पास चुपकेसे आया और पैर पकड़कर उन्हें जलमें खींचने लगा। गजराजने चिंग्घाड़ मारी, दूसरे हाथियोंने भी सहारा देना चाहा, किंतु ग्राह बहुत बलवान् था। दूसरे हाथी शीघ्र ही थक गये। कभी ग्राह जलकी ओर खींच ले जाता और कभी गजराज उसे किनारेके पास खींच लाते। इस प्रकार बराबर दोनों एक-दूसरेको खींचते रहे। गजराजमें हजारों हाथियोंके समान बल था, पर वह घटता जाता था। वे थकते जाते थे। ग्राह तो जलका प्राणी था। वह इनसे जलमें बलवान् पड़ने लगा। जब ग्राहके द्वारा खींचे जाते गजेन्द्र बिलकुल थक गये, उन्हें लगा कि अब डूब जायँगे, तब उन्होंने भगवान्की शरण लेनेका निश्चय किया। पूर्वजन्मकी आराधनाके प्रभावसे उनकी बुद्धि भगवान्में लगी। पाससे एक कमल-पुष्प तोड़कर सूँड़में उठाकर वे भगवान्की स्तुति करने लगे।

जब कोई अत्यन्त कातर होकर भगवान्को पुकारता है, तब वे दयामय एक क्षणकी भी देर नहीं करते। कातर कण्ठसे गजराज भगवान्की स्तुति कर रहे थे। देवता भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर भगवान्का स्तवन कर रहे थे। उसी समय भगवान् गरुड़पर बैठे वहाँ प्रकट हुए। भगवान्का दर्शन करके गजराजने वह पुष्प ऊपर उछालकर कहा—नारायण, निखिल जगत्के गुरु, भगवन्! आपको नमस्कार।

आते ही भगवान्ने एक हाथसे गजराजको ग्राहके सहित जलमेंसे निकालकर पृथ्वीपर रख दिया। अपने चक्रसे ग्राहका मुख फाड़कर भगवान्ने गजराजको छुड़ाया। भगवानके चक्रसे मरकर ग्राह ऋषिके शापसे छूटकर फिर गन्धर्व हो गया। उसने भगवान्की स्तुति की और उनकी आज्ञा लेकर अपने लोकको चला गया। गजराजको भगवान्का स्पर्श मिला था। उनके अज्ञानका बन्धन तत्काल नष्ट हो गया। उनका हाथीका शरीर सुन्दर दिव्य चतुर्भुजरूपमें परिणत हो गया। भगवत्पार्षदोंका रूप पाकर वे भगवान्के साथ उनके नित्यधाममें पहुँच गये।

भक्त पाण्डव

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन
माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः*॥

जैसे शरीरमें पाँच प्राण होते हैं, वैसे ही महाराज पाण्डुके पाँच पुत्र हुए—कुन्तीदेवीके द्वारा धर्म, वायु तथा इन्द्रके अंशसे क्रमशः युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन और माद्रीके द्वारा अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल और सहदेव। महाराज पाण्डुका इनके बचपनमें ही परलोकवास हो गया। माद्री अपने पतिके साथ सती हो गयीं। पाँचों पुत्रोंका लालन-पालन कुन्तीदेवीने किया। ये पाँचों भाई जन्मसे ही धार्मिक, सत्यवादी और न्यायी थे। ये क्षमावान्, सरल, दयालु तथा भगवान्‌के परम भक्त थे।

महाराज पाण्डुके न रहनेपर उनके पुत्रोंको राज्य मिलना चाहिये था, किंतु इनके बालक होनेसे महाराज पाण्डुके अन्धे ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र राजाके रूपमें सिंहासनपर बैठे। उनके पुत्र स्वभावसे क्रूर और स्वार्थी थे। उनका ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन अकारण ही पाण्डवोंसे द्वेष करता था। भीमसेनसे तो उसकी पूरी शत्रुता थी। उसने भीमसेनको विष देकर मूर्च्छित दशामें गंगाजीमें फेंक दिया, परंतु भीम बहते हुए नागलोक पहुँच गये। वहाँ उन्हें सर्पोंने काटा, जिससे खाये विषका प्रभाव दूर हो गया और वे नागलोकसे लौट आये। दुर्योधनने पाण्डवोंको लाक्षागृह बनवाकर उसमें रखा और रात्रिको उसमें अग्नि लगवा दी, परंतु विदुरजीने पहले ही इन लोगोंको सचेत कर दिया था। वे अग्निसे बचकर चुपचाप वनमें निकल गये और गुप्तरूपमें यात्रा करने लगे। भीमसेन शरीरसे बहुत विशाल थे। बलमें उनकी जोड़का कोई व्यक्ति मिलना कठिन था। वे बड़े-बड़े हाथियोंको उठाकर सहज ही फेंक देते थे। वनमें माता कुन्ती और सभी भाइयोंको वे कन्धोंपर बैठाकर मजेसे यात्रा करते थे। अनेक राक्षसोंको उन्होंने वनमें मारा।

धनुर्विद्यामें अर्जुन अद्वितीय थे। इसी वनवासमें पाण्डव द्रुपदके यहाँ गये और स्वयंवरसभामें अर्जुनने मत्स्यवेध करके द्रौपदीको प्राप्त किया। माता कुन्तीके वचनकी रक्षाके लिये द्रौपदी पाँचों भाइयोंकी पत्नी बनीं। धृतराष्ट्रने समाचार पाकर पाण्डवोंको हस्तिनापुर बुलवा लिया और आधा राज्य दे दिया। युधिष्ठिरके धर्मशासन, अर्जुन तथा भीमके प्रभाव एवं भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे पाण्डवोंका ऐश्वर्य विपुल हो गया। युधिष्ठिरने दिग्विजय करके राजसूययज्ञ किया और वे राजराजेश्वर हो गये, परंतु युधिष्ठिरको इसका कोई अहंकार नहीं था, उन्होंने अपने भाइयोंसहित भगवान् श्रीकृष्णकी अग्रपूजा की और उनके चरण पखारे। दुर्योधनसे पाण्डवोंका यह वैभव सहा न गया। धर्मराजको महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञासे जुआ खेलना स्वीकार करना पड़ा। जुएमें सब कुछ हारकर पाण्डव बारह वर्षके लिये वनमें चले गये। एक वर्ष उन्होंने अज्ञातवास किया। यह अवधि समाप्त हो जानेपर भी जब दुर्योधन उनका राज्य लौटानेको राजी नहीं हुए, तब महाभारत हुआ। उस युद्धमें कौरव मारे गये। युधिष्ठिर सम्राट् हुए। छत्तीस वर्ष उन्होंने राज्य किया। इसके बाद जब पता लगा कि भगवान् श्रीकृष्ण परम धाम पधार गये, तब पाण्डव भी अर्जुनके पौत्र परीक्षित्‌को राज्य देकर सब कुछ छोड़कर हिमालयकी ओर चल दिये। वे भगवान्‌में मन लगाकर महाप्रस्थान कर गये।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो धर्म और भक्तिके साथ हैं। जहाँ धर्म है, वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण

* युधिष्ठिरका नाम लेनेमात्रसे धर्मकी वृद्धि होती है, वृकोदर (भीमसेन)-का नाम लेनेसे पापोंका नाश होता है, धनंजय (अर्जुन)-का नाम लेनेसे शत्रुओंका विनाश होता है और माद्रीके दोनों पुत्रों—नकुल-सहदेवका नाम लेनेसे रोग नहीं होते हैं।

हैं वहीं धर्म है। पाण्डवोंमें धर्मराज युधिष्ठिर साक्षात् धर्मराज थे और भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। अर्जुन तो श्रीकृष्णके प्राणप्रिय सखा ही थे। भीमसेन श्यामसुन्दरको बहुत मानते थे। भगवान् भी उनसे बहुत हास-परिहास कर लेते थे, किंतु कभी भी भीमसेनने श्रीकृष्णके आदेशपर आपत्ति नहीं की। कोई युधिष्ठिर या श्रीकृष्णका अपमान करे, यह उन्हें तनिक भी सहन नहीं होता था। जब राजसूययज्ञमें शिशुपाल श्यामसुन्दरको अपशब्द कहने लगा, तब भीम क्रोधसे गदा लेकर उसे मारनेको उद्यत हो गये।

पाण्डवोंकी भक्तिकी कोई क्या प्रशंसा करेगा, जिनके प्रेमके वश होकर स्वयं त्रिभुवननाथ द्वारकेश उनके दूत बने, सारथि बने और सब प्रकारसे उनकी रक्षा करते रहे, उनके सौभाग्यकी क्या सीमा है! ऐसे ही पाण्डवोंका भ्रातृप्रेम भी अद्वितीय है। धर्मराज युधिष्ठिर अपने चारों भाइयोंको प्राणके समान मानते थे और चारों भाई अपने बड़े भाईकी ऐसी भक्ति करते थे, जैसे वे उनके खरीदे हुए सेवक हों। युधिष्ठिरने जुआ खेला, उनके दोषसे चारों भाइयोंको वनवास हुआ और अनेक प्रकारके कष्ट झेलने पड़े, पर बड़े भाईके प्रति पूज्यभाव उनके मनमें ज्यों-का-त्यों बना रहा। क्षोभवश भीम या अर्जुन आदिने यदि कभी कोई कड़ी बात कह भी दी तो तत्काल उन्हें अपनी बातका इतना दुःख हुआ कि वे प्राणतक देनको उद्यत हो गये।

पाण्डवोंके चरित्रमें ध्यान देनेयोग्य बात है कि उनमें भीमसेन-जैसे बली थे, अर्जुन-जैसे अस्त्रविद्यामें अद्वितीय कुशल शूरवीर थे, नकुल-सहदेव-जैसे नीतिनिपुण एवं व्यवहारकी कलाओंमें चतुर थे, किंतु ये सब लोग धर्मराज युधिष्ठिरके ही वशमें रहकर उन्हींके अनुकल चलते थे। बल, विद्या, शस्त्रज्ञान, कला-कौशल आदि सबकी सफलता धर्मकी अधीनता स्वीकार करनेमें ही है। धर्मराज भी श्रीकृष्णचन्द्रको ही अपना सर्वस्व मानते थे। वे श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार ही चलते थे। भगवान्‌में भक्ति होना, भगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण कर देना ही धर्मका लक्ष्य है। यही बात, यही आत्मनिवेदन पाण्डवोंमें था और इसीसे श्यामसुन्दर उन्हींके पक्षमें थे। पाण्डवोंकी विजय इसी धर्म तथा भक्तिसे हुई।

महर्षि मैत्रेयजी

महर्षि मैत्रेय पुराणवक्ता ऋषि हैं। वे 'मित्र' के पुत्र होनेके कारण मैत्रेय कहलाये। श्रीमद्भागवतमें इनके सम्बन्धमें इतना ही मिलता है कि ये महर्षि पराशरके शिष्य और वेदव्यासजीके सुहृद् सखा थे। पराशरमुनिने जो विष्णुपुराण कहा, उसके प्रधान श्रोता ये ही हैं। इन्होंने स्वयं कहा है—

त्वत्तो हि वेदाध्ययनमधीतमखिलं गुरो। धर्मशास्त्राणि सर्वाणि तथाङ्गानि यथाक्रमम्॥
त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मामन्ये नाकृतश्रमम्। वक्ष्यन्ति सर्वशास्त्रेषु प्रायशो येऽपि विद्विषः॥

(विष्णुपुराण १।१।२-३)

'हे गुरुदेव! मैंने आपसे ही सम्पूर्ण वेद, वेदांग और सकल धर्मशास्त्रोंका क्रमशः अध्ययन किया है। हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी कृपासे मेरे विपक्षी भी मेरे लिये यह नहीं कह सकते कि मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंके अभ्यासमें परिश्रम नहीं किया है।' इससे स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार ये भगवान् वेदव्यासके सुहृद् और सखा थे, वैसे ही ये पूर्ण ज्ञानी और शास्त्रमर्मज्ञ भी थे। भगवान् श्रीकृष्णकी इनके ऊपर पूर्ण कृपा थी। उन्होंने निज लोकको पधारते समय अधिकारी समझकर अपना समस्त ज्ञान इन्हींको दिया था।

भगवान् जब परम धामको पधारने लगे, तब खोजते-खोजते उद्धवजी उनके पास पहुँचे। भगवान् एक अश्वत्थ वृक्षके नीचे सरस्वतीके तटपर प्रभासक्षेत्रके समीप सुखासीन थे। उद्धवजीने प्रभुके दर्शन किये। उसी समय महामुनि मैत्रेयजी भी वहाँ पहुँच गये। भगवान्‌ने उन्हें ज्ञानोपदेश दिया और आज्ञा की कि इसे महामुनि विदुरको भी देना। अब उद्धवजीसे यह समाचार सुनकर महामना विदुरजी इनके समीप पहुँचे, तब ये बड़े प्रसन्न

हुए। उस भगवद्दत्त ज्ञानका, जिसे इन्होंने विदुरजीको दिया था, वर्णन श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धके चौथे अध्यायसे आरम्भ होता है। महामुनि मैत्रेयका नाम ऐसा है, जिसे समस्त पुराणपाठक भली प्रकार जानते हैं। मैत्रेयजी ज्ञानके भण्डार, भगवल्लीलाओंके परम रसिक और भगवान्‌के परम कृपापात्र थे। इनके गुरु महर्षि पराशरने विष्णुपुराण सुनानेके अनन्तर अपनी गुरुपरम्परा बतलाते हुए इनसे कहा कि इस पुराणको, जिसे तुमने मुझसे सुना है, तुम भी कलियुगके अन्तमें शिनीकको सुनाओगे। इस प्रकार ये चिरजीवी हैं और अब भी किसी-न-किसी रूपमें इस धराधामपर विद्यमान हैं। भगवान्‌की कथाका महत्त्व बतलाते हुए ये कहते हैं—

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम्॥

'संसारमें पशुओं को छोड़कर, अपने पुरुषार्थका सार जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आवागमनसे छुड़ा देनेवाली भगवान्‌की प्राचीन कथाओंमेंसे किसी भी अमृतमयी कथाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उनकी ओरसे मन हटा लेगा?'

श्रीप्रियादासजीने मैत्रेयजी तथा चित्रकेतु आदिके सम्बन्धमें एक कवित्त लिखा है, जो इस प्रकार है—

कौषारव नाम सो बखान कियो नाभ जू ने मैत्रेय अभिराम ऋषि जानि लीजै बात में।
आज्ञा प्रभु दई जाहु विदुर है भक्त मेरौ करौ उपदेश रूप गुण गात गात में॥
चित्रकेतु प्रेम केतु भागवत ख्यात जाते पलट्यो जनम प्रतिकूल फल घात में।
अक्रूर आदि ध्रुव भये सब भक्तभूप उद्धव से प्यारेन की ख्याति पात पात में॥ ६९॥

कवित्तमें बताया गया है कि श्रीनाभाजीने कौषारव नामसे जिनका वर्णन किया है, वे परम श्रेष्ठ ऋषि मैत्रेयजी हैं। परमधाम जानेसे पूर्व जब भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीको उपदेश दे रहे थे, उस समय मैत्रेयजी भी वहीं उपस्थित थे। मैत्रेयजीको भगवान्‌ने आज्ञा दी कि तुम जाओ और मेरे भक्त विदुरजीको मेरे द्वारा कथित ज्ञान-भक्तिका उपदेश दो, जिससे मेरे रूप और गुण उनके रोम-रोममें व्याप्त हो जायँ। मैत्रेय और विदुरजीका संवाद श्रीमद्भागवतके तीसरे स्कन्धमें वर्णित है। प्रेमकी ध्वजा फहरानेवाले भक्त चित्रकेतुका चरित्र भी श्रीभागवतमें प्रसिद्ध है। शंकरजीका अपमान करनेपर उन्हें दैत्ययोनि प्राप्त हुई। फिर भी उनकी भक्ति ज्यों-की-त्यों रही। अक्रूरजी और ध्रुवजी—ये श्रेष्ठ भक्तराज हुए। उद्धव-सरीखे भगवान्‌के प्यारे भक्तोंकी कथा संसारमें सर्वत्र प्रसिद्ध है॥ ६९॥

श्रीकुन्तीजी

श्रीकृष्णचन्द्रके पितामह शूरसेनजीने अपनी पुत्री पृथाको अपनी बुआके सन्तानहीन पुत्र कुन्तिभोजको दत्तकरूपमें प्रदान किया। परम सुन्दरी पृथा सात्त्विक प्रवृत्तिकी और धार्मिक थीं। एक बार महाराज कुन्तिभोजके यहाँ एक तेजस्वी ब्राह्मण अतिथि हुए। पिताने उनके सत्कारका भार पृथाको दिया। पूरे वर्षभर वे विप्रदेव कुन्तिभोजके घर रहे। अवस्थामें छोटी होनेपर भी राजकुमारी पृथा अत्यन्त श्रद्धा, संयम तथा परिश्रमसे उनकी सेवामें लगी रही। विदा होते समय ब्राह्मणदेवताने सन्तुष्ट होकर वरदान माँगनेको कहा।

'आपके समान वेदज्ञ तपस्वी तथा मेरे पिता मुझपर प्रसन्न हैं, इसीसे मेरा श्रम सार्थक हो गया। मुझे कोई अभिलाषा नहीं है।' कुन्तीने ब्राह्मणकी निष्काम भावसे सेवा की थी।

'बेटी! मेरी प्रसन्नता निष्फल नहीं होनी चाहिये। मुझसे तू इन मन्त्रोंको ग्रहण कर ले। इनके द्वारा तू जिस देवताका आह्वान करेगी, वह विवश होकर तेरे समीप उपस्थित होगा।' ब्राह्मणने आग्रह किया। शापके भयसे पृथा निषेध न कर सकीं। अथर्वशीर्षमें आये मन्त्रोंका उपदेश करके तथा महाराजको अपना जाना सूचित करके वे तेजस्वी ब्राह्मण वहीं अन्तर्हित हो गये। ब्राह्मणवेषमें ये महर्षि दुर्वासा थे।

'विप्रदेवने ये कैसे मन्त्र दिये हैं।' कुन्ती राजभवनके ऊपर खड़ी सोच रही थीं। उनके मनमें परीक्षा करनेका कुतूहल हुआ। उदय होते सूर्यपर उनकी दृष्टि पड़ी। मन्त्र-प्रभावसे कवच-कुण्डलधारी भगवान् सूर्यके उस सूर्यमण्डलमें उन्हें दर्शन हुए। विधिवत् आचमन करके उन्होंने मन्त्रोंका जप करते हुए सूर्यनारायणका आह्वान किया। स्वर्णवर्ण, दिव्याभरणभूषित तेजोमय पुरुषरूपसे सूर्यदेव सम्मुख उपस्थित हो गये। उन्होंने कहा—'भद्रे! मैं तुम्हारी मन्त्र-शक्तिसे विवश होकर आया हूँ। आज्ञा दो, मैं क्या करूँ?'

कुन्तीने प्रणाम करके प्रार्थना की—'आप अपने धामको पधारें। मैंने कुतूहलवश आपको बुलाया था। मेरा अपराध क्षमा करें।'

भगवान् सूर्यने कहा—'देवताका आना व्यर्थ नहीं होना चाहिये। मुझे देखकर तुम्हारे मनमें यह भाव आया था कि मेरे इन कुण्डलों तथा कवचसे भूषित अतुल पराक्रमी पुत्र हो। अतः मैं तुम्हें ऐसा ही पुत्र प्रदान करूँगा।'

'मैं कन्या हूँ। मेरे माता-पिता जीवित हैं, इस शरीरपर उनका अधिकार है। सदाचार ही लोकमें श्रेष्ठ है और वह है—अनाचारसे शरीरको बचाये रखना। आप मेरे अपराधको क्षमा करके लौट जायँ।' कुन्तीने भीत होकर प्रार्थना की। भगवान् सूर्यने समझाया कि उनकी बात स्वीकार करके भी उसका कन्याभाव नष्ट नहीं होगा। वह सती ही रहेगी। कुन्तीने इसपर सूर्यनारायणकी बात स्वीकार कर ली। भगवान् सूर्यने योगशक्तिसे उसके उदरमें अपना अंश स्थापित किया। उसके कन्याभावको दूषित नहीं किया।

अन्तःपुरमें केवल एक धायको पता था कि पृथा गर्भवती हैं। यथासमय देवताओंके समान कान्तिमान् बालक उत्पन्न हुआ। उसके शरीरपर स्वर्णकवच तथा कानोंमें दिव्य कुण्डल थे। पृथाने धात्रीकी सलाहसे एक पिटारीमें कपड़े बिछाये, ऊपरसे मोम चुपड़ दिया। उसीमें नवजात शिशुको लिटाकर ढक्कन लगा दिया। पिटारीको अश्वनदीमें छोड़ते हुए रोकर विदीर्ण होते हृदयसे माता कुन्तीने कहा—'बेटा! सभी जल, स्थल, नभके प्राणी तेरी रक्षा करें। तेरा मार्ग मंगलमय हो। शत्रु तुझे विघ्न न दें। सभी लोकपाल तेरी रक्षा करें! तू कभी कहीं भी मिलेगा तो इन कवच और कुण्डलोंसे मैं तुझे पहचान लूँगी।'

वह पिटारी अश्वनदीसे चर्मण्वती (चम्बल), उससे यमुनामें होती गंगामें पहुँची। चम्पापुरीमें सूत अधिरथने उसे पकड़ा और उसमेंसे निकले हुए बालकको पुत्र मानकर पालन-पोषण किया। वही बालक वसुषेण महारथी कर्णके नामसे प्रख्यात हुआ। दूतोंद्वारा कुन्तीको पता लग गया था कि उनका पुत्र सूतद्वारा पाला जा रहा है। लोकलज्जाके भयसे उन्होंने इस रहस्यको प्रकट नहीं किया।

× × ×

सुन्दरी पृथाके लिये महाराज कुन्तिभोजसे अनेक राजाओंने प्रार्थना की। स्वयंवर हुआ और महाराज पाण्डुके गलेमें जयमाल पड़ी। कुन्तीको लेकर वे हस्तिनापुर आये। आखेटमें मृगवेषधारी ऋषिकुमार किन्दमपर पाण्डुने बाण चला दिया। मरते समय ऋषिपुत्रने अपना रूप प्रकट करके शाप दे दिया—'तुमने सहवास करते मृगपर बाण छोड़ा, अतः पत्नीके साथ सहवास करते समय तुम्हारी मृत्यु होगी।'

विरक्त होकर महाराजने संन्यास लेनेका निश्चय किया, किंतु कुन्ती देवीके आग्रहसे पत्नियोंके साथ वनमें तपस्वी जीवन व्यतीत करना उन्होंने स्वीकार कर लिया। संतान न होनेसे पुरुष पितृ-ऋणसे उऋण नहीं होता, यह सोचकर महाराज दुखी रहते थे। ऋषियोंने उन्हें देवांशसे पाँच पुत्रोंकी प्राप्तिका वरदान दिया था। ऋषिवाक्य सत्य होने चाहिये, यह सोचकर उन्होंने एक दिन कुन्तीसे कहा—'भद्रे! तुम सन्तति-प्राप्तिके लिये कोई यत्न करो।'

'आपकी आज्ञा होनेपर मैं जिस देवताका आह्वान करूँगी, उसीसे मुझे संतान होगी। आप आज्ञा दें, किस देवताका संकल्प करूँ?' दुर्वासाजीद्वारा मन्त्र-प्राप्तिका वर्णन सुनाकर कुन्तीजीने पूछा।

'मुझे धर्मात्मा पुत्र चाहिये। धर्मात्मा सन्तति कुलको पवित्र कर देती है। तुम धर्मराजके उद्देश्यसे मन्त्रका जप करो!' महाराजने आदेश दिया। आज्ञाका पालन हुआ। फलतः धर्मराजके अंशसे युधिष्ठिरका जन्म हुआ।

'क्षत्रिय जाति बलप्रधान है। परम बलवान् सन्ततिकी मैं कामना करता हूँ।' कुछ दिनों पश्चात् महाराजने पुनः आज्ञा की। इस बार कुन्तीने वायुदेवताके उद्देश्यसे जप किया। पवनके अंशसे उन्हें भीमसेन-जैसे पराक्रमी पुत्रकी प्राप्ति हुई।

'मैंने देवराजको प्रसन्न कर लिया है, तुम उनका स्मरण करो।' पाण्डुने सर्वश्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके लिये एक पैरसे सूर्यके सम्मुख खड़े होकर उग्र तपस्या करके महेन्द्रको प्रसन्न कर लिया था। पतिकी आज्ञासे कुन्ती देवीने भी एक वर्षतक व्रत एवं विशेष नियमोंका पालन किया था। महाराजके आदेशसे पृथाके आह्वान करनेपर देवराज पधारे। उनके अंशसे परम पराक्रमी नरके अवतार अर्जुनका जन्म हुआ।

छोटी रानी माद्रीके अनुरोध करनेपर महाराजने पृथाको आदेश दिया, 'कल्याणी! माद्रीको भी सन्तति प्रदान करो!'

पतिकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने मन्त्र बताकर माद्रीसे किसी देवताका ध्यान करनेको कहा। माद्रीके ध्यान करनेपर अश्विनीकुमारोंके अंशसे यमज नकुल और सहदेवकी उत्पत्ति हुई।

एकान्तमें पर्वतपर माद्रीके साथ घूमते हुए पाण्डु अपनेको संयमित न रख सके। फलतः उनका शरीरान्त हो गया। बड़ी रानी होनेके कारण सती होनेका अधिकार कुन्तीजीको था, किंतु माद्रीका अनुरोध स्वीकार करके उन्होंने आजीवन पति-वियोगका कष्ट स्वीकार किया। माद्रीके सती हो जानेपर अपने और माद्रीके पुत्रोंका सर्वथा समान भावसे उन्होंने पालन किया। उस वनके तपस्वियोंने पाण्डुके पुत्रों तथा पत्नीको धृतराष्ट्रके समीप पहुँचा देना आवश्यक समझा। कुन्तीदेवी तपस्वियोंके साथ हस्तिनापुर आयीं। धृतराष्ट्रके आदेशसे यहीं पाण्डु एवं माद्रीकी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न हुई।

× × ×

दुरात्मा दुर्योधनके कारण पाण्डवोंपर अनेक आपत्तियाँ आयीं। उसने भीमसेनको विष दे दिया और बाँधकर जलमें फेंक दिया। इससे भीमके बच जानेपर सभी पाण्डवोंको मार डालनेकी इच्छासे वारणावत नगरमें लकड़ी, लाख, तैलके संयोगसे इस प्रकारका भवन बनवाया, जो अग्निसे तुरंत भस्म हो जाय। धृतराष्ट्र अपने पुत्रसे सहमत थे। उन्होंने माताके साथ पाण्डवोंको वारणावत जानेकी आज्ञा दे दी। विदुरजीको कौरवोंके इस षड्यन्त्रका पहले ही पता लग गया था। उन्होंने उस भवनसे वनतक एक सुरंग बनवा दी थी। जाते समय युधिष्ठिरको संकेतसे उन्होंने सब बातें समझा दीं।

दुर्योधनका सेवक पुरोचन लाक्षा-भवनमें अग्नि लगानेको नियुक्त था। एक वर्ष पाण्डव वहाँ रहे। एक दिन रात्रिमें स्वयं अग्नि लगाकर वे माताके साथ सुरंगसे वनमें चले गये। पुरोचन उसी अग्निमें भस्म हो गया। दैवात् पाण्डवोंसे अन्न लेने एक भील-स्त्री अपने पाँच पुत्रोंके साथ उसी दिन आयी थी। सुरापानके कारण प्रमत्त हो वे लोग उसी भवनमें अनजाने सोते रह गये थे। उनके जले शवोंको देखकर लोगोंने समझ लिया कि माताके साथ पाण्डव अग्निमें जल गये।

वहाँसे बचकर घूमते हुए पाण्डव एकचक्रा-नगरी पहुँचे। वहाँ ब्राह्मण-वेशमें एक ब्राह्मणके घर वे

ठहर गये। एक दिन चारों भाई कन्द-मूल लाने वनमें गये थे, केवल भीमसेन माताके पास थे। उसी समय उस घरके लोगोंको करुण-क्रन्दन करते सुनकर माताने कहा—'बेटा! हमलोग ब्राह्मणके घरमें रहते हैं। ये हमारा सत्कार करते हैं। मैं बराबर इनका कोई उपकार करनेकी बात सोचा करती हूँ। आज इनपर कोई विपत्ति आयी जान पड़ती है। यदि इनकी कुछ सहायता हो सके तो हम इनके ऋणसे उऋण हो जायँ।'

भीमसेनने उत्तर दिया—'मा! पता लगाओ! कठिन-से-कठिन कार्य करके भी हम ब्राह्मणकी सेवा करेंगे।'

कुन्तीने जाकर छिपकर देखा, घरका प्रत्येक सदस्य—ब्राह्मण, उसकी पत्नी तथा पुत्री—दूसरेकी रक्षाकी आवश्यकता बताकर अपनेको किसी राक्षसकी भेंट करनेकी बात कर रहे हैं। सभी रो रहे हैं। सभी अपना बलिदान करनेको उत्सुक हैं। सभी अपनेको अनावश्यक तथा दूसरोंको आवश्यक सिद्ध करना चाहते हैं। एक छोटा बच्चा सबके पास जाकर तोतली वाणीमें कह रहा है कि मुझे राक्षसके पास भेज दो। मैं उसे मार डालूँगा।

'आपके दुःखका कारण क्या है? हो सका तो मैं उसे दूर करनेका प्रयत्न करूँगी।' कुन्तीदेवीका हृदय इस दृश्यसे द्रवित हो गया था। उन्होंने प्रकट होकर पूछा। ब्राह्मणने बताया कि बक नामक कोई राक्षस समीप ही रहता है। उसके लिये दो-एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे प्रतिदिन दिये जाते हैं। जो यह सामग्री लेकर जाता है, उसे भी वह खा जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो पता नहीं ग्रामके कितने लोगोंको वह खा जाय। प्रत्येक घरके लोग बारी-बारीसे अन्न ले जाते हैं। आज मुझ ब्राह्मणकी बारी है। किसी-न-किसी घरके सदस्यको राक्षसका भक्ष्य बनना होगा। कुटम्बमें किसीको घरपर रहना स्वीकार न होनेके कारण ब्राह्मणने सपरिवार राक्षसके यहाँ जाना निश्चित किया है, यह भी बताया।

'आप शोक छोड़ दें। राक्षससे छुटकारेका उपाय मेरे पास है। आपके एक ही पुत्र है और एक ही कन्या है। आपमेंसे किसीका जाना उचित नहीं। मेरे पाँच पुत्र हैं। उनमेंसे एक राक्षसका भोजन लेकर चला जायगा।' कुन्तीदेवीने दृढ़ स्वरमें कहा।

'हरे, हरे, मैं इस नश्वर शरीरके लिये अतिथिका वध कभी न होने दूँगा। मैं आत्महत्या तो कर नहीं रहा हूँ। वह राक्षस मुझे पत्नीके साथ भले खा ले, परंतु अपने बदलेमें एक अतिथि ब्राह्मणका बलिदान कभी नहीं करूँगा। मुझे अपने धर्मका ज्ञान है। आपका त्याग, कुलीनता एवं धर्म प्रशंसनीय हैं, परंतु मैं अपने धर्मका नाश न करूँगा।' वह धर्मात्मा ब्राह्मण इस प्रस्तावसे ही काँप गया।

'मैं ब्राह्मणकी रक्षा करनेका दृढ़ निश्चय कर चुकी हूँ। आप निश्चिन्त रहें! राक्षस चाहे जितना बलवान् हो, वह मेरे पराक्रमी मन्त्रसिद्ध पुत्रका कोई अनिष्ट न कर सकेगा। मेरे पुत्रके हाथों अनेक विशालकाय राक्षस मारे जा चुके हैं। आपसे केवल इतनी प्रार्थना है कि इस बातको गुप्त रखें। लोग मेरे पुत्रोंको पीछे तंग न करें, यह मैं चाहती हूँ।' कुन्तीजीके दृढ़ निश्चयके सामने ब्राह्मणको झुकना पड़ा। भीमसेन अन्न लेकर गये। वहाँ जाकर गाड़ीमें जुते भैंसोंको तो पीटकर उन्होंने गाँवमें भगा दिया और अन्नका स्वयं प्रसाद पा लिया। राक्षस बक लाल-पीला होता आया सही, किंतु युद्धमें पछाड़कर वृकोदर (भीमसेन)-ने उसे सीधे यमलोक भेज दिया। माता कुन्तीकी कृपासे उस गाँवके निवासियोंकी विपत्ति सदाके लिये दूर हो गयी।

यहींसे पाण्डव पांचाल गये। स्वयंवरमें अर्जुनने द्रौपदीको प्राप्त किया। 'मा! हम एक भिक्षा लाये हैं।' राजकुमारीको लाकर अर्जुनने कहा। बिना देखे ही माताने भीतरसे कह दिया—पाँचों भाई उसे बाँट लो! फलतः पांचाली पाँचों भाइयोंकी पत्नी हुई। पता लगनेपर धृतराष्ट्रने विदुरको भेजकर पाण्डवोंको बुला लिया।

आधा राज्य देकर इन्द्रप्रस्थ उनकी राजधानी कर दी। माताके साथ पाण्डवोंका वहाँ निवास हुआ।

× × ×

कंसारि श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे शान्तिदूत होकर हस्तिनापुर पधारे। दुर्योधनने स्पष्ट कह दिया कि युद्धके बिना सूईकी नोक रखनेभर भूमि न दूँगा। जब श्रीकृष्ण पुनः विराटनगर लौटने लगे तो माता कुन्तीने अपने पुत्रोंके लिये सन्देश दिया—'युधिष्ठिर! क्षत्रियोंको बाहुबलसे आजीविका चलानी चाहिये। राजासे सुरक्षित रहकर प्रजा जो धर्म करती है, उसका चतुर्थांश राजाको प्राप्त होता है। दण्डनीतिका ठीक प्रयोग करके लोगोंको वह धर्ममार्गमें प्रवृत्त करता है। तुम जिस सन्तोषको लिये बैठे हो, उसे तुम्हारे पिता-पितामहने कभी आदर नहीं दिया। यह याचना तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं। भिक्षा ब्राह्मण माँगते हैं, वैश्य कृषि-वाणिज्यसे और शूद्र सेवासे आजीविका चलाते हैं। तुम क्षत्रिय हो, भुजबलसे राज्य प्राप्त करो। यही तुम्हारी धर्मसम्मत आजीविका है। तुम-सा पुत्र पाकर भी मैं दूसरोंके टुकड़ोंपर आश्रित हूँ, यह कितने कष्टकी बात है।'

द्यूतमें हारकर पाण्डवोंके वन जानेपर माता कुन्ती विदुरजीके यहाँ रहती थीं। वे अपना पूरा समय भजन, पूजन तथा व्रतोंमें व्यतीत करती थीं। उनका रहन-सहन अत्यन्त सादा था। अपने सब कार्य वे स्वयं कर लिया करती थीं। उन्होंने श्रीकृष्णको विदुलाका आख्यान सुनाकर फिर कहा—'अर्जुनसे कहना कि उससे मुझे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। आकाशवाणीने उसके जन्मके समय कहा था कि 'वह इन्द्रके समान पराक्रमी होगा। भीमके साथ रहकर शत्रुओंका जय करेगा। सारे कौरवोंको मारकर पितृराज्य प्राप्त करेगा।' मेरी इच्छा है कि देवताओंकी वाणी सत्य हो। क्षत्राणियाँ जिस कामके लिये पुत्र उत्पन्न करती हैं, उसका समय आ गया।'

श्रीकृष्णसे उन्होंने पुत्रोंको उत्साहित करने तथा रक्षा करनेका अनुरोध किया।

× × ×

'बेटा! कर्णको भी जलांजलि दो!' युद्धमें मारे गये सभी स्वजनोंको धर्मराज तिलांजलि दे रहे थे। रोती हुई माता कुन्तीने उनसे अनुरोध किया।

'मा! वह सूतपुत्र सदा हमसे द्वेष करता रहा। वह हमारे गोत्रका भी नहीं। हम उसे जल नहीं देंगे।' युधिष्ठिरने अस्वीकार किया।

'तुम नहीं जानते, वे महाभाग तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता थे!' कुन्तीने कर्णके जन्मका परिचय दिया।

'हाय! हम यह पहले जानते तो इतना अनर्थ क्यों होता? हम उनके चरणोंमें सिंहासन निवेदित करके स्वयं सेवक बने रहते। हमने अपने ही ज्येष्ठ भ्राताको मार डाला! मा! तूने यह बात मुझसे क्यों नहीं कही? धर्मराज अत्यन्त शोकार्त होकर रोते हुए बार-बार पूछने लगे।'

'पुत्र! युद्ध आरम्भ होनेसे पूर्व ही मैं उन सूर्यनन्दनके समीप गयी थी। वे उस समय जलमें खड़े होकर सन्ध्या कर रहे थे। उन्होंने अपनेको अधिरथका पुत्र कहकर मुझे प्रणाम किया। मैंने उन्हें बताया कि वे मेरे पुत्र हैं। भगवान् सूर्यने स्पष्ट वाणीमें मेरा समर्थन किया। मैंने अनुरोध किया कि वे पाण्डवोंके पक्षमें आ जायँ। हाय! मेरे पुत्रने अधिरथके उपकारोंका स्मरण करके इस सत्यको स्वीकार करके भी मानना नहीं चाहा। उसने किसी भी प्रकार दुर्योधनका पक्ष छोड़ना स्वीकार नहीं किया। उसने मुझसे वचन ले लिया कि मैं इस बातको छिपाये रहूँगी। माताका आदर करनेके लिये उसने प्रतिज्ञा की कि युद्धमें अर्जुनके अतिरिक्त किसी पाण्डवको मारनेमें समर्थ होकर भी वह नहीं मारेगा। अपनी प्रतिज्ञाका अन्ततक उसने निर्वाह किया।' माता कुन्तीने रोते हुए बताया।

'माता! तुमने यह बात छिपाकर हमारे हाथों बहुत बड़ा अनर्थ करा डाला। मैं शाप देता हूँ कि अबसे

स्त्रियाँ कोई बात छिपा नहीं सकेंगी।' शोकार्त धर्मराजने शाप दिया। विधिपूर्वक उन्होंने कर्णकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

× × ×

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

'हे जगद्गुरु! हे सर्वेश्वर! मुझपर बार-बार विपत्तियाँ आयें; क्योंकि उनमें आपका दर्शन, स्मरण होता है, जो मोक्षको देनेवाला है।' माता कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे यह वरदान माँगा, जब वे हस्तिनापुरसे युद्धकी समाप्तिके पश्चात् द्वारका जाने लगे। विपत्तिका वरदान! माता कुन्तीने बराबर विपत्तियोंमें रहकर यह अनुभव कर लिया था कि भगवान्का सच्चा स्मरण विपत्तिमें ही होता है।

राज्य प्राप्त करके पाण्डवोंने धृतराष्ट्रका वही सम्मान रखा, जो पहले था। धृतराष्ट्रकी आज्ञासे ही वे सब कार्य करते थे। पन्द्रह वर्षोंतक पाण्डवोंने धृतराष्ट्रके संरक्षणमें राज्यकार्य किया। कुन्तीजीने सदा गान्धारीके अनुकूल आचरण किया और उनकी सेवामें लगी रहीं। अन्तमें धृतराष्ट्रने वनमें सपत्नीक रहकर तपस्या करनेका निश्चय किया। महर्षि व्यासके समझानेपर युधिष्ठिरने उनके वनवासके लिये सम्मति दे दी। अन्तमें पुत्रोंका श्राद्ध करके धृतराष्ट्र वनको चले। पाण्डव, सभी पाण्डवोंकी पत्नियाँ और परिजन पहुँचाने चले। माता कुन्ती गान्धारीका हाथ पकड़े आगे-आगे चल रही थीं। युधिष्ठिर, भीम आदिने मातासे लौटनेके लिये बहुत प्रार्थना की, पर कुन्ती अपने निश्चयपर अटल रहीं।

धृतराष्ट्र तथा गान्धारीने भी कुन्तीको लौटनेका आदेश दिया, अनेक प्रयत्न किये, किंतु असफल हुए। सती कुन्ती वनवासका निश्चय कर चुकी थीं। गान्धारी उन्हें किसी प्रकार लौटा न सकीं। वनमें कुशकी चटाईपर गान्धारीके साथ माता कुन्ती रात्रिमें सो रहती थीं। वही जल तथा कन्द-मूल लाती थीं। आश्रम भी वही स्वच्छ करती थीं। सब प्रकारसे वे धृतराष्ट्र तथा गान्धारीकी सावधानीपूर्वक सेवा करती थीं। स्वयं अनेक प्रकारके व्रत-उपवास किया करती थीं। तीनों समय स्नान करके पतिका स्मरण करतीं। इस प्रकार वनमें अपना समय वे व्यतीत करने लगीं।

वनमें युधिष्ठिर एक बार सपरिवार पूरे समाजके साथ मातृदर्शनके लिये पधारे। इसी समय वहाँ भगवान् व्यास भी आये। धृतराष्ट्रने भगवान् व्याससे अपने मृत पुत्रोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की। माता कुन्तीने भी कर्णको देखना चाहा। योगबलसे व्यासजीने सभी मृत पुरुषोंको दिखा दिया। पूरी रात्रि वे मृतजन पाण्डवोंके साथ मिलते-जुलते तथा क्रीड़ा करते रहे। प्रातः गंगामें वे अदृश्य हो गये। भगवान् व्यासने आदेश दिया—'जो स्त्रियाँ पतियोंके समीप जाना चाहें, वे गंगामें डुबकी लगा लें।'

पाण्डवोंके हस्तिनापुर लौट आनेपर कुन्तीजी गान्धारी तथा धृतराष्ट्रके साथ हरिद्वार चली गयीं। वहाँ तीनों कठोर व्रतोंका आचरण करने लगे। एक दिन वनमें दावाग्नि लगी देख तीनोंने आसन लगाया। योगके द्वारा प्राणनिरोध करके उन्होंने शरीर छोड़ दिया। उनका वह शरीर दावाग्निकी भेंट हो गया।

देवी कुन्तीजीके विषयमें श्रीप्रियादासजी एक कवित्तमें इस प्रकार कहते हैं—

कुन्ती करतूति ऐसी करै कौन भूत प्राणी मांगति विपति जासों भाजैं सब जन हैं।
देख्यो मुख चाहो लाल देखे बिन हिये शाल हूजिये कृपाल नहीं दीजै वास वन हैं॥
देखि विकलाई प्रभु आँखि भर आई फेरि घर ही को लाई कृष्ण प्राण तन धन हैं।
श्रवण वियोग सुनि तनक न रह्यो गयो भयो वपु न्यारो अहो यही साँचो पन हैं॥ ७०॥

अर्थात् इस संसारमें ऐसा कौन प्राणी है, जो श्रीकुन्तीजीके समान भगवान्‌में प्रीति करे। जिस विपत्तिसे सभी लोग दूर भागते हैं, उसे कुन्तीजीने भगवान्‌से माँगा कि मुझपर सदा विपत्ति रहे, जिसमें आपका दर्शन होता है। हे लालन! मैं सदा तुम्हारे मुखारविन्दका दर्शन करना चाहती हूँ, बिना दर्शनोंके हृदयमें शूल लगनेके समान दुःख होता है या तो आप निकट रहकर सदा दर्शन दीजिये, नहीं तो विपत्तिरूप वनवास दीजिये। ऐसी व्याकुलता देखकर भगवान्‌की आँखोंमें आँसू आ गये। द्वारकाको प्रस्थान करते हुए श्रीकृष्णको फिर घरको ही लौटा लायीं। श्रीकृष्ण कुन्तीके तन, धन और प्राण थे। भूमिका भार उतारकर भगवान् निजधामको चले गये—यह सुनते ही उनके वियोगमें कुन्तीजीसे थोड़ा भी नहीं रहा गया। तुरंत शरीर छूट गया। वे भगवद्धामको चली गयीं। धन्य है, यही सच्चा प्रेमप्रण है॥ ७०॥

श्रीद्रौपदीजी

द्रोणाचार्यको गुरुदक्षिणा देनेके लिये अर्जुनने द्रुपदको पराजित कर दिया। यद्यपि आचार्य द्रोणने द्रुपदको पाशमुक्त करके केवल आधा राज्य लेकर मित्र बना लिया, परंतु वे इस अपमानको भूल न सके। द्रुपदने द्रोणसे बदला लेनेके लिये यज्ञ करके संतान-प्राप्तिका निश्चय किया। कल्माषी नगरीके तपस्वी, वेदज्ञ ब्राह्मण उपयाजकी उन्होंने अर्चना की। उनको प्रसन्न करके प्रार्थना की कि द्रोणको मारनेवाले पुत्रकी मुझे प्राप्ति हो, ऐसा यज्ञ करायें। उपयाजने प्रार्थना अस्वीकार कर दी। महाराजने पुनः एक वर्ष सेवा की। इससे प्रसन्न होकर उन विप्रदेवने कहा—'मैंने अपने अग्रजको भूमिमें पड़ा पका फल उठाकर ग्रहण करते एक बार देखा है। मैंने इससे समझा है कि वे द्रव्यकी शुद्धि-अशुद्धिका विचार नहीं करते। आप उनसे प्रार्थना करें।'

महाराज द्रुपदने उनके अग्रज याजको सेवासे प्रसन्न किया। दस करोड़ गायोंकी दक्षिणाका प्रलोभन थोड़ा नहीं था। याजने महाराजके नगरमें आकर सविधि यज्ञ कराया। यज्ञकी पूर्णाहुतिके समय उससे मुकुट, कुण्डल, कवच, त्रोण तथा धनुष धारण किये एक कुमार प्रकट हुआ। इस कुमारका नाम याजने धृष्टद्युम्न रखा। महाभारतके युद्धमें पाण्डवपक्षका पूरे युद्धमें यही कुमार सेनापति रहा। यज्ञकुण्डसे एक कुमारी भी प्रकट हुई। वह युवती थी। उसका वर्ण श्याम था। उसके समान रूपवती दूसरी स्त्री हो नहीं सकती। उसके शरीरसे प्रफुल्ल नील कमलकी गन्ध निकलकर कोसभरतक दिशाओंको सुरभित कर रही थी। वर्णके कारण याजने उसका नाम 'कृष्णा' रखा। इस रूपमें ऋषिकुमारी गुणवती अग्निवेदीसे प्रकट हुई थीं और महाकालीने अंशरूपसे क्षत्रिय-विनाशके लिये उनमें प्रवेश किया था। महाराज द्रुपदकी महारानीने याजसे प्रार्थना की कि ये दोनों मुझे ही माता समझें और याजने 'एवमस्तु' कह दिया।

× × ×

एकचक्रा नगरीमें ही पाण्डवोंको अपने आश्रयदाता ब्राह्मणसे ज्ञात हो गया कि महाराज द्रुपद अपनी पुत्रीका स्वयंवर कर रहे हैं। भगवान् व्यासने आकर आदेश दिया और उसे स्वीकारकर पाण्डव ब्राह्मणवेषमें पांचाल पहुँचे। वहाँ वे एक कुम्हारके घर ठहरे। स्वयंवर-सभामें भी वे ब्राह्मणोंके साथ बैठे। उनके वेष ब्राह्मणोंके समान थे। महाराज द्रुपदने सभाभवनमें ऊपर एक यन्त्र बना रखा था। यन्त्र घूमता रहता था। उसके मध्यमें एक मत्स्य बना था। नीचे तैलपूर्ण कड़ाह था। तैलमें छाया देखते हुए घूमते चक्रके मध्यस्थ मत्स्यको पाँच बाणोंसे मारना था। जो ऐसा कर सके, उसीसे द्रौपदीके विवाहकी घोषणा थी। इस कार्यके लिये जो सुदीर्घ धनुष रखा था, वह इतना कठोर और भारी था कि बहुत-से राजा तो उसे उठानेमें ही असमर्थ हो गये। जरासन्ध, शिशुपाल, शल्य उसपर ज्या चढ़ानेके प्रयत्नमें दूर गिर पड़े। केवल कर्णने धनुष चढ़ाया। वह बाण मारने ही जा रहा था कि द्रौपदीने पुकारकर कहा—'मैं सूतपुत्रका वरण नहीं करूँगी।'

अपमानसे तिलमिलाकर सूर्यकी ओर देखते हुए कर्णने धनुष रख दिया।

राजाओंके निराश होनेपर अर्जुन उठे। उन्हें ब्राह्मण जानकर विप्रवर्गने प्रसन्नता प्रकट की। धनुष चढ़ाकर अर्जुनने मत्स्यवेध किया। द्रौपदीने जयमाल डाली। राजाओंने एक ब्राह्मणसे द्रौपदीका विवाह होते देख द्रुपद और पाण्डवोंपर आक्रमण कर दिया। अर्जुनने धनुष चढ़ा लिया। एक वृक्ष लेकर भीमसेन टूट पड़े। अर्जुनसे युद्ध करके कर्णने शीघ्र समझ लिया कि वे अजेय हैं। उन्हें ब्राह्मण समझकर वह युद्धसे हट गया। उधर भीमने शल्यको दे पटका। इससे सभी नरेश युद्धसे पृथक् होने लगे। श्रीकृष्णने पाण्डवोंको पहचान लिया था। अतः उन्होंने समझा-बुझाकर राजाओंको शान्त कर दिया।

'मा! हम एक भिक्षा लाये हैं।' द्रौपदीको लेकर घर पहुँचनेपर अर्जुनने कहा।

'पाँचों भाई उसे बाँट लो।' बिना देखे ही घरमेंसे माता कुन्तीने कह दिया।

कुन्तीने बाहर आकर द्रौपदीको देखा तो बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे युधिष्ठिरसे अनुनय करने लगीं। 'मैंने कभी मिथ्याभाषण नहीं किया है। मेरे इस वचनने मुझे धर्मसंकटमें डाल दिया। बेटा! मुझे अधर्मसे बचा।'

'धर्मपूर्वक तुमने पांचालीको प्राप्त किया है, अतः तुम इससे विवाह करो।' धर्मराजने अर्जुनसे कहा।

'बड़े भाईके अविवाहित रहते छोटे भाईका विवाह करना अधर्म है। आप मुझे अधर्ममें प्रेरित न करें। द्रौपदीके साथ आपका विवाह ही उचित है। अर्जुनने नम्रतापूर्वक प्रतिवाद किया। युधिष्ठिरने देखा कि सभी भाई द्रौपदीके अलौकिक सौन्दर्यपर मुग्ध हैं। सभी उसे प्राप्त करना चाहते हैं। उन्होंने कहा—'माताके सत्यकी रक्षाके लिये हम पाँचों भाई इससे विवाह करेंगे। यह महाभागा हम सबकी समान रूपसे पत्नी होगी।'

श्रीकृष्णने आकर पाण्डवोंसे साक्षात् किया और उनसे सत्कृत होकर द्वारका गये। महाराज द्रुपदने पाण्डवोंके पीछे-पीछे धृष्टद्युम्नको भेजा था, उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये। धृष्टद्युम्नने गुप्तरूपसे निरीक्षण करके लौटकर पितासे बताया कि लक्षणोंसे वे पाँचों भाई शूरवीर क्षत्रिय जान पड़ते हैं। महाराजके आमन्त्रणपर माताके साथ पाँचों भाई राजसदन गये। महाराजने उनका विविध प्रकारसे सत्कार किया। वे परिचय पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी चिर अभिलाषा कि उनकी कन्या अर्जुनको प्राप्त हो, पूर्ण जो हुई थी। द्रौपदी पाँचों भाइयोंकी पत्नी हो, यह एक धर्म और समाजके विरुद्ध बात थी, जो किसी प्रकार द्रुपदको स्वीकार नहीं थी। भगवान् व्यासने आकर द्रौपदीके पूर्वजन्मका चरित बताकर समझाया। महाराज द्रुपदने स्वीकार किया। विधिपूर्वक क्रमशः एक-एक दिन पाँचों भाइयोंने पांचालीका पाणिग्रहण किया।

चरोंद्वारा सभी राजाओंको पता लग चुका था कि लाक्षाभवनसे पाण्डव जीवित निकल गये हैं और द्रुपदराजतनयाका विवाह उन्हींसे हुआ है। कौरवोंने यह समाचार पाकर पहले तो कर्णकी सलाहसे आक्रमण करना चाहा, किंतु द्वारकासे ससैन्य श्रीकृष्ण सहायता कर सकते हैं और राज्य दिलाने आ सकते हैं— भीष्मपितामहके यह समझानेपर धृतराष्ट्रने विदुरको भेजकर सम्मानपूर्वक उन्हें बुला लिया। एक साथ रहनेसे संघर्ष होगा, इस भयसे आधा राज्य देकर युधिष्ठिरकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ बना दी गयी। माता कुन्तीके साथ पाण्डव वहाँ रहने लगे।

देवर्षि नारदने पाण्डवोंको सुन्द-उपसुन्दकी कथा सुनाकर समझाया कि पत्नीके कारण भाइयोंका प्रगाढ़ प्रेम भी शत्रुतामें परिवर्तित हो जाता है। पाण्डवोंने देवर्षिके उपदेशसे यह नियम किया कि प्रत्येक भाई एक पक्षतक द्रौपदीके साथ रहे। एक भाई द्रौपदीके साथ जब अन्तःपुरमें हो और उस समय दूसरा भाई अन्तःपुरमें प्रवेश करे तो वह प्रायश्चित्तस्वरूप बारह वर्ष तीर्थाटन करे। एक बार

एक ब्राह्मणकी गौ दस्यु बलात् ले जा रहे थे। रक्षाके लिये ब्राह्मणने पुकार की। गाण्डीव अन्तःपुरमें था और वहाँ धर्मराज द्रौपदीके साथ थे। अर्जुनने गाण्डीव लाकर गौओंकी रक्षा की और नियमभंगके कारण स्वेच्छासे वे बारह वर्ष तीर्थाटन करते रहे।

श्रीप्रियादासजी देवी द्रौपदीका स्मरण करते हुए कहते हैं—

द्रौपदी सती की बात कहै कौन ऐसो पटु खैंचत ही पट पट कोटि गुने भये हैं।
द्वारका के नाथ जब बोली तब साथ हुते द्वारका सों फेरि आये भक्त वाणी नये हैं॥
गये दुर्वासा ऋषि वन में पठाये नीच धर्म पुत्र बोले विनय आवै पन लये हैं।
भोजन निवारि तिया आइ कही सोच पर्‌यो चाहै तनु त्याग्यौ कह्यो कृष्ण कहूँ गये हैं॥ ७१॥

× × ×

श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे महाराज युधिष्ठिरने मयद्वारा निर्मित राजसभा प्राप्त की। दिग्विजय हुई और राजसूय यज्ञ करके वे चक्रवर्ती सम्राट् हो गये। यज्ञ समाप्त हो जानेपर एक दिन दुर्योधन राजसभामें आ रहा था। मयके अद्भुत शिल्पके कारण भ्रान्त होकर उसने स्थलको जल समझा और वस्त्र ऊपर उठा लिये। आगे जलकुण्डको स्थल समझकर बढ़ा जा रहा था कि उसमें गिर पड़ा। सभी वस्त्र भीग गये। भीम तथा द्रौपदीको हँसी आ गयी। दुर्योधनको अत्यन्त अपमानका अनुभव हुआ। वह उलटे पैर लौट गया। अपमानका बदला लेनेके लिये अपने मामा शकुनिसे मन्त्रणा करके उसने धर्मराजको जुआ खेलनेका निमन्त्रण दे दिया। धृतराष्ट्रने जुआ खेलनेकी आज्ञा दे दी। द्यूत प्रारम्भ हुआ। शकुनि पासे फेंक रहा था। कपटपूर्ण पासोंके जालमें धर्मराज हारते गये। धन, गौएँ, राज्य, कोष—सभी हारनेपर जुएके उन्मादमें, अगली बाजी जीतनेकी आशामें वे अपने एक-एक भाइयोंको लगाते गये दाँवपर; अन्तमें अपनेको हार गये। कर्ण, दुर्योधनादिने प्रोत्साहित किया और द्रौपदी दाँवपर लगीं। बाजी तो हारनी थी ही।

दुर्योधनने दूतको आदेश दिया—'जा और द्रौपदीको यहाँ पकड़ ला। अब वह हमारी दासी है।' द्रौपदी रजस्वला थीं, यह सुनकर तो उनके दुःखका पार नहीं रहा। दूत उन्हें न ला सका तो दुःशासन बड़े भाईके आदेशसे गया। भागकर गान्धारीके यहाँ जानेपर भी वह दुष्ट उनके राजसूययज्ञके अवभृथ-स्नानसे पवित्र केशोंको पकड़कर घसीटता हुआ राजसभामें ले आया। वे अत्यन्त करुण स्वरसे विलाप कर रही थीं। कर्णने उन्हें अनेक पतियोंकी पत्नी और पण्या कहकर अपमानित किया। पाण्डव मस्तक नीचे किये बैठे थे। द्रौपदीकी पुकार और धिक्कार उनके कान सुननेमें असमर्थ-से थे।

'धर्मराजने पहले अपनेको दाँवपर हारा या मुझे? पहले अपनेको दाँवपर हार जानेके पश्चात् मुझे दाँवपर लगानेका उन्हें क्या अधिकार रह गया था?' बड़े करुणस्वरोंमें द्रौपदीने सबसे प्रार्थना की। भीष्म, द्रोण, कृप आदि सबने मस्तक झुका लिया था। दुर्योधनद्वारा अपमानित होनेके भयसे सब मौन हो रहे थे।

'दुःशासन! देखते क्या हो! इसका वस्त्र उतार लो और निर्वस्त्र करके यहाँ बैठा दो।' दुर्योधनने अपनी वाम जंघा वस्त्रहीन करके दिखायी। कर्णने स्वयंवर-सभाके अपमानका स्मरण करते हुए व्यंग्य करके दुर्योधनका समर्थन किया। दुःशासनने साड़ीका अंचल पकड़ लिया। अब क्या हो? अबलाकी लज्जा क्या इस प्रकार नष्ट हो जायगी? द्रौपदीने कातर होकर चारों ओर देखा। सबके मस्तक नीचे झुके थे। कर्ण प्रोत्साहन दे रहा था। हाथोंसे वस्त्र दबानेका प्रयत्न व्यर्थ था। अबलाके हाथ कहाँतक उन्हें रोक सकते थे। दस सहस्र हाथियोंके बलवाला दुःशासन साड़ीको खींचने लगा। द्रौपदीने नेत्र बन्द कर लिये। उनसे अश्रुवृष्टि हो रही थी। दोनों हाथ ऊपर उठाकर उन्होंने पुकारा—

'हे कृष्ण! हे द्वारकानाथ! हे करुणावरुणालय! दौड़ो! कौरवोंके समुद्रमें मेरी लज्जा डूब रही है। रक्षा करो! रक्षा करो!'

द्रौपदीको शरीरका भान भूल गया। दीनबन्धुका वस्त्रावतार हो चुका था। दुःशासन पसीने-पसीने हो रहा था। रंग-बिरंगे वस्त्रोंका पर्वत लग गया था। उस दस हाथकी साड़ीका ओर-छोर नहीं था। सब एकटक आश्चर्यसे देख रहे थे।

'महाराज! बहुत हो गया! शीघ्र द्रौपदीको सन्तुष्ट कीजिये। नहीं तो श्रीकृष्णके चक्रके प्रकट होकर आपके पुत्रोंको काट डालनेमें अधिक विलम्ब नहीं जान पड़ता।' विदुरने अन्धे राजा धृतराष्ट्रको पूरा वर्णन सुनाया। धृतराष्ट्र भयसे काँप गये। उन्होंने प्रेमसे द्रौपदीको समीप बुलाया। पुत्रोंके अपराधके लिये क्षमा-याचना की। पाण्डवोंको द्रौपदीके साथ दासत्वसे मुक्त करके हारा हुआ राज्य तथा धन लौटा दिया।

'जो हार जाय, वह भाइयों तथा स्त्रीके साथ बारह वर्ष वनमें रहे। वनवासके अन्तिम वर्षमें वह गुप्त रहे। यदि उसका पता लग जाय तो पुनः बारह वर्ष वनमें रहे।' दुर्योधनने पिताकी उदारतासे दुखी होकर किसी प्रकार केवल एक बाजी और खेलनेकी आज्ञा प्राप्त की। युधिष्ठिर इस नियमपर पुनः द्यूतमें हार गये। माता कुन्तीको विदुरके घर छोड़कर वे द्रौपदीके साथ वनमें चले गये। दुखी, उदास पाण्डवोंके साथ प्रजाके बहुत-से लोग साथ चले। वे तो किसी प्रकार लौटा दिये गये, किंतु कुछ ब्राह्मण ग्यारह वर्षतक उनके साथ वनमें रहे। गुप्तवास प्रारम्भ होनेपर वे विदा हुए।

× × ×

राजसूय यज्ञकी समाप्तिपर ही श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका चले गये थे। शाल्वने अपने कामचारी विमान सौभके द्वारा उत्पात मचा रखा था। पहुँचते ही केशवने शाल्वपर आक्रमण किया। सौभको गदाघातसे चूर्ण करके, शाल्व तथा उसके सैनिकोंको यमराजके घर भेजकर जब वे द्वारकामें लौटे तो उन्हें पाण्डवोंके जुएमें हारनेका समाचार मिला। वे सीधे हस्तिनापुर आये और वहाँसे जहाँ वनमें पाण्डव अपनी स्त्रियों, बालकों तथा प्रजावर्ग एवं विप्रोंके साथ थे, पहुँचे। पाण्डवोंसे मिलकर उन्होंने कौरवोंके प्रति रोष प्रकट किया।

द्रौपदीने श्रीकृष्णसे वहाँ कहा—'मधुसूदन! मैंने महर्षि असित और देवलसे सुना है कि आप ही सृष्टिकर्ता हैं। परशुरामजीने बताया था कि आप साक्षात् अपराजित विष्णु हैं। आप ही यज्ञ, ऋषि, देवता तथा पंचभूतस्वरूप हैं। जगत् आपके एक अंशमें स्थित है। त्रिलोकीमें आप व्याप्त हैं। निर्मलहृदय महर्षियोंके हृदयमें आप ही स्फुरित होते हैं। आप ही ज्ञानियों तथा योगियोंकी परम गति हैं। आप विभु हैं, सर्वात्मा हैं, आपकी शक्तिसे ही सबको शक्ति प्राप्त होती है। आप ही मृत्यु, जीवन एवं कर्मके अधिष्ठाता हैं। आप ही परमेश्वर हैं। मैं अपना दुःख आपसे न कहूँ तो किससे कहूँ?'

द्रौपदीके नेत्रोंसे अश्रु गिरने लगे। वे कह रही थीं—'मैं महापराक्रमी पाण्डवोंकी पत्नी, धृष्टद्युम्नकी बहन और आपकी सखी हूँ। कौरवोंकी भरी सभामें मेरे केश पकड़कर मुझे घसीटा गया। मैं एकवस्त्रा रजस्वला थी, मुझे नग्न करनेका प्रयत्न किया गया। ये अर्जुन और भीम मेरी रक्षा न कर सके। इसी नीच दुर्योधनने भीमको विष देकर जलमें बाँधकर फेंक दिया था। इसी दुष्टने पाण्डवोंको लाक्षाभवनमें भस्म करनेका प्रयत्न किया। इसी पिशाचने मेरे केश पकड़कर घसिटवाया और आज भी वह जीवित है।'

पांचाली फूट-फूटकर रोने लगीं। उनकी वाणी अस्पष्ट हो गयी। वे श्रीकृष्णको उलाहना दे रही थीं—'तुम मेरे सम्बन्धी हो, मैं अग्निसे उत्पन्न गौरवमयी स्त्री हूँ, तुमपर मेरा पवित्र अनुराग है, तुमपर मेरा अधिकार है और रक्षा करनेमें तुम समर्थ हो। तुम्हारे रहते मेरी यह दशा हो रही है।'

भक्तवत्सल और न सुन सके। उन्होंने कहा—'कल्याणी! जिनपर तुम रुष्ट हुई हो, उनका जीवन समाप्त हुआ समझो। उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार रोयेंगी और उनके अश्रु सूखनेका मार्ग नष्ट हो चुका रहेगा। थोड़े दिनोंमें अर्जुनके बाणोंसे गिरकर वे श्रृगाल और कुत्तोंके आहार बनेंगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम सम्राज्ञी बनकर रहोगी। आकाश फट जाय, समुद्र सूख जायँ, हिमालय चूर हो जाय, पर मेरी बात असत्य न होगी।'

द्रौपदीने अर्जुनकी ओर देखा। अर्जुनने अपने सखाकी बातका समर्थन किया। श्रीकृष्ण अपने साथ सुभद्रा और अभिमन्युको लेकर द्वारका गये। धृष्टद्युम्न द्रौपदीके पुत्रोंको पांचाल ले गये। सभी आगत राजा अपने-अपने देशोंको लौट गये। विनयपूर्वक धर्मराजने प्रजावर्गको लौटा दिया।

× × ×

वनमें भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिलने सत्यभामाजीके साथ आये थे। एकान्तमें सत्यभामाने कृष्णासे पूछा—'बहन! तुम्हारे पति लोकपालोंके समान शूर हैं। तुम ऐसा क्या व्यवहार करती हो कि वे तुमपर कभी रुष्ट नहीं होते? वे तुमसे सदा प्रसन्न ही रहते हैं। वे सदा तुम्हारे वशमें क्यों रहते हैं? मुझे भी तुम कोई ऐसा व्रत, तप, तीर्थ, मन्त्र, ओषधि, विद्या, जप, हवन या उपचार बताओ, जिससे श्यामसुन्दर सदा मेरे वशमें रहें।'

द्रौपदीने कुछ स्नेह-रोषपूर्वक कहा—'सत्ये! तुम तो मुझसे दुराचारिणी स्त्रियोंकी बात पूछ रही हो। मैं ऐसी स्त्रियोंकी बात क्या जानूँ। मुझपर ऐसी शंका करना तुम्हारे लिये उचित नहीं। जब पति जान लेता है कि पत्नी उसे वशमें करनेके लिये मन्त्र-तन्त्र कर रही है तो वह उससे डरकर दूर रहने लगता है। इस प्रकार चित्तमें उद्वेग होता है और तब शान्ति कैसे रह सकती है? तन्त्र-मन्त्रादिसे कभी पति वशमें नहीं किया जा सकता! इससे तो अनर्थ ही होते हैं। धूर्तलोग स्त्रियोंद्वारा पतिको ऐसी वस्तुएँ खिला देते हैं, जिससे भयंकर रोग हो जाते हैं। पतिके शत्रु इसी बहाने विष दिला देते हैं। ऐसी स्त्रियाँ मूर्खतावश पतिको जलोदर, कुष्ठ, अकालवार्धक्य, नपुंसकता, उन्माद या बधिरता-जैसे रोगोंका रोगी बना देती हैं। पापियोंकी बातें माननेवाली पापी नारियाँ इस प्रकार पतिको अनेक कष्ट देती हैं। साध्वी स्त्रीको भूलकर भी ऐसा प्रयत्न नहीं करना चाहिये।'

द्रौपदीने इसके पश्चात् अपनी चर्या बतायी—'मैं अहंकार और क्रोध छोड़कर पाण्डवोंकी तथा उनकी दूसरी स्त्रियोंकी सावधानीसे सेवा करती हूँ। कभी ईर्ष्या नहीं करती। केवल सेवाके लिये मनको वशमें करके पतियोंके अनुकूल रहती हूँ। न तो अभिमान करती हूँ और न कभी कटुभाषण। असभ्यतासे खड़ी नहीं होती, बुरे स्थानपर बैठती नहीं, बुरी बातोंपर दृष्टि नहीं देती और पतियोंका दोष न देखकर उनके संकेतोंके अनुसार व्यवहार करती हूँ। कितना भी सुन्दर पुरुष हो, मेरा मन पतियोंके अतिरिक्त उधर नहीं जाता। पतियोंके स्नान-भोजन किये बिना मैं स्नान या भोजन नहीं करती। उनके बैठ जानेपर ही बैठती हूँ और उनके घरमें आनेपर उठकर आदरपूर्वक उनको आसन तथा जल देती हूँ। घरके बर्तनोंको स्वच्छ रखती हूँ, सावधानीसे रसोई बनाती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ। घरको स्वच्छ रखती हूँ तथा गुप्तरूपसे अन्नका संचय रखती हूँ। कभी किसीका तिरस्कार नहीं करती, दुष्टा स्त्रियोंके पासतक नहीं जाती। द्वारपर बार-बार नहीं खड़ी होती, कूड़ा फेंकनेके स्थानपर अधिक नहीं ठहरती। पतिसे पृथक् रहना मुझे पसंद नहीं। पतियोंके घरसे कार्यवश बाहर जानेपर पुष्प, चन्दनका उपयोग छोड़कर व्रत करती हूँ। मेरे पति जिन वस्तुओंको खाते, पीते या सेवन नहीं करते, उनसे दूर रहती हूँ। स्त्रियोंके शास्त्रविहित सब व्रत करती हूँ। अपनेको सदा वस्त्रालंकारसे सजाये रहती हूँ।'

द्रौपदीने और भी बताया—'मेरी पूज्या सासने जो भी कौटुम्बिक धर्म बताये हैं, सबका पालन करती हूँ। भिक्षा देना, अतिथि-सत्कार, श्राद्ध तथा त्योहारोंपर पक्वान्न बनाना, माननीयोंका सत्कार आदि सब धर्म सावधानीसे पालन करती हूँ। पतियोंसे अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र मैं कभी ग्रहण नहीं करती। उनसे ऊँचे आसनपर नहीं बैठती। सासजीसे विवाद नहीं करती। सदा अपनी वीरमाता सासकी भोजन-वस्त्रसे सेवा करती हूँ। उनकी कभी वस्त्र, भूषण या जलमें उपेक्षा नहीं करती। सबसे पीछे सोती हूँ, सबसे पहले शय्या छोड़ देती हूँ। धर्मराजके भवनमें प्रतिदिन आठ सहस्र ब्राह्मण स्वर्णपात्रमें भोजन करते थे। महाराज अट्ठासी सहस्र स्नातकोंका भरण-पोषण करते थे। दस सहस्र दासियाँ उनके थीं। मुझे सबके नाम, रूप, भोजन-वस्त्रका पता रहता था। मैं दासियोंके सम्बन्धमें पता रखती थी कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं। महाराजके पास एक लक्ष घोड़े और इतने ही हाथी थे। उनका भी मैं ही प्रबन्ध करती थी। उनकी गणना करती, आवश्यकताएँ सुनती और अन्त:पुरके ग्वालों, गड़रियों तथा सेवकोंकी देख-भाल करती।'

महारानी द्रौपदीके कार्य यहीं नहीं समाप्त हो जाते, वे और बताती हैं—'महाराजके आय-व्ययका हिसाब रखती थी। मेरे पति कुटुम्बका सारा भार छोड़कर पूजा-पाठ या आगतोंका सत्कार करते थे। पूरे परिवारकी देख-भाल मैं ही करती थी। वरुणके समान महाराजके अटूट खजानेका पता भी मुझे ही रहता था। भूख-प्यास सहकर रात-दिन एक करके मैं सदा पाण्डवोंके हितमें लगी रहती थी। मुझे तो पतियोंको वशमें करनेका भी यही उपाय ज्ञात है।'

महारानी कृष्णा सचमुच गृहस्वामिनी थीं। सत्यभामाने उनसे क्षमा माँगी। विदा होते समय पांचालीने उन्हें पतिको वश करनेका निर्दोष मार्ग बतलाते हुए कहा—'तुम सुहृदता, प्रेम, परिचर्या, कार्यकुशलता तथा विविध प्रकारके पुष्प-चन्दनादिसे श्रीकृष्णकी सेवा करो। वही काम करो, जिससे वे समझें कि तुम एकमात्र उन्हींको प्रिय मानती हो। उनके आनेकी आहट पाते ही आँगनमें खड़ी होकर स्वागतको उद्यत रहो। आते ही आसन और पैर धोनेको जल दो। वे दासीको कोई आज्ञा दें तो वह काम स्वयं कर डालो। तुमसे यदि कोई गुप्त रखनेयोग्य बात पतिदेव कहें तो उसे किसीसे मत कहो। पतिके मित्रों तथा हितैषियोंको भोजनादिसे सन्तुष्ट करो तथा पतिके शत्रु, द्वेषी, तटस्थ लोगोंसे दूर रहो। सपत्नियोंके पुत्रोंके साथ भी एकान्तमें मत बैठो। कुलीन, दोषरहित सती स्त्रियोंका ही साथ करो। क्रूर, झगड़ालू, पेटू, चोर, दुष्टा तथा चंचल स्वभावकी स्त्रियोंसे दूर रहो। इस प्रकारसे सब प्रकार पतिकी सेवा करनेसे तुम्हारे यश और सौभाग्यकी वृद्धि होगी तथा अन्तमें स्वर्ग प्राप्त होगा। तुम्हारे विरोधी शमित हो जायँगे।'

× × ×

'कृष्णे! मैं बहुत दूरसे आया हूँ। थक गया हूँ। बड़ी भूख लगी है। अपना गृहप्रबन्ध पीछे करना, पहले मुझे कुछ खानेको दो!' सहसा श्यामसुन्दरने प्रवेश करके कहा। पाण्डवोंने आश्चर्यसे देखा था कि अकस्मात् दारुकके रथ रोकते ही श्रीकृष्ण कूदकर पर्णकुटीमें चले गये। उन्होंने धर्मराजको अभिवादनतक नहीं किया।

'तुम तो जानते ही हो कि साथके विप्रोंको भोजन देनेके लिये महाराजने तपस्या करके सूर्यनारायणसे एक पात्र प्राप्त किया है। उसी पात्रसे विविध पक्वान्न निकलता है और उसीसे हम सबका काम चलता है। मेरे भोजनके पश्चात् वह पात्र रिक्त हो जाता है। मैंने भोजन कर लिया है। पात्र धोकर रख दिया है। अब क्या हो?' द्रौपदीने बड़ी खिन्नतासे कहा।

'मैं तो भूखसे व्याकुल हो रहा हूँ और तुम्हें हँसी सूझती है। मैं कुछ नहीं जानता; लाओ, कुछ

खिलाओ!' नकली रोषसे लीलामयने कहा।

द्रौपदीका भय दूर हो गया था। उसने प्रार्थना की। 'मेरे पतियोंके समीप दस सहस्र शिष्योंके साथ महर्षि दुर्वासा आये हैं। धर्मराजने उन्हें आतिथ्यको आमन्त्रित कर दिया है। स्नान-सन्ध्या करने वे सरोवर गये हैं। लौटनेपर उन्हें अन्न न मिला तो शाप देकर पाण्डवोंको भस्म कर देंगे। इसी संकटमें पड़कर मन-ही-मन तुम्हारा स्मरण करते हुए मैं रो रही थी। तुमने मुझ दुखियाकी पुकार सुन ली। अब अपने पाण्डवोंकी रक्षा करो!'

'यह सब पचड़ा पीछे; पहले लाओ, अपना वह पात्र दो!' श्रीकृष्ण झुँझलाये।

'लो! तुम्हीं देख लो!' द्रौपदीने पात्र लाकर दे दिया। भगवान्‌की लीला, भली प्रकार सावधानीसे स्वच्छ किये उस पात्रमें भी शाकका एक पत्ता चिपका निकल आया।

'यज्ञभोक्ता सर्वात्मा इससे तृप्त हों!' माधवने वह पत्ता उठाकर मुखमें डाल लिया। अब यह पुनः भोजनक्रम प्रारम्भ हो गया था, अतः पात्र भर गया। उसे तो अब द्रौपदीके भोजन न करनेतक अन्न देते रहना था।

'जाओ! ऋषियोंको बुला लाओ!' श्रीकृष्णने सहदेवको बाहर आकर आज्ञा दी। वहाँ जलमें खड़े ऋषियोंका उदर विश्वात्मा श्रीकृष्णके मुखमें शाक डालते ही भर गया था। खट्टी डकारें आ रही थीं। दुर्वासाजीने सोचा कि युधिष्ठिर अन्न प्रस्तुत करेंगे, अब हम भोजन तो कर नहीं सकते। कहीं अन्न व्यर्थ नष्ट होता देख धर्मराज रुष्ट हो गये तो लेनेके देने पड़ जायँगे। धर्मराज भगवान्‌के सच्चे भक्त हैं। महर्षिको अभी अम्बरीषपर रुष्ट होकर कष्ट पानेकी घटना भूली नहीं थी। उन्होंने भागनेमें ही कल्याण समझा। सहदेवने लौटकर बताया कि वहाँ कोई नहीं है।

'महर्षि कहीं अर्धरात्रिको आकर अन्न न माँगें।' पाण्डव चिन्तित हो गये।

'दुर्वासा अब नहीं आयेंगे। दुष्ट दुर्योधनने अपनी सेवासे प्रसन्न करके उनसे वरदान ले लिया था कि शिष्योंके साथ वे तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण करने तब पधारें, जब पांचाली भोजन कर चुकी हों। इस कष्टको मैंने निवारित कर दिया।' श्रीकृष्णने सबको समझाकर आश्वस्त किया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

सुन्यो भागवती को वचन भक्तिभाव भर्‌यो कर्‌यो मन आये श्याम पूजे हिये काम है।
आवत ही कही मोहि भूख लागी देवो कछु महासकुचाये माँगैं प्यारो नहीं धाम है॥
विश्व के भरण हार धरे हैं आहार अजू हमसों दुरावो कही वाणी अभिराम है।
लग्यो शाक पत्र पात्र जल सङ्ग पाइ गये पूरण त्रिलोकी विप्र गिनै कौन नाम है॥ ७२॥

× × ×

सिन्धुनरेश जयद्रथ सब प्रकार सज-धजकर विहारके लिये शाल्व देशकी ओर जा रहा था। उसने एकाकिनी द्रौपदीको वनमें देखा। पाण्डव आखेटके लिये गये थे। जयद्रथ द्रौपदीको देखते ही मुग्ध हो गया। उसने अपने साथी राजा कोटिकास्यको परिचय जाननेके लिये भेजा। कोटिकास्यने समीप जाकर मधुर शब्दोंमें परिचय पूछा और अपना परिचय दिया।

द्रौपदीने बड़े संकोचसे कहा—'मर्यादानुसार मुझे तुमसे नहीं बोलना चाहिये, परंतु समीपमें दूसरे किसी पुरुष या स्त्रीके न होनेसे मुझे विवश होकर बोलना पड़ा। मैं तुम्हें और सिन्धुनरेशको भी जानती हूँ। मेरे पति वनमें आखेटको गये हैं। उन विश्वविख्यात पाण्डवोंको तुम जानते हो। मैं उनकी पत्नी कृष्णा हूँ। अपने

वाहन खोल दो! पाण्डवोंका आतिथ्य स्वीकार करके जहाँ जाना हो, चले जाना। उनके लौटनेका समय हो गया है।'

द्रौपदी कुटीमें आतिथ्यकी व्यवस्था करने चली गयी। उसने इन लोगोंपर विश्वास कर लिया। कोटिकास्यसे परिचय पाकर स्वयं जयद्रथ आया। उसने पहले तो कुशल पूछी और पाण्डवोंको राज्यहीन, निर्धन कहकर द्रौपदीसे कहने लगा कि वह उनको छोड़कर सिन्धुकी महारानी बने। द्रौपदीने उसे फटकारा—'मेरे पति युद्धमें देवता और राक्षसोंका भी वध कर सकते हैं। मूर्खतावश अपने नाशके लिये तूने मेरे प्रति कुदृष्टि की है!'

जयद्रथने पुनः धमकाया। कृष्णाने कहा 'तू एकाकिनी समझकर मुझपर बल दिखा रहा है, पर मैं तेरे सम्मुख दीन वचन नहीं बोल सकती। जब एक रथपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन मेरी खोजमें निकलेंगे तो इन्द्र भी तुझे छिपा नहीं सकते। अभी मेरे पति आकर तेरी सेनाका नाश कर देंगे। यदि मैं पतिव्रता हूँ तो इस सत्यके प्रभावसे आज मैं देखूँगी कि पाण्डव तुझे घसीट रहे हैं।'

जयद्रथने द्रौपदीको पकड़ना चाहा, उसे धक्का देकर पांचालीने धौम्यमुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और इसलिये स्वयं रथमें बैठ गयीं कि जयद्रथ उनका स्पर्श न करे। उनको लेकर जयद्रथ ससैन्य चला। पाण्डवोंने वनमें श्रृगालको रोते हुए पाससे जाते देख अमंगलकी आशंका की। वे शीघ्रतापूर्वक लौटे। आश्रममें धात्रिकाको रोते देख उससे पूछकर उन्होंने समाचार ज्ञात किया। आगे बढ़नेपर धौम्यमुनि पैदल सेनामें भीमको पुकारते हुए जाते दिखायी पड़े। भयभीत होकर पैदल सेनाने तो शरण माँग ली। शेषपर पाण्डवोंने बाणवर्षा प्रारम्भ की। अनेक राजा मारे गये। भयातुर जयद्रथ द्रौपदीको रथसे उतारकर भागा। द्रौपदी धौम्यमुनिके साथ धर्मराजके पास लौट आयीं।

'बहन दुःशला (दुर्योधनकी बहन)-का ध्यान करके जयद्रथको मारना मत! बहनको विधवा मत करना।' भीमको सिन्धुराजके पीछे जाते देख युधिष्ठिरने आदेश दिया। भीमने दौड़कर जयद्रथको ललकारा और पराजित करके पकड़ लिया। उसको पटककर मरम्मत कर दी। सिरके केश मूँड़कर पाँच चोटियाँ रखकर तथा दासत्व स्वीकार करवाके उसे बाँधकर वे ले आये। इस दशामें उसे देखकर द्रौपदीको दया आ गयी। उन्होंने भीमसेनसे कहा—'महाराजके इस दासको अब छोड़ दो।'

धर्मराजने बन्धनमुक्त करके जयद्रथको दासत्वसे भी मुक्त कर दिया और विदा करते समय समझाया कि—'अब कभी परस्त्रीपर कुदृष्टि डालने-जैसा नीच कार्य मत करना।'

× × ×

'महारानी! मैं सैरन्ध्री हूँ और अपने योग्य कार्य चाहती हूँ। मुझे बालोंको सुन्दर बनाना, गूँथना, पुष्पहार बनाना, चन्दन या अंगराग बनाना बहुत अच्छा आता है। मैं इससे पूर्व द्रौपदीके अन्तःपुरमें रह चुकी हूँ। मुझे केवल भोजन-वस्त्र चाहिये।' पांचालीने विराटकी महारानी सुदेष्णाको बताया। उसे नगरमें भटकते देख महारानीने बुलाया था।

'तुम तो देवताओंके समान सुन्दर हो। यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं। तुम्हें अन्तःपुरमें रखनेपर भय है कि महाराज तुमपर आसक्त हो जायँगे।' सुदेष्णाने उत्तर दिया!

'पाँच परम पराक्रमी गन्धर्व मेरे पति हैं। जो मुझपर कुदृष्टि करता है, उसे वे उसी रात्रि मार डालते हैं। जो मुझसे पैर नहीं धुलवाता तथा जूठेका स्पर्श नहीं कराता, उसका वे मंगल करते हैं। कृष्णाने आश्वासन दिया।'

'तुम्हें पैर नहीं धोने होंगे और उच्छिष्ट भी स्पर्श नहीं करना पड़ेगा। तुम मेरे समीप आदरपूर्वक निवास करो।' सुदेष्णाने स्वीकृति दे दी।

'तुम इतनी सुन्दर कौन हो? यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं। मुझे स्वीकार करो।' एक दिन विराटके सेनापति कीचकने अन्तःपुरमें सैरन्ध्रीको देखकर कहा। वह उसके सौन्दर्यपर मुग्ध हो गया था। द्रौपदीने परस्त्रीके प्रति आकर्षित न होनेके लिये उसे समझाया; किंतु वह दुष्ट बराबर हठ ही करता रहा। गन्धर्वोंके भयका भी उसपर कोई प्रभाव न हुआ। उसने द्रौपदीसे कोरा उत्तर पाकर अपनी बहन सुदेष्णासे प्रार्थना की। सुदेष्णाने द्रौपदीके अस्वीकार करनेपर भी बलपूर्वक रस लानेके बहाने उन्हें कीचकके भवनमें भेजा। उन्मत्त कीचकने उन्हें पकड़नेका प्रयत्न किया। किसी प्रकार उसे धक्का देकर भागकर वे राजसभामें आयीं। पीछे दौड़ता हुआ कीचक वहाँ भी पहुँचा और उसने द्रौपदीको केश पकड़कर पटक दिया तथा पाद-प्रहार किया। सूर्यद्वारा द्रौपदीकी रक्षामें नियुक्त राक्षसने आँधीके समान कीचकको दूर फेंक दिया। वह गिरकर मूर्च्छित हो गया।

भीमसेन और अर्जुन दोनों क्रोधित हो गये, पर धर्मराजने संकेतसे उन्हें रोक दिया। द्रौपदीने सभाभवनके द्वारपर खड़े होकर कहा, 'मेरे महापराक्रमी पति सूतद्वारा मेरा अपमान कायरोंकी भाँति देख रहे हैं। वे धर्मपाशमें बँधे हैं। यहाँका राजा विराट एक निरपराध स्त्रीको इस प्रकार मारे जाते देखकर चुप है। यह राजा होकर भी न्याय नहीं करता। यह लुटेरोंका-सा धर्म राजाको शोभा नहीं देता। सभासद् भी इस अन्यायको चुपचाप सह रहे हैं।'

सभासदोंने द्रौपदीकी प्रशंसा की। महाराज विराट कीचकके बलसे दबे थे। उसने अनेक देश जीते थे। यद्यपि वह लम्पट था, प्रजासे धन लूट लेता था और प्रजाकी स्त्रियोंके साथ अत्याचार करता था, परंतु महाराज उसका विरोध नहीं कर सकते थे, अतः वे चुप रहे। धर्मराजने संकेत से कहा—'तेरे पति तेरे कष्टदाताको अवश्य नष्ट कर डालेंगे। वे अभी अवसर नहीं देखते। तू अन्तःपुरमें जा!'

द्रौपदी अन्तःपुरमें गयी। सुदेष्णाने उसे आश्वासन देनेका प्रयत्न किया। रात्रिमें द्रौपदीने भोजनालयमें भीमसेनके पास जाकर रोते हुए कहा—'तुम लोगोंको इस वेषमें देखकर मेरा हृदय फटता है। मुझे भी सुदेष्णाकी दासी बनकर रहना पड़ रहा है। अब तो यह अपमान मैं सह नहीं सकती। कीचक नित्य घृणित संकेत करता है और गन्दी बातें कहता है। आज उसने भरी सभामें तुम सबके देखते मुझे मारा है। अब वह मुझे नित्य मारेगा और बलप्रयोग करेगा। यदि तुम मुझे अवधि पूर्ण होनेतक चुप रहनेको कहोगे तो मैं प्राण दे दूँगी।'

भीमसेनने द्रौपदीको आश्वासन दिया। उनकी सम्मतिसे जब कीचकने दूसरे दिन वही राग छेड़ा तो कृष्णाने उसे रात्रिको एकान्तमें विराटकी नवीन नृत्यशालामें बुलाया। भीमसेन सूचना पाकर पहलेसे ही वहाँ उपस्थित थे! उन्होंने युद्धमें कीचकको पछाड़कर मार डाला। उसके हाथ-पैर धड़में दबाकर घुसा दिये। इसी दशामें द्रौपदीको दिखाया। द्रौपदीने लोगोंसे कहा—'मेरा अपमान करनेवाले नीच कीचककी मेरे गन्धर्व पतियोंने क्या दशा की, सो जाकर देखो!'

'कीचककी मृत्यु सैरन्ध्रीके कारण ही हुई है। अतः इसे भी साथमें जला दो। इससे कीचककी आत्माको सन्तोष होगा।' कीचकको मरा देखकर रोषके मारे उपकीचकोंने यह निश्चय किया। उनके भयसे डरे विराटने भी ऐसा करनेकी आज्ञा दे दी। उन्होंने द्रौपदीको बाँध लिया और श्मशान ले चले। आर्तनाद करती जाती द्रौपदीकी रक्षा-पुकार भीमसेनने सुन ली। नगर-परकोटा लाँघकर वे पहले ही श्मशान पहुँच गये। एक महान्

वृक्ष उखाड़कर दौड़े। उन्हें देखकर उपकीचक भागे। भीमसे उन सबको मार डाला और द्रौपदीको बन्धनमुक्त कर दिया। भीम अपना काम करके पुन: उसी मार्गसे भोजनालय पहुँच गये।

'भद्रे! महाराज गन्धर्वोंसे बहुत डरे हैं। तुम अत्यन्त सुन्दरी हो और पुरुष स्वाभाविक कामी होते हैं। तुम्हारे गन्धर्व बड़े क्रोधी हैं। उन्होंने एक सौ पाँच उपकीचकोंको मार डाला है। अत: महाराजने कहा है कि तुम अब यहाँसे जहाँ इच्छा हो, चली जाओ! अन्त:पुरमें पहुँचते ही सुदेष्णाने कहा।'

'महाराज मुझे तेरह दिन और क्षमा करें। मेरे गन्धर्व पति इसके पश्चात् स्वयं मुझे ले जायँगे और वे महाराजका भी मंगल करेंगे।' सैरन्ध्रीकी इस बातका प्रतिवाद करनेका साहस अब रानी सुदेष्णामें नहीं था। तेरह दिन पश्चात् गुप्तवासकी अवधि समाप्त होनेपर पाण्डव प्रकट हो गये।

× × ×

पाण्डवोंके वनवासकी अवधि समाप्त हुई। विराटनगरमें उनके पक्षके नरेश एकत्र होने लगे। अनेक ऋषियोंने, विदुरने तथा औरोंने भी दुर्योधनको समझाया; किंतु वह बिना युद्धके पाँच ग्राम भी पाण्डवोंको देनेको प्रस्तुत नहीं था। अन्तिम प्रयत्नके रूपमें शान्तिदूत बनकर स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रने विराटनगरसे हस्तिनापुर जाना निश्चित किया। उनको जानेको उद्यत देखकर द्रौपदीने उनसे कहा—'जनार्दन! अवध्यका वध करनेमें जो पाप होता है, वही पाप वध्यका वध न करनेमें भी होता है। मैं अपने अपमानको भूल नहीं सकी हूँ। शान्ति और दुर्योधनकी दी हुई भिक्षा मेरी अन्तर्ज्वालाको शान्त नहीं करेगी। यादव, पाण्डव और पांचालके शूरोंके रहते मेरी यह दशा है! यदि आपका मुझपर तनिक भी स्नेह है तो कौरवोंपर कोप कीजिये।'

जाहु भले कुरुराज पर, धारि दूतवर-वेश।
भूलि न जैयो पे वहाँ, केशव द्रौपदि-केश॥

अपने काले-काले सुदीर्घ केशोंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णको दिखाते हुए रोकर पांचालीने कहा—'आज बारह वर्षसे इन केशोमें कंघी नहीं पड़ी है। ये बाँधे नहीं गये हैं। जिसने इनको भरी सभामें खींचा है, उस दुष्ट दु:शासनकी उसी भुजाके रक्तसे धोकर तब मैं इन्हें बाँधूँगी, यह मैंने प्रतिज्ञा की है। मधुसूदन! क्या ये आजीवन खुले ही रहेंगे? यदि पाण्डव कायर हो गये हैं, यदि वे युद्ध नहीं करते तो मैं अपने पाँचों पुत्रोंको आदेश दूँगी। बेटा अभिमन्यु उनका नेतृत्व करेगा। मेरे पिता और भाई भी यदि मेरी उपेक्षा कर दें तो मैं तुम्हारे पैर पकड़ूँगी। क्या मेरी प्रार्थनापर भी तुम द्रवित न होओगे? क्या तुम्हारा चक्र शान्त ही रहेगा? मैं कौरवोंकी लाशोंको धूलिमें तड़पते देखना चाहती हूँ। इसके बिना कोई साम्राज्य मुझे सुखी नहीं कर सकता।'

श्रीकृष्णने गम्भीरतासे कहा—'कृष्णे! आँसुओंको रोको! इस नाटकको हो जाने दो! मैंने प्रतिज्ञा की है और प्रकृतिके सारे नियमोंके पलट जानेपर भी वह मिथ्या नहीं होगी। जिनपर तुम्हारा कोप है, उनकी विधवा पत्नियोंको तुम शीघ्र ही रोते देखोगी। ये ही धर्मराज युद्धका आदेश देंगे और तुम्हारे शत्रु युद्धभूमिमें मारे जायँगे।'

× × ×

महाभारतका युद्ध प्रारम्भ हो गया था। सहसा एक रात्रिको धर्मराजके चरोंने समाचार दिया कि दुर्योधनके द्वारा उत्तेजित किये जानेपर भीष्मपितामहने प्रतिज्ञा की है कि कल वे समस्त सैन्यके साथ पाँचों पाण्डवोंको मार देंगे। पाण्डवोंमें अत्यन्त व्याकुलता फैल गयी। धर्मराजने श्रीकृष्णके पास अर्जुनको भेजा, किंतु रूखा उत्तर मिला। अन्तमें द्रौपदीने माधवके शिविरमें जाकर उनसे प्रार्थना की कि वे पाण्डवोंकी रक्षा करें।

यदि पितामहने प्रतिज्ञा की है, तो वह सत्य होकर रहेगी। 'मैं असमर्थ हूँ।' रूखे मुख उत्तर दे दिया गया।

'तो क्या तुमने लम्बी-लम्बी शपथें खाकर मुझको झूठा ही आश्वासन दिया था। श्रीकृष्णके जीवित रहते उनकी सखी कृष्णाके पति परलोक सिधार जायँ, इससे बढ़कर कलंक और क्या होगा?' द्रौपदीने खीझकर कहा।

'एक उपाय है—तुम चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चलो और भीष्मके शिविरमें जाकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करो।' श्रीकृष्णने मुसकराते हुए कहा।

'मैं तो सदा ही तुम्हारे वचनोंका अनुसरण करनेको प्रस्तुत हूँ, चलो शीघ्र।'

रातका तीसरा प्रहर था। भगवान् द्रौपदीको लेकर चले। 'अरे तुम्हारी पंचनदीय जूतियोंको देखकर तो कोई भी पहचान लेगा। उतारो जूतियाँ जल्दी।' श्रीकृष्णने द्रौपदीको कुछ कहनेका अवसर ही नहीं दिया और जूतियोंको लेकर अपने पीत उत्तरीयमें लपेटा और धीरेसे बगलमें दबा लिया और कहा—'बस, पीछे-पीछे चली चलो। द्रौपदीने आज्ञाका पालन किया।'

'यह पितामहका शिविर है। चुपचाप अन्दर जाकर पितामहको प्रणाम करो। वे मेरा ध्यान कर रहे होंगे बैठे-बैठे। प्रणाम करना तो आभूषणोंको भली प्रकार बजाकर। मैं यहीं हूँ। मेरा पता मत बताना।' लीलामयने आदेश दे दिया।

पितामहके शिविरमें सौभाग्यवती स्त्री, ब्राह्मण, साधु तथा श्रीकृष्णके निर्बाध प्रवेशकी आज्ञा थी। पितामह ध्यानस्थ बैठे थे। द्रौपदीने जाकर पैरोंपर मस्तक रखा। पितामहने समझा दुर्योधन अभी-अभी गया है, रानी प्रणाम करने आयी होगी। झटसे कह दिया—'सौभाग्यवती हो, बेटी!'

'पतियोंको मारनेकी प्रतिज्ञा करके पत्नीको सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद? पितामह! आप तो कभी असत्य नहीं बोलते। यह कैसी विडम्बना!' द्रौपदीने पूछा।

'ओह, पांचाली! तू यहाँ कैसे, पुत्री! मैंने पाण्डवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा तो की है; परंतु साथ ही यह भी कहा है कि यदि श्रीकृष्णने शस्त्र न उठाया तो ऐसा होगा! तू यहाँ किसके साथ आयी? बिना श्यामसुन्दरके यह सब कौन कर सकता है? बता, वे मेरे प्रभु कहाँ है?' बुद्धिमान् भीष्मने सब समझ लिया।

'मुझे धिक्कार है, जिसके यहाँ आनेमें संकोच करके श्रीकृष्णको द्वारपर रुकना पड़ता है।' द्रौपदीके न बतानेपर भी भीष्मने स्वयं मधुसूदनको ढूँढ़ लिया। जगत्पति जूतियोंको बगलमें दबाये द्वारपर निस्तब्ध खड़े मुसकरा रहे थे। भीष्म चरणोंपर गिरकर रोने लगे।

'यदि आप इसी प्रकार दस सहस्र महारथी नित्य मारते रहे तो द्रौपदी सौभाग्यवती हो चुकी।' शिविरमें आकर आसन तथा सत्कार ग्रहण करके केशवने कहा।

'आप जो चाहते हैं, वह तो होगा ही। मेरे मुखसे ही मेरी मृत्युका उपाय आपको सुनना है तो मैं वह भी बता दूँगा; किंतु कलके युद्धमें मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनी होगी।' पितामहने गद्‌गद स्वरमें प्रार्थना की। वहाँसे पितामहके रथमें बैठकर द्रौपदीको लेकर श्रीकृष्ण धर्मराजके शिविरमें लौट आये। पूरा समाचार जानकर पाण्डवोंका समस्त शोक दूर हो गया।

× × ×

महाभारत समाप्त हुआ। पाण्डव-सेना शान्तिसे शयन कर रही थी। श्रीकृष्ण पाँचों पाण्डवों तथा द्रौपदीको लेकर उपप्लव्य नगर चले गये थे। प्रातः दूतने समाचार दिया कि रात्रिमें शिविरमें अग्नि लगाकर

अश्वत्थामाने सबको निर्दयतापूर्वक मार डाला। यह सुनते ही सब रथमें बैठकर शिविरमें पहुँचे। अपने मृत पुत्रोंको देखकर द्रौपदीने बड़े करुण स्वरमें क्रन्दन करते हुए कहा—'मेरे पराक्रमी पुत्र यदि युद्धमें लड़ते हुए मारे गये होते तो मैं सन्तोष कर लेती। क्रूर ब्राह्मणने निर्दयतापूर्वक उन्हें सोते समय मार डाला है।'

द्रौपदीको धर्मराजने समझानेका प्रयत्न किया, परंतु पुत्रके शवके पास रोती माताको क्या समझायेगा कोई। भीमने क्रोधित होकर अश्वत्थामाका पीछा किया। श्रीकृष्णने बताया कि नीच अश्वत्थामा भीमपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर सकता है। अर्जुनको लेकर वे भी पीछे रथमें बैठकर गये। अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उसे शान्त करनेको अर्जुनने भी उसी अस्त्रसे उसे शान्त करना चाहा। दोनों ब्रह्मास्त्रोंने प्रलयका दृश्य उपस्थित कर दिया। भगवान् व्यास तथा देवर्षि नारदने प्रकट होकर ब्रह्मास्त्रोंको लौटा लेनेका आदेश दिया। अर्जुनने ब्रह्मास्त्र लौटा लिया। पकड़कर द्रोण-पुत्रको उन्होंने बाँध लिया और अपने शिविरमें ले आये।

अश्वत्थामा पशुकी भाँति बँधा हुआ था। निन्दित कर्म करनेसे उसकी श्री नष्ट हो गयी थी। उसने सिर झुका रखा था। अर्जुनने उसे लाकर द्रौपदीके सम्मुख खड़ा कर दिया। गुरुपुत्रको इस दशामें देखकर द्रौपदीको दया आ गयी। उन्होंने कहा—'इन्हें जल्दी छोड़ दो। जिनसे सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी आपलोगोंने शिक्षा पायी है, वे भगवान् द्रोणाचार्य पुत्ररूपमें स्वयं उपस्थित हैं। जैसे पुत्रोंके शोकमें मुझे दुःख हो रहा है, मैं रो रही हूँ, ऐसा ही प्रत्येक स्त्रीको होता होगा। देवी कृपीको यह शोक न हो! वे पुत्रशोकमें मेरी तरह न रोयें! ब्राह्मण सब प्रकार पूज्य होता है। इन्हें शीघ्र छोड़ दो! ब्राह्मणोंका हमारे द्वारा अनादर नहीं होना चाहिये।'

भीमसेन अश्वत्थामाके वधके पक्षमें थे। अन्तमें श्रीकृष्णकी सम्मतिसे द्रोणपुत्रके मस्तकपर रहनेवाली मणि छीनकर अर्जुनने उसे शिविरसे बाहर निकाल दिया।

× × ×

महाभारतकी समाप्तिपर युधिष्ठिरने बन्धुत्वकी भावना करके विरक्त होकर वनमें जानेका विचार प्रकट किया। जब सब भाई उन्हें समझा चुके तो पांचालराजकुमारीने कहा—'महाराज! आपने द्वैतवनमें बार-बार कहा है कि शत्रुओंको जीतकर आप हम सबको सुखी करेंगे, अब अपनी बातको क्यों मिथ्या कर रहे हैं? मेरी सास कुन्तीजी कभी झूठ नहीं बोलतीं। उन्हींने भी कहा था कि आप शत्रुओंपर विजय करके साम्राज्यका उपभोग करेंगे। अपनी माताके वचनोंको आप क्यों मिथ्या कर रहे हैं? दुष्टोंको दण्ड देकर, निर्बलोंकी रक्षा करके, अनाथोंकी सहायता करके, विप्रोंको दान देकर प्रजापालन करनेवाला राजा निःश्रेयसको प्राप्त करता है। आप अपने धर्मको छोड़कर किस विधर्मके प्रलोभनमें वन जाना चाहते हैं? आपने दानमें, शास्त्र सुनाकर, युद्धमें धोखा देकर या अन्यायसे यह राज्य नहीं पाया है। धर्मयुद्धमें शत्रुओंका दमन करके आपने इसे प्राप्त किया है। आपने सम्पूर्ण पृथ्वीपर शासन प्राप्त किया है, अब आप इस दायित्वसे क्यों विमुख होते हैं? मैं पुत्रोंके मरनेपर भी केवल आपकी ओर देखकर ही जीवित हूँ। आपके ये पराक्रमी भाई भी आपके लिये ही जीवन धारण किये हैं। आपके लिये उदासीनता उचित नहीं। शासन कीजिये, यज्ञ कीजिये और ब्राह्मणोंको दान दीजिये।'

महाराज युधिष्ठिरने दीर्घकालतक शासन किया। उन्होंने द्रौपदीके साथ तीन अश्वमेधयज्ञ किये। द्वारकासे लौटकर अर्जुनने जब यदुवंशके क्षयका समाचार दिया तो परीक्षित्‌का राज्याभिषेक करके धर्मराजने अपने राजोचित वस्त्रोंका त्याग कर दिया। मौनव्रत लेकर वे निकल पड़े। भाइयोंने भी उन्हींका अनुकरण किया। द्रौपदीने भी वल्कल पहना और पतियोंके पीछे चल पड़ीं। धर्मराज सीधे उत्तर दिशामें चलते गये।

बदरिकाश्रमसे ऊपर वे हिमप्रदेशमें जा रहे थे। द्रौपदी सबके पीछे चल रही थीं। सब मौन थे। कोई किसीकी ओर देखता नहीं था। द्रौपदीने अपना चित्त सब ओरसे एकाग्र करके परात्पर भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया था। उन्हें शरीरका पता नहीं था। हिमपर फिसलकर वे गिर पड़ीं। शरीर उसी श्वेत हिमराशिमें विलीन हो गया। महारानी द्रौपदी तो परम तत्त्वसे एक हो चुकी थीं।

श्रीहरिध्यानिष्ठ भक्तगण

जोगेस्वर श्रुतदेव अंग मुचु (कुंद) प्रियब्रत जेता।
पृथू परीच्छित सेष सूत सौनक परचेता॥
सतरूपा त्रयसुता सुनीति सती (सबाह) मंदालस।
जग्यपत्नि ब्रजनारि किए केसव अपने बस॥
ऐसे नर नारी जिते तिनही के गाऊँ जसैं।
पद पंकज बांछौं सदा जिन के हरि नित उर बसैं॥१०॥

जिन भक्तोंके हृदयमें भगवान् नित्य निवास करते हैं, मैं उनके चरणकमलोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ। नौ योगीश्वर, श्रुतदेव, राजा अंग, मुचुकुन्दजी, विश्वविजयी प्रियव्रतजी, पृथुजी, परीक्षित्‌जी, शेषजी, सूतजी, शौनकादि ऋषि, प्रचेतागण, शतरूपाजी, प्रसूतिजी, आकूतिजी, देवहूतिजी, सुनीतिजी, दक्षकन्या सतीजी, सम्पूर्ण सतीवर्ग, मन्दालसा, यज्ञपत्नियाँ और व्रजगोपियाँ, जिन्होंने श्रीकृष्णको अपने वशमें कर लिया है, ऐसे जितने स्त्री या पुरुष हैं, मैं सदा उनके सुयशका गान करूँ॥ १०॥

यहाँ श्रीहरिध्याननिष्ठ इन भक्तजनोंके मंगलमय पावन चरित्रका किंचित् स्मरण प्रस्तुत है—

नौ योगीश्वर

महाराज स्वायम्भुव मनु और शतरूपासे इस सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। स्वायम्भुव मनुके पुत्र हुए प्रियव्रत। प्रियव्रतके आग्नीध्र, आग्नीध्रके नाभि और नाभिके पुत्र हुए ऋषभ। वे भगवान् वासुदेवके अंश थे। मोक्ष-धर्मका उपदेश करनेके लिये उन्होंने अवतार लिया था। ऋषभके सौ पुत्र थे, वे सब-के-सब वेदोंके पारदर्शी विद्वान् थे। उनमें सबसे बड़े थे राजर्षि भरत। वे भगवान् नारायणके परम प्रेमी भक्त थे। उन्हींके नामसे यह भूमिखण्ड जो पहले 'अजनाभवर्ष' कहलाता था, 'भारतवर्ष' कहलाया। राजर्षि भरत चक्रवर्ती सम्राट् थे, उन्होंने सारी पृथ्वीका राज्य-भोग किया और अन्तमें इसे छोड़कर वनको चले गये। वहाँ उन्होंने तपस्याद्वारा भगवान्‌की उपासना की और तीसरे जन्ममें भगवान्‌को प्राप्त हुए। भगवान् ऋषभदेवके शेष निन्यानबे पुत्रोंमेंसे नौ पुत्र भारतवर्षके सब ओर स्थित नौ द्वीपोंके अधिपति, इक्यासी पुत्र कर्मकाण्डके रचयिता ब्राह्मण और बाकी नौ संन्यासी हो गये। ऋषभदेवके जो नौ पुत्र संन्यासी हो गये, वे बड़े ही भाग्यवान् थे। उन्होंने आत्मविद्याके सम्पादनमें बड़ा परिश्रम किया था और वास्तवमें वे उसमें बड़े निपुण थे। वे प्रायः दिगम्बर ही रहते थे और अधिकारियोंको परमार्थ वस्तुका उपदेश दिया करते थे। उन्हें ही नौ योगीश्वर कहा जाता है। उनके नाम हैं—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन।

ये नौ योगीश्वर इस कार्य-कारण और व्यक्त-अव्यक्त भगवद्रूप जगत्‌को अपनी आत्मासे अभिन्न अनुभव करते हुए पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण करते थे। उनके लिये कहीं भी रोक-टोक न थी। वे जहाँ चाहते, चले जाते। देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर और नागोंके लोकोंमें तथा मुनि, चारण, विद्याधर,

ब्राह्मण और गौओंके स्थानोंमें वे स्वच्छन्द विचरते थे। वे सब-के-सब जीवन्मुक्त महात्मा थे। इन नौ योगीश्वरोंका विदेहराज महात्मा निमिसे एक बार संवाद हुआ था, जिसमें इन महात्मा योगीश्वरोंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले धर्मों और साधनोंका वर्णन किया था। उस समय महाराज निमि बड़े-बड़े ऋषियोंद्वारा एक महान् यज्ञका सम्पादन करवा रहे थे। स्वच्छन्द भावसे विचरण करते हुए ये नौ योगीश्वर भी वहाँ पहुँच गये। महाराज निमिने इनका बहुत आदर-सत्कार किया और अधिकारी जानकर भगवच्चर्चा की।

महाराज निमिके पूछनेपर उन योगीश्वरमें **प्रथम योगीश्वर कवि**ने उन्हें भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करानेवाले भागवतधर्मोंका उपदेश दिया। तत्पश्चात् राजा निमिके पूछनेपर नौ योगीश्वरोंमें **दूसरे योगीश्वर हरिजी**ने भगवद्भक्तोंके धर्म, लक्षण और स्वभावका वर्णन किया। इसके बाद पुनः राजाके पूछनेपर **तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्षजी**ने माया और उसके स्वरूपका वर्णन किया और **चौथे योगीश्वर प्रबुद्धजी**ने मायाको पार करनेका उपाय बताया। इसके बाद **पाँचवें योगीश्वर पिप्पलायनजीने** 'नारायण' नामवाले परब्रह्म परमात्माका वर्णन किया। तत्पश्चात् राजा निमिने प्रार्थना की कि हे योगीश्वरो! अब आपलोग मुझे कर्मयोगका उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा शुद्ध होकर मनुष्य शीघ्रतिशीघ्र अपने कर्मबन्धनको काट डालता है और परम नैष्कर्म्य अर्थात् कर्मबन्धनकी आत्यन्तिक निवृत्तिका लाभ करता है—जन्म-मृत्युके चक्रसे सर्वदाके लिये छुटकारा पा जाता है।

इस प्रश्नका उत्तर **छठे योगीश्वर श्रीआविर्होत्रजी**ने दिया। इसके बाद राजाके पूछनेपर **सातवें योगीश्वर श्रीद्रुमिलजी**ने भगवान्‌के तबतक हुए और आगे होनेवाले अवतारोंका वर्णन किया। इतना सब भगवच्चरित्र सुननेके बाद राजा निमिने पूछा—हे योगीश्वरो! कृपा करके यह बतलाइये कि जिनकी कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं, लौकिक-पारलौकिक भोगोंकी लालसा मिटी नहीं है और मन एवं इन्द्रियाँ भी वशमें नहीं हैं तथा प्रायः जो भगवान्‌का भजन नहीं करते—ऐसे लोगोंकी क्या गति होती है? इसका उत्तर देते हुए **आठवें योगीश्वर श्रीचमसजी**ने बताया कि हे राजन्! जो लोग अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णसे पराङ्मुख हैं, उनकी ओर न चलकर उनसे उलटे चल रहे हैं, वे अत्यन्त परिश्रम करके गृह, पुत्र, मित्र और धन-सम्पत्ति इकट्ठी करते हैं; परंतु उन्हें अन्तमें सब कुछ छोड़ देना पड़ता है और न चाहनेपर भी विवश होकर घोर नरकमें जाना पड़ता है। भगवान्‌का भजन न करनेवाले विषयी पुरुषोंकी यही गति होती है। अब राजा निमिने पूछा—हे योगीश्वरो! भगवान् किस समय किस रंग और किस आकारको स्वीकार करते हैं और मनुष्य किन नामों और विधियोंसे उनकी उपासना करते हैं?

इसका उत्तर देते हुए **नवें योगीश्वर श्रीकरभाजनजी**ने कहा—राजन! सत्ययुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका रंग श्वेत होता है। उनके चार भुजाएँ और सिरपर जटा होती है तथा वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं। वे काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं। सत्ययुगमें लोग तपस्याद्वारा सबके प्रकाशक परमात्माका ध्यान करते हैं। त्रेतायुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका रंग लाल होता है। उनके चार भुजाएँ होती हैं और वे कटिभागमें तीन मेखला धारण करते हैं। उनके केश सुनहले होते हैं और वे स्रुक्, स्रुवा आदि यज्ञपात्रोंको धारण किया करते हैं। इस युगके मनुष्य अपने धर्ममें बड़ी निष्ठा रखनेवाले और वेदोंके अध्ययन-अध्यापनमें प्रवीण होते हैं। वे लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदरूप वेदत्रयीके द्वारा सर्वदेवस्वरूप देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हैं। द्वापरयुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका रंग साँवला होता है। वे पीताम्बर तथा शंख, चक्र, गदा आदि अपने आयुध धारण करते हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, भृगुलता, कौस्तुभमणि आदि लक्षणोंसे वे पहचाने जाते हैं। कलियुगमें काले

रंगकी कान्तिसे, अंगों और उपांगों, अस्त्रों एवं पार्षदोंसे युक्त श्रीकृष्णकी श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञोंके द्वारा आराधना करते हैं; जिनमें नाम, गुण, लीला आदिके कीर्तनकी प्रधानता रहती है। (भागवत ११।५।२१—३२)

इस प्रकार राजा निमि तथा अन्य ऋत्विजों-आचार्योंको भागवत-धर्मका उपदेश देकर वे नवों योगीश्वर अन्तर्धान हो गये।

श्रीश्रुतदेवजी

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया॥

(श्रीमद्भा० १०।८६।५२)

देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो धीरे-धीरे बहुत दिनोंमें पवित्र करते हैं। परंतु महापुरुष अपनी दृष्टिसे ही सबको पवित्र कर देते हैं।

मिथिलामें वहाँके नरेश महाराज बहुलाश्व भगवान्‌के भक्त, अहंकारहीन तथा प्रजावत्सल थे। उसी नगरमें श्रुतदेव नामके भगवान्‌के परम भक्त निर्धन ब्राह्मण भी रहते थे। श्रुतदेव विद्वान् थे, बुद्धिमान् थे और गृहस्थ थे। किंतु वे अत्यन्त शान्त स्वभावके थे, विषयोंमें उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी। भगवान्‌की भक्तिसे ही वे सन्तुष्ट थे। बिना माँगे जो कुछ मिल जाता, उसीसे वे जीवन-निर्वाह करते थे। एक दिनका घरका काम चल जाय, इससे अधिक वस्तु बिना माँगे मिलनेपर भी वे लेते नहीं थे। वे कलके लिये संग्रह नहीं करते थे। सन्ध्या-तर्पण, देवाराधन आदि शास्त्रसम्मत अपना कर्तव्य विधिपूर्वक करते थे और भगवान्‌की पूजा तथा ध्यानमें लगे रहते थे। महाराज बहुलाश्व भी सदा भगवान्‌के स्मरण-पूजनमें ही लगे रहते थे। भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये महाराज यज्ञ, दान एवं गौ, ब्राह्मण तथा अतिथिका पूजन आदि बड़ी श्रद्धासे करते थे।

जब श्रीसत्यभामाजीके पिता सत्राजित्‌को शतधन्वाने रातमें छिपकर भवनमें प्रवेश करके मार दिया, उस समय श्रीराम-कृष्ण द्वारकामें नहीं थे। समाचार पाकर वे हस्तिनापुरसे आये। शतधन्वा भयके मारे घोड़ेपर बैठकर भागा। बलरामजीके साथ श्रीकृष्णचन्द्रने उसका रथमें बैठकर पीछा किया। मिथिला-नगरके बाहरी उपवनमें पहुँचकर शतधन्वा मारा गया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र तो द्वारका लौट गये, किंतु बलरामजी मिथिलामें महाराज बहुलाश्वके समीप चले आये। महाराजकी भक्ति, सेवा तथा प्रेमसे प्रसन्न होकर, द्वारकासे बार-बार सन्देश आते रहनेपर भी, श्रीबलरामजी मिथिलामें लगभग तीन वर्ष रह गये। फिर मिथिलानरेशको सन्तुष्ट करके वे द्वारका गये।

जबसे महाराज बहुलाश्व और विप्र श्रुतदेवने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण मिथिलाके बाहरी उद्यानतक आकर लौट गये, तबसे उनका हृदय व्याकुल रहने लगा। दोनोंको ही लगा कि अवश्य हमारी भक्तिमें, हमारे प्रेममें ही कमी है। भगवान् तो दयासागर हैं। वे तो अकारण दया करते हैं। अवश्य हममें कोई बड़ी त्रुटि है, जिससे इतने समीप आकर भी भगवान्‌ने हमें दर्शन नहीं दिये। दोनों और भी प्रेमसे भगवान्‌की पूजा तथा उनके नाम-जपमें लग गये। सच्चे प्रेमका यही लक्षण है कि निराश होनेसे प्रेमी भक्तका भजन छूटता नहीं। उसे अपनेमें ही कुछ त्रुटि जान पड़ती है। इससे उसका भजन और बढ़ जाता है।

ब्राह्मण श्रुतदेव तथा राजा बहुलाश्वपर कृपा करके उन्हें दर्शन देनेके लिये श्रीद्वारकानाथ रथपर बैठकर मिथिला पधारे। भगवान्‌के साथ देवर्षि नारद, वामदेव, अत्रि, व्यासजी, परशुरामजी, असित, आरुणि,

शुकदेवजी, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन आदि ऋषि-मुनि भी द्वारकासे मिथिला आये। भगवान्के आनेका समाचार पाकर सभी नगरवासी नाना प्रकारके उपहार लेकर नगरसे बाहर आये और उन्होंने भूमिपर लेटकर भगवान्को प्रणाम किया। राजा बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेव दोनोंको ऐसा लगा कि भगवान् मुझपर कृपा करने पधारे हैं। अतएव दोनोंने एक साथ भगवान्को प्रणाम किया और फिर एक साथ हाथ जोड़कर अपने-अपने घर पधारनेकी प्रार्थना की। सर्वज्ञ भगवान्ने दोनोंका भाव समझकर ऋषि-मुनियोंसहित दो रूप धारण कर लिये। श्रुतदेव और बहुलाश्व दोनोंके साथ वे उनके-उनके घर गये। प्रत्येकने यही समझा कि भगवान् मेरे ही घर पधारे हैं।

विदेहराज जनक बहुलाश्वने अपने राजभवनमें भगवान्को तथा ऋषियोंको स्वर्णके सिंहासनोंपर बैठाकर उनके चरण धोये। विधिपूर्वक पूजा की। भगवान्के चरणोंको अपनी गोदमें लेकर धीरे-धीरे दबाते हुए उन्होंने भगवान्की स्तुति की और प्रार्थना की—प्रभो! कुछ दिन यहाँ निवास करके अपनी सेवासे मुझे कृतार्थ होनेका अवसर दें। भगवान्ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

दूसरी ओर श्रुतदेव अपनी कुटियापर भगवान्को लेकर पहुँचे। वे भगवान्की कृपाका अनुभव करके प्रेममें इतने तन्मय हो गये कि सब सुधि-बुधि भूल गये। अपना दुपट्टा फहराते-उड़ाते हुए भगवान्के मंगलमय नामोंका कीर्तन करके नाचने लगे। जब कुछ देरमें सावधान हुए, तब कुशकी चटाई, पीढ़ा, वेदिका आदिपर उन्होंने सबको आसन दिये। कंगाल ब्राह्मणकी झोपड़ीमें सबके बैठनेके लिये चटाई भी पूरी कहाँसे आती? श्रुतदेवने भगवान्के चरण धोये और वह चरणोदक मस्तकपर चढ़ाया। पूजा किस क्रमसे करनी चाहिये, वे इस बातको भूल ही गये। भगवान्को कन्द, मूल तथा फल और खस पड़ा हुआ शीतल जल उन्होंने निवेदित किया। तुलसीके नीचेकी सुगन्धित मिट्टी ही उनके लिये चन्दन था, दूर्वादल, कुश, तुलसीदल और कमलके फूल—बस, इतनी सामग्री थी उनके पास पूजा करनेकी। इन्हींसे उन्होंने भगवान्की पूजा की। श्रुतदेव भक्तिके आवेशमें आत्मविस्मृत हो गये थे। भगवान् चुपचाप भक्तके इस भावको देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

श्रीश्रुतदेवजीके सम्बन्धमें श्रीप्रियादासजीने जो कवित्त लिखा है, वह इस प्रकार है—

जिनहीं के हरि नित उर बसैं तिनहीं की पद-रेनु चैन दैन आभरन कीजियै।
योगेश्वर आदि रस स्वाद में प्रवीन महा विप्र श्रुतिदेव ताकी बात कहि दीजियै॥
आये हरि घर देखि गयो प्रेम भरि हियो ऊँचो कर करि पट फेरि मति भीजियै।
जिते साधु सङ्ग तिन्हैं विनय न प्रसंग कियो कियो उपदेश मोसों बाढ़ पांव लीजियै॥ ७३॥

जिन भक्तोंके हृदयमें सदा श्रीहरि वास करते हैं, उनके चरणोंकी धूलि अखण्ड आनन्द देनेवाली है, उसीको भूषण मानकर मस्तकपर धारण कीजिये। नौ योगीश्वर आदि सभी भक्त प्रेम-रसके आस्वादनमें परम चतुर हैं। उनमेंसे श्रीश्रुतदेव ब्राह्मणकी बात कहता हूँ। भगवान्को घरमें आया देखकर इनका हृदय प्रेमसे भर गया। दोनों हाथोंको ऊँचे उठाकर वस्त्र फिरा-फिराकर वे नाचने लगे। प्रेममें ऐसे मगन हो गये कि श्रीकृष्णके समेत आये हुए साधु-सन्तोंका स्वागत-सत्कार विनय-प्रणाम आदि भी न कर सके। तब भगवान्ने इन्हें सावधान करके उपदेश दिया कि ये सन्त मुझसे भी बढ़कर श्रेष्ठ हैं, इनके चरणोंका अर्चन-वन्दन करो॥ ७३॥

श्रुतदेव जब पूजा करके, स्तुति करके कुछ सावधान हुए, तब भगवान्ने उन्हें संतोंका माहात्म्य समझाया और ऋषियोंका पूजन करनेको कहा। अबतक श्रुतदेवने जान-बूझकर ऋषियोंका पूजन न किया हो, ऐसी बात नहीं थी। वे तो अपनेको भूल गये थे। अब उन्होंने उसी श्रद्धा, उसी सम्मानसे प्रत्येक ऋषिका पूजन

किया, जिस प्रकार भगवान्‌का पूजन किया था। सबको उन्होंने भगवान्‌का स्वरूप ही मानकर उनकी सेवा की। श्रुतदेवकी जिस झोपड़ीमें बैठनेके लिये पूरे पीढ़े और चटाइयाँ भी नहीं थीं, उसी झोपड़ीमें ऋषियोंके साथ समस्त ऐश्वर्योंके स्वामी द्वारकानाथ प्रभु उतने ही दिनोंतक रहे, जितने दिन वे जनकके राजमहलमें रहे। एक कंगाल और एक राजाधिराज—दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके लिये समान हैं—यह उन्होंने वहाँ प्रत्यक्ष दिखा दिया। कुछ दिन वहाँ रहकर राजा बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेवसे विदा लेकर वे द्वारका लौट आये। बहुलाश्व तथा श्रुतदेव उन आनन्दकन्द मुकुन्दका चिन्तन करते हुए अन्तमें उनके धामको प्राप्त हुए।

श्रीअंगजी

महाभागवत श्रीध्रुवजीके वंशमें राजर्षि अंगका प्रादुर्भाव हुआ था। पिता उल्मुक और माता पुष्करिणीने बड़ी तपस्याके बाद अंग-जैसा पुत्र पाया था। शील-स्वभाव, साधुता, ब्रह्मण्यता आदि सद्‌गुण अंगमें बाल्यावस्थासे ही विराजमान थे। एक बार राजर्षि अंगने अश्वमेध-महायज्ञका अनुष्ठान किया। उसमें वेद-वादी ब्राह्मणोंके आवाहन करनेपर भी देवता लोग अपना भाग लेने नहीं आये। तब ऋत्विजोंने विस्मित होकर यजमान अंगसे कहा—राजन्! हम आहुतियोंके रूपमें आपका जो घृत आदि पदार्थ हवन करते हैं, उसे देवता लोग स्वीकार नहीं करते हैं। हम जानते हैं आपकी हवन-सामग्री दूषित नहीं है, आपने उसे बड़ी श्रद्धासे एकत्रित किया है तथा वेदमन्त्र भी किसी प्रकार बलहीन नहीं हैं; क्योंकि उनका प्रयोग करनेवाले ऋत्विजगण याजकोचित सभी नियमोंका पूर्णतया पालन करते हैं। देवताओंका किंचित् तिरस्कार भी नहीं हुआ है, फिर भी कर्माध्यक्ष देवता लोग क्यों अपना भाग नहीं ले रहे हैं? यह सुनकर महाराज अंग उदास हो गये और उन्होंने इसमें अपने कर्मको ही कारण मानकर सदस्योंसे अपने ज्ञाताज्ञात अपराधके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। इस पर सुधी सदस्योंने कहा—राजन्! इस जन्ममें तो आपसे कोई अपराध नहीं हुआ, हाँ पूर्वजन्ममें अवश्य आपसे कुछ अपराध बन गया है, जिससे कि आप अबतक पुत्रहीन हैं। परंतु हम लोगोंका ऐसा विश्वास है कि यदि आप पुत्रकी कामनासे यज्ञ करेंगे तो यज्ञेश्वरभगवान् अवश्य आपको पुत्र प्रदान करेंगे। राजा अंगने पुत्रेष्टि यज्ञ किया।

ऋत्विजोंके सत्प्रयत्नसे यज्ञ पूर्ण हुआ। आहुति डालते ही अग्निकुण्डसे एक दिव्य पुरुष स्वर्णपात्रमें सिद्ध खीर लिये प्रकट हुए। राजाने उस चरुको अंजलिमें लेकर स्वयं सूँघकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नीको दे दिया। रानीने वह पुत्रप्रदायिनी खीर खाकर गर्भ धारण किया और यथासमय बेन नामक एक पुत्रको जन्म दिया। राजा अंगकी पत्नी मृत्युकी कन्या थीं, नाम था सुनीथा। उससे जो बालक पैदा हुआ, वह अपने नाना मृत्युके गुण-स्वभाव-लक्षणोंवाला हुआ। क्या पशु, क्या पक्षी, क्या मनुष्य, वह दुष्ट बालक हँसते-हँसते सहज ही उनके प्राण ले लेता। प्रजा उससे ऐसी संत्रस्त हो गयी थी कि वह जिधर ही जाता लोग चिल्ला पड़ते—बेन आया, बेन आया। बेनकी ऐसी दुष्ट प्रकृति देखकर महाराज अंगने उसे बहुत प्रकारसे समझाकर सुमार्गपर लानेकी चेष्टा की, परंतु सफल नहीं हुए। इससे उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। वे मन-ही-मन सोचने लगे—जिन गृहस्थोंके पुत्र नहीं है, उन्होंने अवश्य ही पूर्वजन्ममें श्रीहरिकी आराधना की होगी, इसीसे उन्हें कपूतकी करतूतोंसे होनेवाले असह्य क्लेश नहीं सहने पड़ते हैं। जिससे सब प्रकारके अनर्थोंकी प्राप्ति होती है—ऐसी नाममात्रकी संतानके लिये कौन समझदार ललचायेगा? वह तो आत्माके लिये एक प्रकारका मोहमय बन्धन ही है।

पुनः श्रीअंगजीके मनमें यह विचार आया कि—मैं तो सपूतकी अपेक्षा कपूतको ही अच्छा समझता हूँ; क्योंकि सपूतको छोड़नेमें बड़ा क्लेश होता है परंतु कपूत तो घरको नरक बना डालता है, अतः उससे सहज ही छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार सोचते-सोचते राजा अंगका चित्त संसारसे विरक्त हो गया।

वे रात्रिमें घरसे निकल गये। प्रजाजन, पुरोहित, मन्त्री और सुहृद् वर्गने खोजनेका बहुत प्रयत्न किया, परंतु वे उन्हें वैसे ही नहीं पा सके, जैसे कुयोगी पुरुष सर्वगुहाशायी भगवान्‌को नहीं खोज पाते हैं।

श्रीरामरसिकावलीमें महाराज रघुराजसिंहजी आपके विषयमें लिखते हैं—

कानन जाइ भज्यो यदुराई। माया और डीठि नहिं आई॥
वन में करहिं साधु की सेवा। साधु छोड़ मानहिं नहिं देवा॥
कोउ एक साधु कह्यौ नृप पाहीं। कुटी देहु मेरे घर नाहीं॥
कुटी सहित सर्वस दै राखे। पुनि ताकी सेवा अभिलाखे॥
साधु प्रसन्न कह्यौ अस बानी। मिलिहिं तोहिं नृप सारङ्ग पानी॥
भूपति कह्यौ न अस मोहिं आसा। तोहि तजि चहौं न रमानिवासा॥
आये नृप कहँ लेन विमाना। साधु त्यागि सो किय न पयाना॥
हरिपार्षद तब सन्त चढ़ाई। लैगे नृपहि विकुण्ठ लिवाई॥
वैकुण्ठहुँ महँ अङ्ग नृप, साधु चरण-रति कीन।
विभवभोग पार्षद सरिस, जदपि कृष्ण बहु दीन॥

श्रीमुचुकुन्दजी

सूर्यवंशमें इक्ष्वाकुकुल बड़ा ही प्रसिद्ध है, जिसमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामरूपमें अवतीर्ण हुए। इसी वंशमें महाराज मान्धाता-जैसे महान् प्रतापशाली राजा हुए। महाराज मुचुकुन्द उन्हीं मान्धाताके पुत्र थे। ये सम्पूर्ण पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे। बल-पराक्रममें ये इतने बढ़े-चढ़े थे कि पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या, देवराज इन्द्र भी इनकी सहायताके लिये लालायित रहते थे।

एक बार असुरोंने देवताओंको पराभूत कर दिया, देवता बड़े दुखी हुए। उनके पास कोई योग्य सेनापति नहीं था, अतः उन्होंने महाराज मुचुकुन्दसे सहायताकी प्रार्थना की। महाराजने देवराजकी प्रार्थना स्वीकार की और वे बहुत समयतक देवताओंकी रक्षाके लिये असुरोंसे लड़ते रहे। बहुत कालके पश्चात् देवताओंको शिवजीके पुत्र स्वामिकार्तिकेयजी योग्य सेनापति मिल गये। तब देवराज इन्द्रने महाराज मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हमारी बड़ी सेवा की, अपने स्त्री-पुत्रोंको छोड़कर आप हमारी रक्षामें लग गये। यहाँ स्वर्गमें जिसे एक वर्ष कहते हैं, पृथ्वीमें उतने ही समयको तीन सौ साठ वर्ष कहते हैं। आप हजारों वर्षोंसे यहाँ हैं। अतः अब आपकी राजधानीका कहीं पता भी नहीं है; आपके परिवारवाले सब कालके गालमें चले गये। हम आपपर बड़े प्रसन्न हैं। मोक्षको छोड़कर आप जो कुछ भी वरदान माँगना चाहें, माँग लें; क्योंकि मोक्ष देना हमारी शक्तिके बाहरकी बात है।'

महाराजको मानवीय बुद्धिने दबा लिया। स्वर्गमें वे सोये नहीं थे। लड़ते-लड़ते बहुत थक भी गये थे। अतः उन्होंने कहा—'देवराज! मैं यही वरदान माँगता हूँ कि मैं भरपूर सो लूँ, कोई भी मेरी निद्रामें विघ्न न डाले। जो मेरी निद्रा भंग करे, वह तुरंत भस्म हो जाय।'

देवराजने कहा—'ऐसा ही होगा, आप पृथ्वीपर जाकर शयन कीजिये। जो आपको जगायेगा, वह तुरंत भस्म हो जायगा।' ऐसा वरदान पाकर महाराज मुचुकुन्द भारतवर्षमें आकर एक गुफामें सो गये। सोते-सोते उन्हें कई युग बीत गये। द्वापर आ गया, भगवान्‌ने यदुवंशमें अवतार लिया। उसी समय कालयवनने मथुराको घेर लिया। उसे अपने-आप ही मरवानेकी नीयतसे और महाराज मुचुकुन्दपर कृपा करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीकृष्ण कालयवनके सामनेसे बचकर भागे। कालयवनको अपने बलका बड़ा घमण्ड था, वह भी भगवान्‌को ललकारता

हुआ उनके पीछे पैदल ही भागा। भागते-भागते भगवान् उस गुफामें घुसकर छिप गये, जहाँ महाराज मुचुकुन्द सो रहे थे। उन्हें सोते देखकर भगवान्ने अपना पीताम्बर धीरेसे उन्हें ओढ़ा दिया और आप छिपकर तमाशा देखने लगे; क्योंकि उन्हें छिपकर तमाशा देखनेमें बड़ा आनन्द आता है। द्रष्टा ही जो ठहरे।

कालयवन बलके अभिमानमें भरा हुआ गुफामें आया और महाराज मुचुकुन्दको ही भगवान् समझकर जोरोंसे दुपट्टा खींचकर जगाने लगा। महाराज जल्दीसे उठे। सामने कालयवन खड़ा था। दृष्टि पड़ते ही वहीं जलकर भस्म हो गया। अब तो महाराज इधर-उधर देखने लगे। भगवान्के तेजसे सम्पूर्ण गुफा जगमगा रही थी। उन्होंने नवजलधरश्याम पीतकौशेयवासा वनमालीको सामने मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखा। देखते ही वे अवाक् रह गये। अपना परिचय दिया। प्रभुका परिचय पूछा। गर्गाचार्यके वचन स्मरण हो आये। ये साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, यह समझकर वे भगवान्के चरणोंपर लोट-पोट हो गये।

भगवान्ने उन्हें उठाया, छातीसे चिपटाया, भाँति-भाँतिके वरोंका प्रलोभन दिया, किंतु वे संसारी पदार्थोंकी निःसारता समझ चुके थे। अतः उन्होंने कोई भी सांसारिक वर नहीं माँगा। उन्होंने यही कहा—'प्रभो! मुझे देना हो तो अपनी भक्ति दीजिये, जिससे मैं सच्ची लगनके साथ भलीभाँति आपकी उपासना कर सकूँ; मैं श्रीचरणोंकी भलीभाँति भक्ति कर सकूँ, ऐसा वरदान दीजिये।' प्रभु तो मुक्तिदाता हैं, मुकुन्द हैं। उनके दर्शनोंके बाद फिर जन्म-मरण कहाँ! किंतु महाराजने अभीतक भलीभाँति उपासना नहीं की थी और वे मुक्तिसे भी बढ़कर उपासनाको चाहते थे। अतः भगवान्ने कहा—'अब तुम ब्राह्मण होओगे, सर्व जीवोंमें समान दृष्टिवाले होओगे, तब मेरी जी खोलकर अनन्य उपासना करना। तुम मेरे तो बन ही गये। तुम्हारी उपासना करनेकी जो अभिलाषा है, उसके लिये तुम्हें विशुद्ध ब्राह्मणवंशमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ तुम उपासना-रसका भलीभाँति आस्वादन कर सकोगे।' वरदान देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और महाराज मुचुकुन्द ब्राह्मण-जन्ममें उपासना करके अन्तमें प्रभुके साथ अनन्य भावसे मिल गये।

श्रीप्रियव्रतजी

स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रतजी जन्मसे ही भगवान्के परम भक्त थे। उन्हें भगवान्के गुण-गान, उन उत्तमश्लोकके मंगलचरित-श्रवणको छोड़कर कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। देवर्षि नारदकी कृपासे उन परमभागवतने परमार्थतत्त्वको जान लिया था। वे देवर्षिके समीप गन्धमादनपर्वतपर रहकर निरन्तर भगवान्का चिन्तन करते और नारदजीसे भगवान्की परम पावन लीलाका श्रवण करते। जब मनुजी ब्रह्मसत्रकी दीक्षा लेने लगे, तब उन्होंने प्रियव्रतको राज्य करनेके लिये बुलाया; किंतु जिनका चित्त भगवान् वासुदेवमें ही सब ओरसे लगा था, उन प्रियव्रतजीको राज्यके सुख-भोग अच्छे न लगे। उन्होंने संसारके विषयोंको विषके समान समझ लिया था। अतएव राज्य-संचालन उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

प्रियव्रतने जब राज्य करना अस्वीकार कर दिया, तब स्वयं भगवान् ब्रह्मा उन्हें समझानेके लिये ब्रह्मलोकसे वहाँ पधारे। आकाशसे हंसवाहन सृष्टिकर्ताको आते देख नारदजी और प्रियव्रत खड़े हो गये। उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके उनका पूजन किया। ब्रह्माजीने कहा—'बेटा प्रियव्रत! अप्रमेय, सर्वेश्वर प्रभुने जो कर्तव्य तुम्हें दिया है, उसमें तुम्हें दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये। मैं, शंकरजी, महर्षिगण विवश होकर उन प्रभुके आदेशका पालन करते हैं। कोई भी देहधारी तपस्या, विद्या, योगबल, अर्थ या धर्मके द्वारा स्वयं या दूसरोंकी सहायतासे भी उन सर्वसमर्थके किये विधानको अन्यथा नहीं कर सकता। उन प्रभुको प्रसन्न करना ही तुम्हारा भी उद्देश्य है, अतः तुम्हें उनके विधानसे प्राप्त कर्तव्यका पालन करना चाहिये। देखो, जो मुक्त पुरुष हैं, उन्हें भी अभिमानशून्य होकर प्रारब्ध शेष रहनेतक देह धारण करना ही पड़ता है। वे

भी प्रारब्ध-भोग भोगते ही हैं; किंतु जैसे स्वप्नमें अनुभव किये भोग जाग जानेवालेको बाधित नहीं करते, वैसे ही वे प्रारब्धके भोग मुक्त पुरुषोंको दूसरा शरीर नहीं दे पाते। रही घरमें रहने और वनमें तप करनेकी बात, सो जो प्रमत्त है, उसके लिये वनमें भी पतनका भय है; क्योंकि उसके चित्तमें काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर—ये छः विकार लगे हैं। किंतु जो सावधान है, जितेन्द्रिय है, आत्मचिन्तनमें लगा है, भगवदाश्रयी है, उसकी गृहस्थाश्रम क्या हानि कर सकता है, जो कामादि छः रिपुओंको जीतना चाहता हो, उसे पहले गृहस्थाश्रममें रहकर ही इनको जीत लेना चाहिये; क्योंकि गृहस्थाश्रमके भोगोंको भोगता हुआ किलेमें सुरक्षित राजाके समान शत्रुरूप इन विकारोंको वह सरलतासे जीत सकता है। तुम तो कमलनाभ नारायणके चरणकमलरूपी गढ़का आश्रय लेकर सभी विकारोंको जीत चुके हो; अतः अब भगवान्‌के दिये हुए भोगोंको भोगो और आसक्तिरहित होकर प्रजाका पालन करो।'

प्रियव्रतने अपनेसे श्रेष्ठ ब्रह्माजीकी आज्ञा स्वीकार की। लोकस्रष्टा उनसे सत्कृत होकर अपने लोकको चले गये। प्रियव्रत नगरमें आये। ब्रह्माजीके इस उपदेशमें आजके साधकोंके लिये बहुत ही महत्त्वकी बातें बतायी गयी हैं। किसी भी उत्तेजना या दुःखके कारण घरका त्याग करना कल्याणकारी नहीं है। घर छोड़कर बाहर जानेसे अधिक भजन होगा—यह भी मनका एक भ्रम ही है। जबतक मनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर हैं, तबतक घर छोड़ देनेपर पतनका भय ही अधिक है। इन दोषोंपर घर रहकर जितनी सरलतासे विजय पायी जा सकती है, उतनी बाहर नहीं। भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेकर, भगवन्नामका जप करते हुए, कर्तव्यका पालन करते हुए घर रहकर ही इन दोषोंको जीतना चाहिये। इन शत्रुओंसे बचे रहनेके लिये घर सुरक्षित किला है। जो घरमें इन दोषोंसे घबराता है, उसे जानना चाहिये कि बाहर उसकी कठिनाई और बढ़ जायगी, दोषोंको बढ़नेके लिये बाहर अधिक अवसर मिलेगा।

ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर प्रियव्रत राजधानीमें आये। उन्होंने राज्य और गृहस्थाश्रम स्वीकार किया। प्रजापति विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मतीसे उन्होंने विवाह किया। उनके दस पुत्र और एक कन्या हुई। प्रियव्रत सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामी थे। उन्हें यह अच्छा न लगा कि आधी पृथ्वीपर एक समय दिन और आधीपर रात्रि रहे। 'मैं रात्रिको भी दिन बना दूँगा।' यह सोचकर अपने ज्योतिर्मय दिव्य रथपर बैठकर वे सूर्य-रथकी गतिके समान ही वेगसे रात्रिवाले भागमें यात्रा करने लगे। इस प्रकार सात दिन-रात्रि वे घूमते रहे और उतने काल उन्होंने पूरे भूमण्डलपर दिनके समान प्रकाश बनाये रखा। ब्रह्माजीने इस कार्यसे उन्हें रोका। उनके रथके पहियोंसे ही सात समुद्र बन गये। उन समुद्रोंसे घिरे एक-एक द्वीपका अधिपति उन्होंने अपने एक-एक पुत्रको बनाया। आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र—ये उनके सात पुत्र क्रमशः जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप तथा पुष्करद्वीपके स्वामी हुए। कवि, महावीर और सवन—ये तीन पुत्र आजन्म ब्रह्मचारी, आत्मवेत्ता परमहंस हो गये।

इतना बड़ा अखण्ड साम्राज्य, पूरे भूमण्डलका ऐश्वर्य, पुत्र-पुत्री, स्त्री आदि समस्त सुख और स्वर्गादि लोकोंके लोकपाल भी उनके मित्र ही थे; किंतु भगवान्‌के परम भक्त प्रियव्रतको इन सबका तनिक भी मोह नहीं था। उन्हें लगता था कि व्यर्थ ही मैंने यह प्रपंच बढ़ाया। वे अपनेको गृहासक्त तथा पत्नीमें कामासक्त मानकर बराबर धिक्कारते थे। पुत्रोंको राज्य देकर वे सम्पूर्ण ऐश्वर्यका त्याग करके फिर गन्धमादनपर नारदजीके पास चले गये। भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करना उन्होंने अपना एकमात्र व्रत बना लिया। कर्मके द्वारा, पुण्यके द्वारा और योगके द्वारा मिलनेवाला पृथ्वी और स्वर्गादि लोकोंका समस्त भोग उन्हें प्राप्त था; किंतु उन महाभागने उसे नरकके भोगके समान मानकर त्याग दिया। परमपुरुष भगवान्‌के अनन्त सुधा-सिन्धुमें

जिनका चित्त निमग्न हो गया है, वे धन्यभाग्य भगवद्भक्त ही ऐसा त्याग कर सकते हैं!

श्रीपृथुजी

श्रीपृथुजीका चरित्र छप्पय ५ में आया है।

महाराज परीक्षित्

सुभद्राकुमार अभिमन्युकी पत्नी महाराज विराट्की पुत्री उत्तरा गर्भवती थीं। उनके उदरमें कौरव एवं पाण्डवोंका एकमात्र वंशधर था। अश्वत्थामाने उस गर्भस्थ बालकका विनाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। भयविह्वल उत्तरा भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गयी। भगवान्ने उसे अभयदान दिया और बालककी रक्षाके लिये वे सूक्ष्मरूपसे उत्तराके गर्भमें स्वयं पहुँच गये। गर्भस्थ शिशुने देखा कि एक प्रचण्ड तेज चारों ओरसे समुद्रकी भाँति उमड़ता हुआ उसे भस्म करने आ रहा है। इसी समय बालकने अँगूठेके बराबर ज्योतिर्मय भगवान्को अपने पास देखा। भगवान् अपने कमलनेत्रोंसे बालकको स्नेहपूर्वक देख रहे थे। उनके सुन्दर श्याम-वर्णपर पीताम्बरकी अद्भुत शोभा थी। मुकुट, कुण्डल, अंगद, किंकिणी प्रभृति मणिमय आभरण उन्होंने धारण कर रखे थे। उनके चार भुजाएँ थीं और उनमें शंख, चक्र, गदा, पद्म थे। अपनी गदाको उल्काके समान चारों ओर शीघ्रतासे घुमाकर भगवान् उस उमड़ते आते अस्त्र-तेजको बराबर नष्ट करते जा रहे थे। बालक दस महीनेतक भगवान्को देखता रहा। वह सोचता ही रहा—'ये कौन हैं?' जन्मका समय आनेपर भगवान् वहाँसे अदृश्य हो गये। बालक मृत-सा उत्पन्न हुआ; क्योंकि जन्मके समय उसपर ब्रह्मास्त्रका प्रभाव पड़ गया था। तुरंत श्रीकृष्णचन्द्र प्रसूतिकागृहमें आये और उन्होंने उस शिशुको जीवित कर दिया। यही बालक परीक्षित्के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

जब परीक्षित् बड़े हुए, पाण्डवोंने इन्हें राज्य सौंप दिया और स्वयं हिमालयपर चले गये। प्रतापी एवं धर्मात्मा परीक्षित्ने राज्यमें पूरी सुव्यवस्था स्थापित की। एक दिन जब ये दिग्विजय करने निकले थे, इन्होंने एक उज्ज्वल साँड़ देखा, जिसके तीन पैर टूट गये थे। केवल एक ही पैर शेष था। पास ही एक गाय रोती हुई उदास खड़ी थी। एक काले रंगका शूद्र राजाओंकी भाँति मुकुट पहने, हाथमें डण्डा लिये गाय और बैलको पीट रहा था। यह जाननेपर कि गौ पृथ्वीदेवी हैं और वृषभ साक्षात् धर्म है तथा यह कलियुग शूद्र बनकर उन्हें ताड़ना दे रहा है—परीक्षित्ने उस शूद्रको मारनेके लिये तलवार खींच ली। शूद्रने अपना मुकुट उतार दिया और वह परीक्षित्के पैरोंपर गिर पड़ा। महाराजने कहा—'कलि! तुम मेरे राज्यमें मत रहो। तुम जहाँ रहते हो, वहाँ असत्य, दम्भ, छल-कपट आदि अधर्म रहते हैं।' कलिने प्रार्थना की—'आप तो चक्रवर्ती सम्राट् हैं; अतः मैं कहाँ रहूँ, यह आप ही मुझे बता दें। मैं कभी आपकी आज्ञा नहीं तोड़ूँगा।' परीक्षित्ने कलिको रहनेके लिये जुआ, शराब, स्त्री, हिंसारूप स्थान बताये। ये कलिके निवास हैं। इनसे प्रत्येक कल्याणकामीको बचना चाहिये। कलिने पुनः कहा—राजन्! आपने मुझे जो स्थान दिये, वे सब निकृष्ट कोटिके हैं, अतः मुझे कोई अच्छा स्थान भी दीजिये। इसपर राजाने उसे सुवर्णमें रहनेके लिये कहा।

एक दिन आखेट करते हुए परीक्षित् वनमें भटक गये। भूख और प्याससे व्याकुल वे एक ऋषिके आश्रममें पहुँचे। ऋषि उस समय ध्यानस्थ थे। राजाने उनसे जल माँगा, पुकारा; पर ऋषिको कुछ पता नहीं लगा। इसी समय कलिने राजापर अपना प्रभाव जनाया। उन्हें लगा कि जान-बूझकर ये मुनि मेरा अपमान करते हैं। पासमें ही एक मरा सर्प पड़ा था। उन्होंने उसे धनुषसे उठाकर ऋषिके गलेमें डाला—यह परीक्षा करनेके लिये कि ऋषि ध्यानस्थ हैं या नहीं, और फिर वे राजधानी लौट गये। बालकोंके साथ खेलते हुए उन ऋषिके तेजस्वी पुत्रने जब यह समाचार पाया, तब शाप दे दिया—'इस दुष्ट राजाको आजके सातवें

दिन तक्षक काट लेगा।'

उस समय वे भीमसेनद्वारा विजित मगधराज जरासंधका स्वर्ण-मुकुट सिरपर धारण किये थे। उसमें कलिका वास हो गया था, इसीलिये उनसे यह अकरणीय कृत्य हो गया था। घर पहुँचकर मुकुट उतारनेपर परीक्षित्को स्मरण आया कि 'मुझसे आज बहुत बड़ा अपराध हो गया।' वे पश्चात्ताप कर ही रहे थे, इतनेमें शापकी बातका उन्हें पता लगा। इससे राजाको तनिक भी दुःख नहीं हुआ। अपने पुत्र जनमेजयको राज्य देकर वे गंगातटपर जा बैठे। सात दिनोंतक उन्होंने निर्जल व्रतका निश्चय किया। उनके पास उस समय बहुत-से ऋषि-मुनि आये। परीक्षित्ने कहा—'ऋषिगण! मुझे शाप मिला, यह तो मुझपर भगवान्की कृपा ही हुई। मैं विषयभोगोंमें आसक्त हो रहा था, दयामय भगवान्ने शापके बहाने मुझे उनसे अलग कर दिया। अब आप मुझे भगवान्का पावन चरित सुनाइये।' उसी समय वहाँ घूमते हुए श्रीशुकदेवजी पहुँच गये। परीक्षित्ने उनका पूजन किया। उनके पूछनेपर शुकदेवजीने सात दिनोंमें उन्हें पूरे श्रीमद्भागवतका उपदेश किया। अन्तमें परीक्षित्ने अपना चित्त भगवान्में लगा दिया। तक्षकने आकर उन्हें काटा और उसके विषसे उनकी देह भस्म हो गयी; पर वे तो पहले ही शरीरसे ऊपर उठ चुके थे। उनको इस सबका पतातक नहीं चला।

श्रीशेषजी

शास्त्रोंमें भगवान्के पंचविध स्वरूप माने गये हैं। इनमें एक रूप 'व्यूह' के नामसे प्रसिद्ध है। यह रूप सृष्टि-पालन और संहार करनेके लिये, संसारीजनोंका संरक्षण करनेके लिये और उपासकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ग्रहण किया जाता है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार व्यूह हैं। वास्तवमें संकर्षणादि तीन ही व्यूह हैं। वासुदेव तो व्यूहमण्डलमें आकर व्यूहरूपमें केवल गिने जाते हैं। इनमेंसे संकर्षण जीवतत्त्वके अधिष्ठाता हैं। इनमें ज्ञान और बल—इन दो गुणोंकी प्रधानता है। यही 'शेष' अथवा 'अनन्त' के रूपमें पातालमूलमें रहते हैं और प्रलयकालमें इन्हींके मुखमेंसे संवर्तक अग्नि प्रकट होकर सारे जगत्को भस्म कर देती है। ये ही भगवान् आदिपुरुष नारायणके पर्यंक-रूपमें क्षीरसागरमें रहते हैं। ये अपने सहस्र मुखोंके द्वारा निरन्तर भगवान्का गुणानुवाद करते रहते हैं और अनादि कालसे यों करते रहनेपर भी अघाते या ऊबते नहीं। ये भक्तोंके परम सहायक हैं और जीवको भगवान्की शरणमें ले जाते हैं। इनकी सारे देवता वन्दना करते हैं। इनके बल, पराक्रम, प्रभाव और स्वरूपको जानने अथवा वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है। गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, नाग आदि कोई भी इनके गुणोंकी थाह नहीं लगा सकते—इसीसे इन्हें 'अनन्त' कहते हैं। ये पंचविध ज्योतिःसिद्धान्तके प्रवर्तक माने गये हैं। ये सारे विश्वके आधारभूत भगवान् नारायणके श्रीविग्रहको धारण करनेके कारण सब लोकोंमें पूज्य और धन्यतम कहे जाते हैं। ये सारे ब्रह्माण्डको अपने मस्तकपर धारण किये रहते हैं। ये भगवान्के निवास—शय्या, आसन, पादुका, वस्त्र, पादपीठ, तकिया तथा छत्रके रूपमें शेष अर्थात् अंगीभूत होनेके कारण 'शेष' कहलाते हैं। त्रेतायुगमें श्रीलक्ष्मणजीके रूपमें और द्वापरमें श्रीबलरामजीके रूपमें ये ही अवतीर्ण होकर भगवान्की लीलामें सहायक बनते हैं। ये भगवान्के नित्य परिकर, नित्यमुक्त एवं अखण्ड ज्ञानसम्पन्न माने जाते हैं।

श्रीसूतजी

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥*

* सब शास्त्रोंका मन्थन करके तथा पुनः-पुनः विचार करके यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवान् नारायण ही सदा ध्यान

रोमहर्षणजी सूत जातिके थे। ये भगवान् वेदव्यासजीके परमप्रिय शिष्य थे। भगवान् व्यासने इन्हें समस्त पुराणोंको पढ़ाया और आशीर्वाद दिया कि तुम समस्त पुराणोंके वक्ता होओगे। इसीलिये ये समस्त पुराणोंके वक्ता माने जाते हैं। ये सदा ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमते रहते थे और सबको पुराणोंकी कथा सुनाया करते थे। नैमिषारण्यमें अठासी हजार ऋषि वास करते थे, सूतजी उनके यहाँ सदा कथा कहा करते थे। यद्यपि ये सूत जातिके थे, किंतु पुराणोंके वक्ता होनेके कारण समस्त ऋषि इनका आदर करते थे और उच्चासनपर बिठाकर इनकी पूजा करते थे। इनकी कथा इतनी अद्भुत होती थी कि आसपासके ऋषिगण जब सुन लेते थे कि अमुक जगह सूतजी आये हैं तो सभी दौड़-दौड़कर इनके पास आ जाते और चित्र-विचित्र कथाएँ सुननेके लिये इन्हें घेरकर चारों ओर बैठ जाते। पहले तो ये सब ऋषियोंकी पूजा करते, उनका कुशल-प्रश्न पूछते और कहते—'ऋषियो! आप कौन-सी कथा मुझसे सुनना चाहते हैं?' इनके प्रश्नको सुनकर शौनक या और कोई वृद्ध ऋषि किसी तरहका प्रश्न कर देते और कह देते—'रोमहर्षण सूत! यदि हमारा यह प्रश्न पौराणिक हो और पुराणोंमें गाया गया हो, तो इसका उत्तर दीजिये।'

ऐसी कौन-सी बात है, जो पुराणोंमें न हो। पहले तो सूत उनके प्रश्नका अभिनन्दन करते और फिर कहते 'आपका यह प्रश्न पौराणिक ही है। इसके सम्बन्धमें मैंने अपने गुरु भगवान् व्याससे जो कुछ सुना है, उसे आपके सामने कहता हूँ, सावधान होकर सुनिये।' इतना कहकर सूतजी कथाका आरम्भ करते और यथावत् समस्त प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कथाएँ सुनाते। इस प्रकार ये सदा भगवल्लीलाकीर्तनमें लगे रहते थे। इनसे बढ़कर भगवान्‌का कीर्तनकार कौन होगा। इनकी मृत्यु भगवान् बलदेवजीके द्वारा हुई। नैमिषारण्यमें तीर्थयात्रा करते हुए बलदेवजी पहुँचे। ये उस समय व्यासासनपर बैठे थे, उस आसनकी गरिमाके कारण ये उन्हें देखकर उठे नहीं। इसपर बलरामजीको क्रोध आ गया और उन्होंने इनका सिर काट लिया। ऋषियोंने बलरामजीसे कहा—'यह आपने अच्छा नहीं किया, हमने इन्हें दीर्घ आयु देकर इस उच्चासनपर बिठाया था। आपको ब्रह्महत्याका पाप लगा है, आप प्रायश्चित्त करें।' ऋषियोंकी आज्ञा बलदेवजीने शिरोधार्य की और उन्होंने जैसा प्रायश्चित्त बताया था, वैसा किया। उस समयसे इनके पुत्र उग्रश्रवाको वह गद्दी दी गयी और तबसे रोमहर्षणकी जगह उग्रश्रवा पुराणोंके वक्ता हुए। **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** के नाते उग्रश्रवामें अपने पिताके समस्त गुण मौजूद थे।

महाशाल श्रीशौनकजी

ये नैमिषारण्यके अठासी हजार ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी ऋषियोंमें प्रधान ऋषि थे। भृगुवंशमें उत्पन्न होनेसे भार्गव और शुनकके अपत्य होनेके कारण इनका नाम शौनक पड़ा। समस्त पुराणोंको और महाभारतको इन्होंने ही सूतजीके मुखसे सुना था। पुराणोंको श्रवण करनेवाला ऐसा कौन-सा मनुष्य होगा, जो इनके नामको न जानता हो। समस्त पुराणोंमें **'शौनक उवाच'** पहले ही आता है। हमें पुराणोंमें व्रतोंका माहात्म्य तथा तीर्थोंकी महिमा—जो कुछ भी सुनायी पड़ती है, सब शौनकजीकी ही कृपाका फल है। ये हजारों वर्षका श्रवणसत्र करते थे। एक जगह कहा है—

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम्।
आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः॥

'कलियुगको आया देखकर हम सब ऋषि इस वैष्णव क्षेत्रमें भगवान्‌की कथाओंका आनन्द लेते हुए दीर्घकालका सत्र कर रहे हैं।' इनका समस्त समय भगवत्कथाश्रवणमें ही व्यतीत होता था। ऋषियोंमें जैसा विशुद्ध और संयमयुक्त चरित्र महर्षि शौनकका मिलता है, वैसा अन्य किसी ऋषिका शायद ही हो। ये नियमसे

हवन आदि नित्यकर्म करके कथाश्रवणके लिये बैठ जाते थे और फिर भगवान्‌की कथाओंमें ही पूरा समय लगाते थे। इस प्रकार शौनकजी, हमें पुराण कैसे सुनने चाहिये, इसकी शिक्षा देते हैं। भगवच्चरित्र सुनकर कैसे अनुमोदन करना चाहिये, कथामें किस प्रकार एकाग्रता रखनी चाहिये और समयका कैसे सदुपयोग करना चाहिये, इन समस्त बातोंकी शिक्षा हमें शौनकजीके चरित्रसे मिलती है।

श्रीप्रचेतागण

महाराज पृथुके वंशमें बर्हिषद् नामके एक महानुभाव राजा हुए। वे प्रजाका नीतिपूर्वक पालन करनेवाले, यज्ञादिके अनुष्ठानरूप कर्मकाण्डमें तथा प्राणायाम आदि योगाभ्यासमें पारंगत और परम पुण्यात्मा थे। उन्होंने जहाँ एक यज्ञ किया, उसके समीप ही दूसरा यज्ञ किया और दूसरेके समीप ही तीसरा यज्ञ किया। इस प्रकार उन्होंने यज्ञोंका ताँता-सा लगा दिया, जिससे यह सारा भूमण्डल प्रांमुख दर्भोंसे आच्छादित यज्ञमण्डप-सा बन गया। इसीसे ये प्राचीनबर्हि नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने देवाधिदेव ब्रह्माजीके कहनेसे समुद्रकी शतद्रुति नामक कन्याके साथ विवाह किया और उसके द्वारा उन्होंने प्रचेता नामके दस पुत्र उत्पन्न किये। ये सब-के-सब भगवान्‌की आराधनारूप धर्ममें परिनिष्ठित थे। ये जब वयस्क हुए तो पिताने इन्हें विवाहकर संतान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी। भगवान्‌के अनुग्रहके बिना उत्तम संतानका होना कठिन है, यह सोचकर वे भगवान्‌की प्रसन्नताके निमित्त तप करनेको पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये। चलते-चलते समुद्रके समीप उन्होंने समुद्रसे कुछ ही छोटे एक सरोवरको देखा, जिसका जल सत्पुरुषोंके अन्तःकरणके समान निर्मल था और जिसमें रहनेवाले मत्स्य, कच्छप आदि प्राणी शान्त थे। वहाँ मृदंग और झाँझ आदि बाजोंके साथ गन्धर्वोंका मनोहर गान हो रहा था। उस दिव्य गानको सुनकर वे राजपुत्र परम विस्मित हुए। इतनेमें ही उन्होंने देखा कि साक्षात् देवाधिदेव महादेव नन्दीश्वर आदि सेवकोंको लिये हुए उस सरोवरमेंसे निकल रहे हैं। उन्हें देखकर राजपुत्रोंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। भगवान् शंकर भी उन राजपुत्रोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—'हे राजपुत्रो! तुम राजा प्राचीनबर्हिके पुत्र हो और तुम्हारे मनमें भगवान्‌की आराधना करनेकी इच्छा है, यह सब मैं जानता हूँ और तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही मैंने तुम्हें दर्शन दिये हैं। जो जीव भगवान् वासुदेवकी शरणमें चला जाता है, उससे बढ़कर मुझे कोई भी प्रिय नहीं है। जैसे भगवान् मुझे प्रिय हैं, उसी प्रकार तुम भगवद्भक्त भी मुझे प्रिय हो। भगवान्‌के भक्तोंको भी मुझसे अधिक प्रिय कोई नहीं है। अतः मैं तुम्हें जप करनेयोग्य, पवित्र, मंगलकारी, श्रेष्ठ और भगवत्स्वरूपकी प्राप्ति करा देनेवाले स्तोत्रको* कहता हूँ। उसे धारणकर एकान्तमें मौन होकर उसका जप करो। शुद्धचित्त होकर अपने धर्मका आचरण करते हुए और अपना अन्तःकरण भगवान्‌को समर्पित करके इस स्तोत्रका जप करनेसे अवश्य तुम्हें कल्याणकी प्राप्ति होगी। साथ-साथ अपने तथा दूसरे समस्त प्राणियोंके अन्दर रहनेवाले भगवान्‌का ध्यान और पूजन भी करते रहना चाहिये।' यह कहकर भगवान् शंकरने उन्हें अड़सठ श्लोकोंका वह उत्तम स्तोत्र कह सुनाया और राजपुत्रोंसे पूजित होकर वे उनके सामने वहीं अन्तर्धान हो गये।

राजपुत्रोंने उस स्तोत्रका जप करते हुए समुद्रके अन्दर कटिपर्यन्त जलमें खड़े होकर दस हजार वर्षतक तप किया। उनके इस तपसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि शुद्ध सत्त्वगुणी मूर्ति धारणकर अपनी कान्तिसे उनके तपजनित क्लेशको दूर करते हुए उनके समीप प्रकट हुए और बोले—'हे राजपुत्रो! तुम लोग बड़े प्रेमके साथ भगवदाराधनरूप एक ही धर्मका आचरण कर रहे हो, तुम्हारे इस सखाभावसे हम बहुत प्रसन्न हैं। इसलिये हमसे इच्छित वर माँगो। जो मनुष्य प्रतिदिन सन्ध्याके समय तुम्हारा स्मरण करेगा, उसका

* जिन्हें यह स्तोत्र देखना हो, उन्हें श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धका २४वाँ अध्याय देखना चाहिये।

भ्राताओंमें तथा सकल प्राणियोंमें तुम्हारे ही समान प्रेम उत्पन्न होगा। तुम्हें ब्रह्माके समान एक लोकप्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न होगा, जो अपनी संतानके द्वारा इस त्रिलोकीको भर देगा।' भगवान्के इन वाक्योंको सुनकर प्रचेतागण कृतज्ञतासे गद्गद हो गये। उन्होंने भगवान्की अनेक प्रकारसे स्तुति की और बोले 'प्रभो, आप तो घट-घटमें व्यापक हैं, आपसे कोई बात छिपी नहीं रह सकती; अतः हमारे मनोरथको भी आप भलीभाँति जानते हैं। फिर भी यदि आप हमारे मनोरथको हमींसे सुनना चाहते हैं तो हम तो यही जानते हैं कि परम पुरुषार्थरूप आप स्वयं हमपर प्रसन्न हुए हैं, इससे बढ़कर हमारे लिये अभीष्ट वर क्या हो सकता है? आपकी कृपासे आपके चरणोंका सान्निध्य प्राप्त हो जानेके बाद ऐसी कौन-सी वस्तु रह जाती है, जो हम आपसे माँगें? अतः हम तो आपसे इतना ही चाहते हैं कि आपकी मायासे मोहित हुए हम अपने कर्मोंद्वारा जबतक इस संसारमें भ्रमण करते रहें तबतक प्रत्येक जन्ममें हमें आपके भक्तोंका संग मिलता रहे। सांसारिक भोगोंकी तो बात ही क्या है, साधुसमागमके सामने हम स्वर्ग तथा मोक्षको भी कुछ नहीं समझते। दूसरा वरदान आपसे हम यह माँगते हैं कि जलमें खड़े होकर दीर्घकालपर्यन्त जो हमने तप किया है, वह आपकी प्रसन्नताका कारण हो।'

प्रचेताओंके इन प्रेमभरे वचनोंको सुनकर भगवान् बड़े सन्तुष्ट हुए और 'तथास्तु' कहकर अपने धामको चले गये। उनके चले जानेपर प्रचेतागण समुद्रमेंसे बाहर निकले और उन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृक्षोंकी दी हुई मारिषा नामक कन्याके साथ विवाह कर लिया। उस मारिषाके गर्भसे ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने (जिन्होंने चाक्षुष मन्वन्तरमें भगवान् शंकरका अपराध करनेके कारण अपना शरीर त्याग दिया था) पुनः जन्म धारण किया। कर्मोंमें दक्ष होनेके कारण उन्हें भी लोग 'दक्ष' नामसे पुकारने लगे। उन्हें जब ब्रह्माजीने प्रजाओंकी सृष्टि और रक्षाके कार्यमें नियुक्त कर दिया तो ये प्रचेतागण अपनी भार्याको अपने पुत्रके अधीन करके घर छोड़कर वनको चल दिये। उन्होंने पहलेकी भाँति पश्चिम दिशामें समुद्रतटपर जाकर ब्रह्मसत्रकी दीक्षा ग्रहण की अर्थात् आत्मविचार करनेका संकल्प किया। तदनन्तर वे प्राण, मन, वाणी और दृष्टिको वशमें करके, आसनोंपर विजय प्राप्तकर तथा मूलाधार चक्रसे मस्तकपर्यन्त सारे अंगोंको शान्त तथा स्थिर करके शुद्ध ब्रह्ममें मनको लगानेका अभ्यास करने लगे। वे जब इस प्रकार साधनमें लगे हुए थे, उन दिनों नारदजी उनके पास आये। देवर्षिको आते देख ये सब-के-सब उठ खड़े हुए और उन्हें आसनपर बिठाकर विधिपूर्वक उनका पूजन किया। जब नारदजी स्वस्थ होकर बैठ गये, तब प्रचेतागण उनसे इस प्रकार कहने लगे—'हे देवर्षि! आज हम आपके आगमनसे सनाथ हो गये। आपने कृपा करके हमें दर्शन दिये, इसके लिये हम आपके चिरऋणी रहेंगे। अब आप हमारे ऊपर एक कृपा और कीजिये। हमें देवाधिदेव शंकर और भगवान् नारायणने तत्त्वज्ञानका जो उपदेश दिया था, उसे हम लोग भूल-से गये हैं। अतः आप कृपा करके हमें उसी ज्ञानको फिरसे कहिये।' उनकी इस प्रार्थनाको स्वीकारकर नारदजीने उन्हें आत्मतत्त्वका उपदेश दिया और भगवान् तथा उनके भक्तोंके अनेक इतिहास सुनाकर वे ब्रह्मलोकको चले गये। तदनन्तर वे प्रचेतागण भी देवर्षि नारदके मुखसे भगवान्के मंगलमय यशको सुनकर उन्हींके चरणोंका ध्यान करते हुए देवदुर्लभ गतिको प्राप्त हुए। (श्रीमद्भागवतके आधारपर)

श्रीशतरूपाजी

शतरूपाजी मानव सर्गकी आदिमाता हैं। ये स्वायम्भुव मनुकी पत्नी थीं। मनु और शतरूपासे ही मानव-सृष्टिका आरम्भ हुआ। श्रुति भी कहती है—**'ततो मनुष्या अजायन्त।'** मनु और शतरूपा दोनों ही ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। दक्षिण भागसे मनुका और वाम भागसे शतरूपाका प्रादुर्भाव हुआ है। बृहदारण्यक

उपनिषद्में बतलाया गया है—केवल मनुष्य ही नहीं, सैकड़ों प्रकारके पशु भी इन्हीं दोनोंकी संतान हैं। शतरूपा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली तथा संकोचशीला स्त्री थीं। अतः प्रथम समागमके अवसरपर इन्होंने सैकड़ों रूप धारण करके अपनेको मनुकी दृष्टिसे छिपानेका प्रयत्न किया; किंतु उन सभी रूपोंमें मनुने उन्हें पहचाना और वैसा ही रूप धारण करके उनसे भेंट की। इस प्रकार सैकड़ों रूप धारण करनेके कारण ही सम्भवतः उनका नाम शतरूपा हो गया। जिन-जिन पशुओंके रूप इन्होंने धारण किये, उन सभीके रूपमें एक-एक संतान छोड़ दी। मानवी-सृष्टिका आदि स्रोत मनुसे ही आरम्भ हुआ। उन्हींके नामपर संसारके नर और नारी मानव कहलाते हैं।

स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तके राजा थे। सब प्रकारकी सम्पदाओंसे युक्त बर्हिष्मती नगरी उनकी राजधानी थी, जहाँ पृथ्वीको रसातलसे ले आनेके पश्चात् शरीर कँपाते समय श्रीवराहभगवान्के रोम झड़कर गिरे थे। वे रोम ही निरन्तर हरे-भरे रहनेवाले कुश और काश हुए, जिनके द्वारा मुनिजन यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंका तिरस्कार करके भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं। 'बर्हिष्' कहते हैं कुशोंको; उनकी अधिकता होनेके कारण ही मनुकी वह नगरी बर्हिष्मतीपुरीके नामसे प्रसिद्ध हुई। उसी पुरीमें महारानी शतरूपाके साथ मनुजी निवास करते थे। प्रतिदिन प्रेमपूर्ण हृदयसे भगवान्की कथाएँ सुनना, उनका नित्यका नियम था। वे दोनों दम्पती भलीभाँति धर्मका अनुष्ठान करते थे। आज भी वेद उनकी मर्यादाका गान करते हैं। मनु और शतरूपाके दो पुत्र और तीन कन्याएँ हुईं। पुत्रोंके नाम उत्तानपाद और प्रियव्रत थे और कन्याएँ आकूति, प्रसूति तथा देवहूतिके नामसे प्रसिद्ध हुई थीं। प्रसिद्ध भगवद्भक्त ध्रुव राजा उत्तानपादके ही पुत्र थे। राजा प्रियव्रतने इस पृथ्वीको सात भागोंमें विभक्त किया था। कन्याओंमेंसे आकूति रुचि प्रजापतिको ब्याही गयी थी, प्रसूति प्रजापति दक्षकी पत्नी थी और देवहूतिका विवाह महर्षि कर्दमसे हुआ था। देवहूतिके ही गर्भसे सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवत्स्वरूप महर्षि कपिलका अवतार हुआ था। महाराज मनुने बहुत समयतक राज्य किया और सब प्रकारसे प्रजापालन एवं शास्त्रमर्यादाकी रक्षारूप भगवान्की आज्ञाका पालन किया।

घरमें रहकर राज्य भोगते-भोगते चौथापन आ गया, परंतु विषयोंसे वैराग्य नहीं हुआ। इस बातका विचार करके राजाके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे—'हाय! हमारा सारा जन्म भगवान्का भजन किये बिना ही व्यर्थ बीत गया। तब मनुजीने अपने पुत्रको जबर्दस्ती राज्यपर बिठाया और स्वयं रानी शतरूपाको साथ ले वनको प्रस्थान किया। दोनोंने सहस्रों वर्षोंतक घोर तपस्या करके भगवान्को प्रसन्न किया। तब करुणानिधान भक्तवत्सल प्रभु श्रीराम उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान्के श्रीअंगोंकी शोभा नीलकमल, नीलमणि तथा नीलमेघके समान श्याम थी, उसे देखकर कोटि-कोटि कामदेव लज्जित हो रहे थे। मुखपर शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी शोभा विहँस रही थी। मनोहर कपोल, सुन्दर ठोडी और शंखके सदृश ग्रीवा थी। लाल-लाल ओठ, स्वच्छ दन्त-पंक्ति, सुन्दर नासिका तथा चन्द्ररश्मियोंको तिरस्कृत करनेवाली हँसी सुशोभित थी। नेत्रोंकी छवि नवविकसित कमलके समान सुन्दर थी। मनोहारिणी चितवन जीको बहुत प्यारी लगती थी। सुन्दर भौंहें, ललाटपर प्रकाशमय तिलक, कानोंमें मकराकृत कुण्डल, मस्तकपर किरीट, कारी-कारी घुँघराली अलकें, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स और वनमाला, गलेमें पदक और हार तथा अन्य अंगोंमें भी मणिमय आभूषण शोभा पा रहे थे। सिंहकी-सी गर्दन, सुन्दर यज्ञोपवीत, हाथीकी सूँड़के समान मनोहर भुजदण्ड, कमरमें तरकस और हाथोंमें बाण एवं धनुष सुशोभित थे। पीताम्बरकी छवि बिजलीको लजा रही थी। उदरपर त्रिवलीकी रेखा देखने ही योग्य थी। नाभि ऐसी लगती थी, मानो यमुनाजीमें भँवर उठी हो। चरण-कमलोंकी शोभा अवर्णनीय थी। श्रीरघुनाथजीके वामभागमें उन्हींके समान शोभाकी निधि आदिशक्ति सीताजी शोभा पा रही थीं।

युगल सरकारकी यह मनोहर झाँकी देखकर मनु और शतरूपाकी पलकें स्थिर हो गयीं। वे एकटक दृष्टिसे उनकी रूप-माधुरीका पान कर रहे थे। देखते-देखते मन अघाता नहीं था। दोनों दम्पती आनन्दनिमग्न हो गये। शरीरकी सुध भूल गयी। भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करके वे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। करुणामय भगवान्‌ने अपने हाथोंसे उनके मस्तकका स्पर्श किया और उन्हें तुरंत उठाकर खड़ा कर दिया; फिर वर माँगनेको कहा। राजाने कहा—'नाथ! आपके दर्शनसे ही सब अभिलाषा पूरी हो गयी, अब एक ही लालसा मनमें रह गयी है, वह यह कि आपके समान एक पुत्र हो जाय।' भगवान्‌ने कहा—'अपने-जैसा पुत्र कहाँ खोजता फिरूँगा, मैं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' इतना कहकर भगवान्‌ने शतरूपाकी ओर दृष्टिपात किया और कहा, 'देवि! तुम भी अपनी रुचिके अनुसार वर माँगो।' शतरूपाने कहा—'प्रभो! महाराजने जो वर माँगा है, वही मुझे भी प्रिय है; फिर भी आपकी आज्ञासे मैं एक वर माँगती हूँ; वह यह है—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

यह कोमल, गूढ़ और मनोहर वाक्य-रचना सुनकर प्रभु प्रसन्न हो गये और बोले—'तुम्हारे मनमें जो कुछ अभिलाषा है, वह सब तुमको दे दी।' इतना कहकर भगवान्‌ने उसी दिन उन्हें माता कहकर पुकारा और विवेकका वरदान दिया—

मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥

इस प्रकार शतरूपाने अपनी अलौकिक भक्ति और तपस्यासे भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त किया। वे दोनों दम्पती भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार कुछ कालतक इन्द्रलोकमें रहे। उसके बाद मनु अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश दशरथ हुए और शतरूपा उनकी पत्नी कौसल्या हुईं। श्रीरघुनाथजीने इनके पुत्ररूपमें प्रकट होकर इनको तो अनुगृहीत किया ही; साथ-ही-साथ अपनी पवित्र लीलाओंकी स्मृति छोड़ दी, जिसका गायन, स्मरण और कीर्तन करके जगत्‌के असंख्य मनुष्य परमपदकी प्राप्ति करते रहेंगे।

त्रयसुता

(१) आकूति

आकूतिजीका वर्णन छप्पय ५ में यज्ञावतारके प्रसंगमें आया है।

(२) प्रसूति

प्रसूतिजीका वर्णन छप्पय १२ में दक्षजीके प्रसंगमें आगे दिया है।

(३) देवहूति

देवहूतिका वर्णन छप्पय १६ में कर्दमजीके प्रसंगमें आगे दिया है।

श्रीसुनीतिजी

श्रीसुनीतिजीका वर्णन छप्पय ९ में ध्रुवके प्रसंगमें आया है।

श्रीसतीजी

पतिव्रता स्त्रियोंमें सबसे पहले दक्ष-कन्या सतीका नाम लिया जाता है। वे ही साध्वी स्त्रियोंकी आदर्श हैं। उन्हींके नामपर अन्य पतिव्रता स्त्रियाँ भी 'सती' की उपाधिसे विभूषित हुई हैं। सती-धर्म वही है, जिसका भगवती सतीने पालन किया है। उनके द्वारा स्वीकृत और पालित धर्म ही शास्त्रोंमें 'सती-धर्म' के नामसे संकलित है।

भगवती सती साक्षात् सच्चिदानन्दमयी आद्या प्रकृति हैं। व्यक्त और अव्यक्त सब उन्हींके रूप हैं। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूपमें उन्हींकी अभिव्यक्ति होती है। वे ही कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी जननी हैं। उन्हींके भृकुटि-विलाससे जगत्की सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्य होते हैं। वे सर्वत्र व्यापक और सर्वस्वरूप होकर भी सबसे विलक्षण हैं। जगत्के जीवोंपर करुणा करके लीलाके लिये ही वे सगुणरूपमें प्रकट हैं। भिन्न-भिन्न पुराणों और उपपुराण आदि ग्रन्थोंमें उनके प्रादुर्भावकी अनेकों कथाएँ विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होती हैं। कल्पभेदसे वे सभी ठीक भी हैं। यहाँ अति संक्षेपसे उनके जीवनकी कुछ बातें निवेदन की जाती हैं।

प्रसिद्ध है कि भगवान् शंकर स्वभावसे ही विरक्त एवं आत्माराम हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ही उन्होंने स्त्री-परिग्रहकी इच्छा त्याग दी। ब्रह्माजीको उनके इस अखण्ड वैराग्यसे अपने सृष्टिकार्यमें बाधा पड़ती दिखायी दी। वे शंकरजीके वीर्यके एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहते थे, जो विध्वंसकारी असुरोंका दमन करनेवाला तथा देवताओंका संरक्षक हो। इसके लिये उन्होंने शंकरजीसे विवाह करनेके लिये अनुरोध किया, किंतु वे अपने संकल्पसे विचलित न हुए। भगवान् शिव दीर्घकालीन समाधिमें संलग्न होकर सदा अपने इष्टदेव साकेत-विहारी श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करते रहते थे। सृष्टि और संसारके झमेलेमें पड़ना उन्हें स्वीकार नहीं था। ब्रह्माजी एक ऐसी नारीकी खोजमें थे, जो महादेवजीके अनुकूल हो, उनके तेजको धारण कर सके और अपने दिव्य सौन्दर्यसे उनके मनपर भी अधिकार प्राप्त करनेमें समर्थ हो; किंतु ऐसी कोई स्त्री उन्हें दिखायी न दी, तब उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये भगवती विष्णुमायाकी आराधना करना ही उचित समझा।

ब्रह्माजीके नव मानस पुत्रोंमें प्रजापति दक्ष बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे हुई थी। एक समय शापवश इनको यह शरीर त्यागना पड़ा। उसके बाद वे दस प्रचेताओंके अंशसे उनकी पत्नी मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए। तबसे प्राचेतस दक्षके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। प्रजापति वीरणकी कन्या वीरिणी इनकी धर्मपत्नी थी।* ब्रह्माजीके आदेशसे दक्षने आराधना करके भगवतीको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया। परंतु भगवतीने उनसे पहले ही कह दिया कि 'यदि तुम कभी मेरा तिरस्कार करोगे, तो मैं तुम्हारी पुत्री न रह सकूँगी। शरीर त्यागकर अन्यत्र चली जाऊँगी।'

कन्याका साधु-स्वभाव और भोलापन देखकर ही माता-पिताने उसका नाम 'सती' रख दिया था। सतीका हृदय बचपनसे ही भगवान् शंकरकी ओर आकृष्ट था। कुछ बड़ी होनेपर उसने खेल-कूद और मनोरंजनसे मनको हटा लिया और वह नियमपूर्वक महादेवजीकी आराधना करने लगी। वह प्रातःकाल ब्राह्मवेलामें उठकर गंगास्नान करती और भगवान्की पार्थिव मूर्ति बनाकर फूल और बिल्वपत्र आदिसे उसकी विधिवत् पूजा करती थी। फिर नेत्र बन्द करके मन-ही-मन प्राणाधारका ध्यान धरती और उनसे मिलनेको उत्सुक होकर देरतक आँसू बहाया करती थी।

सच्चे प्रेमकी पिपासा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहती है। यही दशा सतीकी भी थी। उसके मन-प्राण भगवान् शंकरके लिये व्याकुल रहने लगे। उसे विरहका एक-एक क्षण युगके समान प्रतीत होता था। उसकी जिह्वापर 'शिव' का नाम था। हृदयमें उन्हींकी मनोहर मूर्ति बसी हुई थी। उसकी आँखें शिवके सिवा दूसरे पुरुषको देखना नहीं चाहती थीं। वह सोचती, 'क्या आशुतोष भगवान् शिव मुझ दीन अबलापर भी कभी कृपा करेंगे? क्या कभी ऐसा समय भी आयेगा, जब मैं अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित करके यह तन, मन, जीवन और यौवन सार्थक कर सकूँगी?' इन्हीं भावनाओंमें वह बेसुध रहती थी। सतीकी यह प्रेम-साधना आगे

* कहीं-कहीं स्वायम्भुव मनुकी कन्या 'प्रसूति' को इनकी धर्मपत्नी बताया गया है।

चलकर कठोर तपस्याके रूपमें परिणत हो गयी।

उधर ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शंकरके पास गये और उनसे असुरविनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये विवाह करनेका अनुरोध करने लगे। शिवने विवाहकी अनुमति दे दी और योग्य कन्याकी खोज करनेको कहा। ब्रह्माजीने कहा—'महेश्वर! दक्ष-कन्या सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्या कर रही हैं। वे ही आपके सर्वथा अनुरूप हैं। आप उन्हें ग्रहण करें।' शिवने 'तथास्तु' कहकर देवताओंको विदा कर दिया।

सतीकी व्रताराधना अब पूर्ण होनेको आयी। आश्विनमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथि थी। सतीने उस दिन बड़े प्रेम और भक्तिके साथ अपने प्राणाराध्य महेश्वरका पूजन किया। दूसरे दिन व्रत पूर्ण होनेपर भगवान् शिव एकान्त कुटीरमें सतीके सम्मुख प्रकट हुए। सती निहाल हो गयी। जिनकी बाट जोहते-जोहते युग बीत गये थे, उन्हीं आराध्यदेवको सहसा सामने पाकर वे क्षणभरके लिये लज्जासे जडवत् हो गयीं। मन आनन्दके समुद्रमें लहरें लेने लगा। उनकी आँखें भगवान्‌के चरणोंमें जा लगीं। शरीर रोमांचित हो उठा। काँपते हाथोंसे प्रियतमका चरण-स्पर्श किया और भक्तिभावसे प्रणाम करके प्रेमाश्रुओंसे वह उनके पाँव पखारने लगी।

भगवान्‌ने अपने हाथोंसे सतीको उठाकर खड़ा किया। उस समय उसका रोम-रोम अनिर्वचनीय रसमें डूबा हुआ था। शंकरजी सतीकी तपस्याका उद्देश्य जानते थे, तो भी उन्होंने उन्हींके मुँहसे उनका मनोरथ सुननेके लिये कहा—'दक्षकुमारी! मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत सन्तुष्ट हूँ। बताओ, किसलिये अपने कोमल अंगोंको इस कठोर साधनाके द्वारा कष्ट पहुँचाया है?'

सती संकोचसे मुख नीचे किये हुए बोलीं—'देवाधिदेव! आप घटघटवासी हैं, मेरी अभिलाषा आपसे छिपी नहीं है। आप स्वयं ही आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' सतीका यह अलौकिक प्रेम देखकर भगवान् शिव उसके हाथों बिना दाम बिक गये। वे सहसा बोल उठे—'देवि! तुम मेरी पत्नी बनकर मुझे अनुगृहीत करो।' सतीका हाथ भगवान् शिवके हाथमें था। प्रभुकी वह अनुरागभरी वाणी सुनकर वे पुनः रमणी-सुलभ लज्जाके वशीभूत हो गयीं। उनकी जन्म-जन्मकी साध अब पूरी होने जा रही थी। उस समय उनके मनमें कितना सुख, कितना आह्लाद था, इसका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने थोड़ी ही देरमें अपनेको सँभाला और मन्द मुसकानके साथ संकोचयुक्त वाणीमें कहा—'भगवन्! मैं अपने पिताके अधीन हूँ; आप उनकी अनुमतिसे मुझे अपनी सेवाका सौभाग्य प्रदान करें।'

'बहुत अच्छा' कहकर शंकरजीने सतीको आश्वासन दिया और उससे विदा लेकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर सतीकी तपस्या और वरदान-प्राप्तिकी बात दक्षके घरमें फैल गयी। उसे सुनकर दक्ष चिन्तामें पड़े थे कि 'किस प्रकार सतीका विवाह शिवजीके साथ होगा?' इतनेमें ही भगवान् शंकरकी अनुमतिसे ब्रह्माजीने आकर कहा—'मैं स्वयं ही शंकरजीको साथ लेकर यहाँ आऊँगा; तुम विवाहकी तैयारी करो।' नियत समयपर ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ भगवान् शिव विवाहके लिये पधारे। उस समय भी उनका वही अड़भंगी वेष था। दक्षको उनकी वेष-भूषापर क्षोभ हुआ; फिर भी उन्होंने समारोहपूर्वक सतीका विवाह शिवजीके साथ कर दिया।

विवाहके पश्चात् सती माता-पितासे विदा हो पतिके साथ कैलासधाम चली गयीं। वे भगवान् शिवके साथ दीर्घकालतक वहाँके सुरम्य प्रदेशोंमें सुखसे रहने लगीं। देवताओं और यक्षोंकी कन्याएँ उनकी सेवा किया करती थीं। भगवान् शिवके पास अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि, योगी, यति, सन्त-महात्मा पधारते और

सत्संगका लाभ उठाया करते थे। सतीको वहाँ भगवच्चर्चामें बड़ा सुख मिलता था। उस दिव्य वातावरणमें रहते हुए उन्हें कितने ही युग बीत गये। सतीके तन, मन और प्राण केवल शिवकी आराधनामें लगे रहते थे। उनके पति, प्राणेश और देवता सब कुछ भगवान् शिव ही थे।

एक बार त्रेतायुग आनेपर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था। उस समय वे पिताके वचनसे राज्य-त्याग करके तापस-वेषमें दण्डकवनके भीतर विचरण कर रहे थे। इसी समय रावणने मारीचको कपटमृग बनाकर भेजा था और सूने आश्रमसे सीताको हर लिया था एवं श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति विरहसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीके साथ वनमें सीताकी खोज कर रहे थे। जिनके कभी संयोग-वियोग नहीं है, उनमें भी विरहका दु:ख प्रत्यक्ष देखा जा रहा था।

इसी अवसरपर भगवान् शंकर सतीदेवीको साथ लिये अगस्त्यके आश्रमसे राम-कथाका आनन्द लेकर कैलासको लौट रहे थे। उन्होंने अपने आराध्यदेव श्रीरघुनाथजीको देखा, उनके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीराम शोभाके समुद्र हैं, उन्हें शिवजीने आँख भरकर देखा; परंतु ठीक अवसर न होनेसे परिचय नहीं किया। उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—***'जय सच्चिदानंद जग पावन।'*** शंकरजी सतीके साथ चले जा रहे थे, आनन्दातिरेकसे उनके शरीरमें बारम्बार रोमांच हो आता था। सतीने जब उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया तो उनके मनमें बड़ा सन्देह हुआ। वे सोचने लगीं—'शंकरजी तो सारे जगत्के वन्दनीय हैं; देवता, मनुष्य और मुनि सब इनको मस्तक झुकाते हैं; इन्होंने एक राजकुमारको 'सच्चिदानन्द परमधाम' कहकर प्रणाम कैसे किया और उसकी शोभा देखकर ये इतने प्रेममग्न कैसे हो गये कि अबतक इनके हृदयमें प्रीति रोकनेसे भी नहीं रुकती। जो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेद-शून्य है, जिसे वेद भी नहीं जान पाता, वह क्या देह धारण करके मनुष्य बन सकता है? देवताओंके हितके लिये जो मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले विष्णु हैं, वे भी तो शिवजीकी ही भाँति सर्वज्ञ हैं, भला वे कभी अज्ञानीकी भाँति स्त्रीको खोजते फिरेंगे? परंतु शिवजीने सर्वज्ञ होकर भी उन्हें 'सच्चिदानन्द' कहा है, उनकी बात भी तो झूठी नहीं हो सकती।

इस प्रकार सतीके मनमें महान् सन्देह खड़ा हो गया। यद्यपि उन्होंने प्रकट कुछ नहीं कहा, फिर भी अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। उन्होंने सतीको समझाकर कहा कि 'समस्त ब्रह्माण्डोंके अधिपति मायापति, नित्य, परम स्वतन्त्र ब्रह्मरूप मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामने ही अपने भक्तोंके हितके लिये अपनी इच्छासे 'रघुकुल-रत्न' होकर अवतार लिया है।' पर सतीके मनमें उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मन-ही-मन भगवान्की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले—'यदि तुम्हारे मनमें अधिक सन्देह है, तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं? जबतक तुम लौट न आओगी, मैं इसी बड़की छाँहमें बैठा रहूँगा।'

भोली-भाली सतीपर भगवान्की योगमायाका प्रभाव पड़ चुका था। वे पतिकी आज्ञा पाकर चलीं। इधर शंकरजी अनुमान करने लगे, 'आज सतीका कल्याण नहीं है। मेरे समझानेपर भी जब सन्देह दूर नहीं हुआ तो विधाता ही विपरीत है, इसमें भलाई नहीं है। जो कुछ रामने रच रखा है, वही होगा, तर्क करके कौन प्रपंचमें फँसे।' यों विचारकर वे भगवान्का नाम जपने लगे। उधर सतीने खूब सोच-विचारकर सीताका रूप धारण किया और आगे बढ़कर उस मार्गपर चली गयीं, जिधर श्रीरामचन्द्रजी आ रहे थे। लक्ष्मणजी सीताको मार्गमें खड़ी देखकर चकित हो गये। जिनके स्मरणमात्रसे अज्ञान मिट जाता है, उन सर्वज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने सारी बात जानकर मन-ही-मन अपनी मायाके बलका बखान करते हुए हाथ जोड़कर सीतारूपिणी सतीको प्रणाम किया। अपना और अपने पिताका नाम बतलाया तथा हँसकर पूछा—'देवि! शिवजी कहाँ हैं? आप

वनमें अकेली क्यों विचर रही हैं?' अब तो सतीजी संकोचसे गड़ गयीं। वे भयभीत होकर शंकरजीके पास लौट चलीं। उनके हृदयमें बड़ी चिन्ता हो गयी थी, वे सोचने लगीं—'हाय! मैंने स्वामीका कहना नहीं माना, अपना अज्ञान श्रीरामचन्द्रजीपर आरोपित किया। अब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी।'

फिर वे बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके उस स्थानकी ओर चलीं, जहाँ शिवजी उनकी प्रतीक्षामें बैठे थे। निकट जानेपर शिवजीने हँसकर कुशल-समाचार पूछा और कहा—'सच-सच बताओ, किस प्रकार परीक्षा ली है?' सतीने श्रीरघुनाथजीके प्रभावको समझकर भयके मारे शिवजीसे अपने सीतारूप धारण करनेकी बात छिपा ली। शंकरजीने ध्यान लगाकर देखा और सतीने जो कुछ किया था, यह सब जान लिया। फिर उन्होंने श्रीरामजीकी मायाको मस्तक झुकाया!

'सतीने सीताका वेष बना लिया,' यह जानकर शिवजीके मनमें बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा, 'अब यदि मैं सतीसे पत्नीकी भाँति प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्गका लोप हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है। सती परम पवित्र हैं, अतः इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है।' महादेवजी प्रकटरूपसे कुछ नहीं कह सके; किंतु उनके हृदयमें बड़ा संताप था। तब उन्होंने श्रीरामको मन-ही-मन प्रणाम किया। भगवान्‌की याद आते ही उनके हृदयमें यह संकल्प उदित हुआ—'***एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं।***' ऐसा निश्चय करके वे श्रीरामका स्मरण करते हुए चल दिये। उस समय आकाशवाणी हुई—'महेश्वर! आपकी जय हो, आपने भक्तिको अच्छी दृढ़ता प्रदान की। आपको छोड़कर ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान् हैं।'

सतीने भी वह आकाशवाणी सुनी। उनके मनमें बड़ी चिन्ता हो गयी। उन्होंने सकुचाते हुए पूछा—'दयामय! कहिये, आपने कौन-सा प्रण किया है। प्रभो! आप सत्यके धाम और दीनदयालु हैं। मुझ दीनपर दया करके अपनी की हुई प्रतिज्ञा बताइये।' सतीने भाँति-भाँतिसे पूछा, किंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया। तब सतीने अनुमान किया, 'शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ जान गये। हाय! मैंने इनसे भी छल किया। स्त्री स्वभावसे ही मूर्ख और बेसमझ होती है।' अपनी करनीको याद करके सतीके हृदयमें बड़ा सोच और अपार चिन्ता हुई। उन्होंने समझ लिया कि शिवजी कृपाके अथाह सागर हैं, इसीसे प्रकटमें इन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा; किंतु उनका रुख देखकर सतीको यह विश्वास हो गया कि स्वामीने मेरा परित्याग कर दिया है।

त्यागका विचार आते ही उनका हृदय व्याकुल हो गया। सतीको चिन्तामग्न देख शंकरजी उन्हें सुख देनेके लिये सुन्दर-सुन्दर कथा-वार्ता कहने लगे। मार्गमें अनेक प्रकारके इतिहासका वर्णन करते हुए वे कैलासधाम पहुँचे। वहाँ अपनी प्रतिज्ञाको याद करके वे वटवृक्ष नीचे आसन लगाकर बैठ गये। अपने सहज स्वरूपका स्मरण किया और अखण्ड समाधि लग गयी। सतीजी कैलासपर रहकर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगीं। उनके मनमें बड़ा दुःख था। एक-एक दिन एक-एक युगके समान बीत रहा था और इस दुःख-समुद्रसे पार होनेका कोई उपाय नहीं सूझता था।

इस प्रकार दक्ष-कुमारी सतीके दारुण दुःखकी कोई सीमा नहीं थी। वे रात-दिन चिन्ताकी आगमें झुलस रही थीं। इस अवस्थामें पड़े-पड़े उनके सत्तासी हजार वर्ष बीत गये। इतने दिनों बाद शिवकी समाधि खुली, वे स्पष्ट वाणीमें राम-रामका उच्चारण करने लगे। तब सतीने जाना कि जगदीश्वर शिव समाधिसे जगे हैं। उन्होंने जाकर शंकरजीके चरणोंमें प्रणाम किया। शिवजीने उनको बैठनेके लिये सामने आसन दिया और श्रीहरिकी रसमयी कथाएँ सुनाने लगे। इस प्रकार दयालु महेश्वरने सतीके सन्तप्त हृदयको कुछ शीतल किया, जिससे उनके दुःखका आवेग बहुत कुछ कम हो गया।

इसी बीचमें सतीके पिता दक्ष 'प्रजापति' के पदपर अभिषिक्त हुए। यह महान् अधिकार पाकर दक्षके हृदयमें बड़ा भारी अभिमान पैदा हो गया। संसारमें कौन ऐसा है, जिसे प्रभुता पाकर मद न हो। उन्होंने ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंको जिनमें शंकरजी भी थे, उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना आरम्भ किया। शंकरजीपर उनके रोषका कुछ विशेष कारण था। वे उनके तत्त्वसे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। सतीके विवाहके कुछ ही समय बाद एक बार प्रजापतियोंने यज्ञका आयोजन किया था। उसमें बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि और अग्नि आदि भी अपने अनुयायियोंसहित उपस्थित हुए थे। ब्रह्मा और शिवजी भी उस सभामें विराजमान थे। उसी समय दक्ष भी वहाँ पधारे। सभी सभासद् उनके स्वागतमें उठकर खड़े हो गये। केवल ब्रह्माजी और महादेवजी अपने स्थानपर बैठे रहे। ब्रह्माजी तो दक्षके पिता ही थे; अतः दक्षने झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु शंकरजीका बैठे रहना उनको बहुत बुरा लगा। उन्हें इस बातके लिये खेद था कि 'शंकरने उठकर मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया' अतः उन्होंने भरी सभामें उनकी बड़ी निन्दा की, कठोर वचन सुनाये और शापतक दे डाला। भगवान् शंकर चुपचाप चले आये। उन्होंने उनकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

इतनेपर भी दक्षका रोष उनके प्रति शान्त नहीं हुआ था। वे शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे द्वेष रखने लगे। यहाँतक कि अपनी पुत्री सतीके प्रति भी उनका भाव अच्छा नहीं रह गया। प्रजापतियोंके नायक बन जानेपर उनको वैर-साधनका अच्छा अवसर मिला। पहले तो उन्होंने वाजपेय यज्ञ किया और उसमें शंकरजीको भाग नहीं लेने दिया। उसके बाद पुनः बड़े समारोहके साथ 'बृहस्पति-सव' नामक यज्ञका आयोजन किया। इस उत्सवमें प्रायः सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता और उपदेवता आदि आमन्त्रित थे। सबने अपनी-अपनी पत्नीके साथ जाकर यज्ञोत्सवमें भाग लिया और स्वस्तिवाचन किया। केवल ब्रह्मा और विष्णु कुछ सोचकर उस यज्ञमें सम्मिलित नहीं हुए। सतीने देखा, कैलासशिखरके ऊपर आकाशमार्गसे विमानोंकी श्रेणियाँ चली जा रही हैं। उसमें देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर आदि बैठे हैं। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ भी हैं, जो चमकीले कुण्डल, हार तथा विविध रत्नमय आभूषण पहने भलीभाँति सज-धजकर गीत गाती हुई जा रही हैं।

सतीने पूछा—'भगवन्! यह सब क्या है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं?' भगवान् शिवने मुसकराते हुए कहा—'तुम्हारे पिताके यहाँ बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। उसीमें ये लोग निमन्त्रित हैं।' पिताके यज्ञकी बात सुनकर सतीको कुछ हर्ष हुआ। उन्होंने सोचा, 'यदि स्वामीकी आज्ञा हो तो यज्ञके ही बहाने कुछ दिन वहीं चलकर रहूँ।' यह विचारकर वे भय, संकोच और प्रेमरसमें सनी हुई वाणीमें बोलीं—'देव! पिताजीके घर यज्ञ हो रहा है तो उसमें मेरी अन्य बहनें भी अवश्य पधारेंगी। माता और पितासे मिले मुझे युग बीत गये। इस अवसरपर आपकी आज्ञा हो तो आप और मैं दोनों वहाँ चलें। यज्ञका उत्सव भी देखेंगे और सबसे भेंट-मुलाकात भी हो जायगी। प्रभो! यह ठीक है कि उन्होंने निमन्त्रण नहीं दिया; अतः वहाँ जाना ठीक नहीं है, तथापि पति, गुरु और माता-पिता आदि सुहृदोंके यहाँ बिना बुलाये भी जाना चाहिये। सम्भव है भीड़-भाड़में निमन्त्रण देना भूल गये हों, अथवा देनेपर भी यहाँ पहुँच न पाया हो।'

शिवजीने कहा—'इसमें सन्देह नहीं कि माता-पिता आदि गुरुजनोंके यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं, परंतु ऐसा तभी करना चाहिये जब वहाँके लोग प्रेम रखते हों। जहाँ कोई विरोध मानता हो, वहाँ जानेसे कदापि कल्याण नहीं होता। तुम्हारे पिता मुझसे द्वेष रखते हैं, अतः तुम्हें उनको और उनके अनुयायियोंको देखनेका भी विचार नहीं करना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी तो इसका परिणाम अच्छा न होगा; क्योंकि किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको जब अपने स्वजनोंद्वारा तिरस्कार प्राप्त होता है, तो वह

तत्काल उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।'

इसके बाद शंकरजीने बहुत प्रकारसे समझाया-बुझाया, पर सती रहना नहीं चाहती थीं। स्वजनोंके स्नेहका स्मरण करके उनका हृदय भर आया। वे आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगीं। तब महादेवजीने अपने प्रधान-प्रधान पार्षदोंको साथ देकर सतीको अकेली ही विदा कर दिया। सती अपने समस्त सेवकोंके साथ गंगातटपर बनी हुई दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। मण्डपमें पहुँचनेपर दक्षने सतीका किंचित् भी सत्कार नहीं किया। उनकी चुप्पी देखकर दूसरे लोग भी उन्हींके भयसे कुछ भी न बोले। केवल माता और बहनें सतीसे प्रेमपूर्वक मिलीं और उन्हें आदरपूर्वक उपहारकी वस्तुएँ देने लगीं, किन्तु पितासे अपमानित होनेके कारण स्वाभिमानिनी सतीने किसीकी दी हुई कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं की। सतीको स्वामीकी कही हुई बातें याद आने लगीं।

उस यज्ञमें शिवजीके लिये कोई भाग न देकर उनका घोर अपमान किया गया था। सतीने इस बातकी ओर भी लक्ष्य किया। इससे उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उनकी भौंहें तन गयीं, आँखें लाल हो गयीं और ऐसा जान पड़ा, मानो वे सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर डालेंगी। उनका यह भाव देखकर शिवके पार्षद भी दक्षको दण्ड देनेके लिये उद्यत हो गये, किंतु सतीने उन्हें रोक दिया और समस्त सभासदोंके सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'पिताजी! भगवान् शंकर सम्पूर्ण देहधारियोंके प्रिय आत्मा हैं, उनसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। उनके लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय। वे सर्वरूप हैं, अतः उनका किसीके साथ भी वैर-विरोध नहीं है। ऐसे भगवान्के साथ आपको छोड़कर दूसरा कौन विरोध कर सकता है? अहो! महापुरुषोंके मनरूपी भ्रमर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके चरण-कमलोंका निरन्तर सेवन करते हैं तथा जो भोग चाहनेवाले पुरुषोंको उनके अभीष्ट भोग भी देते हैं, उन्हीं विश्वबन्धु भगवान् भूतनाथसे आप वैर करते हैं, यह आपके लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात है! सुनती हूँ, आप कहा करते हैं, वे केवल नाममात्रके शिव हैं; उनका वेष तो महान् अशिव—अभद्र है, क्योंकि वे नरमुण्डोंकी माला, चिताकी राख और हड्डियाँ धारण किये, जटा बिखराये, भूत-पिशाचोंको साथ लिये श्मशानमें विचरा करते हैं। मालूम होता है, शिवके उस अशिव रूपका ज्ञान सबसे अधिक आपको ही है; आपके सिवा दूसरे देवता ब्रह्मा आदि भी इस बातको नहीं जानते। तभी तो वे शिवके चरणोंपर चढ़े हुए निर्माल्यको अथवा उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर धारण करते हैं। पिताजी! शास्त्र क्या कहता है? यदि कोई उच्छृङ्खल प्राणी धर्मकी रक्षा करनेवाले ईश्वरकी निन्दा करे तो अपनेमें उसे दण्ड देनेकी शक्ति न होनेपर दोनों कान मूँद ले और वहाँसे हट जाय। अथवा यदि शक्ति हो तो उस बकवादीकी—दुष्टकी जिह्वाको काटकर फेंक दे। ऐसा करते समय कदाचित् प्राणोंपर संकट आ जाय तो प्राणोंको भी त्याग दे; वही धर्म है। आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं; अतः आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरको अब मैं नहीं धारण करूँगी। यदि भूलसे कोई दूषित अन्न खा लिया जाय तो वमन करके उसे निकाल देना ही आत्मशुद्धिके लिये आवश्यक बताया गया है। भगवान् शिव जब-जब आपके साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे हँसीमें भी दाक्षायणी (दक्षकुमारी)-के नामसे पुकारते हैं, तब-तब उस हास-परिहासको भूलकर मेरा मन तुरंत ही दुःखके अगाध समुद्रमें डूब जाता है। अतः आपके अंगसे उत्पन्न हुए इस शवतुल्य शरीरको अब त्यागे देती हूँ; क्योंकि यह मेरे लिये कलंकरूप है।'

यज्ञमण्डपमें इस प्रकार कहकर देवी सती मौन हो उत्तर-दिशामें बैठ गयीं। उनका शरीर पीताम्बरसे ढका था। वे आचमन करके नेत्र बन्द किये योगमार्गमें स्थित हो गयीं। पहले उन्होंने आसनको स्थिर किया,

फिर प्राण और अपान वायुको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थापित किया। तदनन्तर उदान वायुको नाभिचक्रसे धीरे-धीरे ऊपर उठाया और बुद्धिसहित हृदयमें स्थापित कर दिया; फिर हृदयस्थित वायुको वे कण्ठमार्गसे भृकुटियोंके बीचमें ले गयीं। महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शिव जिसको बड़े आदरके साथ अपने अंकमें बिठा चुके थे, उसी शरीरको मनस्विनी सतीदेवी दक्षपर क्रोध होनेके कारण त्याग देना चाहती थीं; अतः उन्होंने अपने सम्पूर्ण अंगोंमें अग्नि और वायुकी धारणा की। इसके बाद वे अपने स्वामी जगद्गुरु भगवान् शिवके चरणारविन्द-मकरन्दका चिन्तन करने लगीं; उसके सिवा दूसरी किसी वस्तुका उन्हें भान न रहा। उस समय उनकी वह दिव्य देह, जो स्वभावसे ही निष्पाप थी, तत्काल योगाग्निसे जलकर भस्म हो गयी।[1]

इस प्रकार पतिप्राणा सतीकी ऐहलौकिक लीला समाप्त हुई। उन्होंने जीवनभर सदा ही तन-मन, प्राणसे अपने पति भगवान् शिवकी सेवा और समाराधना की तथा अन्तमें भी उन्हींका चिन्तन करते-करते प्राण-त्याग किया। मरते समय भी उन्होंने भगवान्से यही वर माँगा था कि प्रत्येक जन्ममें मेरा भगवान् शिवके ही चरणोंमें अनुराग हो।[2]

इसीलिये वे पुनः गिरिराज हिमालयके यहाँ पार्वतीके रूपमें प्रकट हुईं और भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त किया। सतीका यह दिव्य पतिप्रेम भारतकी नारियोंके लिये आदर्श बन गया। आज घर-घरमें सती-पूजाकी जो प्रथा चली आती है, उसमें दक्ष-कन्या सतीके प्रति ही भारतीय नारियाँ अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पित करती हैं। सतीजी भगवान् शिवके लिये ही उत्पन्न हुईं, उन्हींकी सेवाके लिये जीवित रहीं और उसीमें बाधा पड़नेपर फिर उन्हींको सम्पूर्णरूपसे प्राप्त करनेके लिये उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया। गंगाके किनारे जिस स्थानपर सतीने अपना शरीर छोड़ा था, वह आज भी 'सौनिक तीर्थ' के नामसे विख्यात है।

श्रीमदालसाजी

भारतवर्षमें ऐसे योग्य पुत्र तो बहुत हुए हैं, जिन्होंने अपने सत्कर्मोंसे माता-पिताका उद्धार करके 'पुत्र' नामको सार्थक किया हो; परंतु ऐसी माता, जो परम उत्तम ज्ञानका उपदेश देकर पुत्रोंका भी संसार-सागरसे उद्धार कर दे, केवल मदालसा ही थी। उसने पुत्रोंका ही नहीं, अपना और पतिका भी उद्धार किया था। मदालसा आदर्श विदुषी, आदर्श सती और आदर्श माता थी। उसका जन्म दिव्य कुलमें हुआ। पहले तो वह गन्धर्वराज विश्वावसुकी पुत्री थी। फिर नागराज अश्वतरकी कन्यारूपमें प्रकट हुई। उसके जीवनका संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है—

प्राचीन कालमें शत्रुजित् नामके एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। उनकी राजधानी गोमतीके तटपर थी। उनके एक बड़ा बुद्धिमान्, पराक्रमी और सुन्दर पुत्र भी था, उसका नाम था ऋतध्वज। एक दिन नैमिषारण्यसे गालवमुनि राजा शत्रुजित्के दरबारमें पधारे। उनके साथ एक बहुत ही सुन्दर दिव्य अश्व था। उन्होंने राजासे कहा—'महाराज! हम आपके राज्यमें रहकर तपस्या, यज्ञ तथा भगवान्का भजन करते हैं; किंतु एक दैत्य कुछ कालसे हमारे इस पवित्र कार्यमें बड़ी बाधा डाल रहा है। यद्यपि हम उसे अपनी क्रोधाग्निसे भस्म कर सकते हैं तथापि ऐसा करना नहीं चाहते; क्योंकि प्रजाकी रक्षा करना और दुष्टोंको

---

१. ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम्। ददर्श देहो हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना॥ (श्रीमद्भा० ४।४।२७)

२. सती मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥ (श्रीरामचरितमानस)

दण्ड देना—यह राजाका कार्य है। एक दिन उसके उपद्रवसे पीड़ित होकर हम उसे रोकनेके उपायपर विचार कर रहे थे, इतनेमें ही यह दिव्य अश्व आकाशसे नीचे उतरा। उसी समय यह आकाशवाणी हुई—'मुने! यह अश्व बिना किसी रुकावटके समस्त पृथ्वीकी परिक्रमा कर सकता है; आकाश, पाताल, पर्वत, समुद्र सब जगह आसानीसे जा सकता है। इसलिये इसका नाम 'कुवलय' है। भगवान् सूर्यने यह अश्व आपको समर्पित किया है। आप इसे ले जाकर राजा शत्रुजित्‌के पुत्र राजकुमार ऋतध्वजको दे दें। वे ही इसपर आरूढ़ होकर उस दैत्यका वध करेंगे, जो सदा आपको कष्ट दिया करता है। इस अश्वरत्नको पाकर इसीके नामपर राजकुमारकी प्रसिद्धि होगी, वे कुवलयाश्व कहलायेंगे। इस आकाशवाणीको सुनकर हम आपके पास आये हैं। आप इस अश्वको लीजिये और राजकुमारको इसपर सवार करके हमारे साथ भेजिये, जिससे धर्मका लोप न होने पाये।'

गालवमुनिके यों कहनेपर धर्मात्मा राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ राजकुमारको मुनियोंकी रक्षाके लिये भेजा। महर्षिके आश्रमपर पहुँचकर वे सब ओरसे उसकी रक्षा करने लगे। एक दिन वह मदोन्मत्त दानव शूकरका रूप धारण करके वहाँ आया। राजकुमार शीघ्र ही घोड़ेपर सवार हो उसके पीछे दौड़े। अर्धचन्द्राकार बाणसे उसपर प्रहार किया। बाणसे आहत होकर वह शूकराकार दैत्य प्राण बचानेके लिये भागा और वृक्षों तथा पर्वतसे घिरी हुई घनी झाड़ीमें घुस गया। राजकुमारके अश्वने उसका पीछा न छोड़ा। दैत्य भागता हुआ सहस्रों योजन दूर निकल गया और एक स्थानपर बिलके आकारमें दिखायी देनेवाली अँधेरी गुफामें कूद पड़ा। अश्वारोही राजकुमार भी उसके पीछे उसी गड्ढेमें कूद पड़े। भीतर जानेपर वहाँ सूअर नहीं दिखायी पड़ा; बल्कि दिव्य प्रकाशसे परिपूर्ण पाताललोकका दर्शन हुआ। सामने ही इन्द्रपुरीके समान एक सुन्दर नगर था, जिसमें सैकड़ों सोनेके महल शोभा पा रहे थे। राजकुमारने उसमें प्रवेश किया; किंतु वहाँ उन्हें कोई मनुष्य नहीं दिखायी दिया। वे नगरमें घूमने लगे। घूमते-ही-घूमते उन्होंने एक स्त्री देखी, जो बड़ी उतावलीके साथ कहीं चली जा रही थी। राजकुमारने उससे कुछ पूछना चाहा; किंतु वह आगे बढ़कर चुपचाप एक महलकी सीढ़ियोंपर चढ़ गयी। ऋतध्वजने भी घोड़ेको एक जगह बाँध दिया और उसी स्त्रीके पीछे-पीछे महलमें प्रवेश किया। भीतर जाकर देखा, सोनेका बना हुआ एक विशाल पलँग है। उसपर एक सुन्दरी कन्या बैठी है, जो अपने सौन्दर्यसे रतिको भी लजा रही है। दोनोंने एक-दूसरेको देखा और दोनोंका मन परस्पर आकर्षित हो गया। कन्या मूर्च्छित हो गयी। तब पहली स्त्री ताड़का पंखा लेकर उसे हवा करने लगी। जब वह कुछ होशमें आयी तो राजकुमारने उसकी मूर्च्छाका कारण पूछा। वह लजा गयी। उसने सब कुछ अपनी सखीको बता दिया।

उसकी सखीने कहा—'प्रभो! देवलोकमें गन्धर्वराज विश्वावसु सर्वत्र विख्यात हैं। यह सुन्दरी उन्हींकी कन्या मदालसा है। एक दिन जब यह अपने पिताके उद्यानमें घूम रही थी, पातालकेतु नामक दानवने अपनी माया फैलाकर इसे हर लिया। उसका निवासस्थान यहीं है। सुननेमें आया है, आगामी त्रयोदशीको वह इसके साथ विवाह करेगा, इससे मेरी सखीको अपार कष्ट है। अभी कलकी बात है, यह बेचारी आत्महत्या करनेको तैयार हो गयी थी। उसी समय कामधेनुने प्रकट होकर कहा—'बेटी! वह नीच दानव तुम्हें नहीं पा सकता। मर्त्यलोकमें जानेपर उसे जो अपने बाणोंसे बींध डालेगा, वही तुम्हारा पति होगा।' यों कहकर माता सुरभि अन्तर्धान हो गयीं। मेरा नाम कुण्डला है। मैं इस मदालसाकी सखी, विन्ध्यवान्‌की पुत्री और वीर पुष्करमालीकी पत्नी हूँ। मेरे पति देवासुर-संग्राममें शुम्भके हाथों मारे गये। तबसे मैं तपस्याका जीवन व्यतीत कर रही हूँ। सखीके स्नेहसे यहाँ इसे धीरज बँधाने आ गयी हूँ। सुना है, मर्त्यलोकके किसी वीरने

पातालकेतुको अपने बाणोंका निशाना बनाया है। मैं उसीका पता लगाने गयी थी। बात सही निकली। आपको देखकर मेरी सखीके हृदयमें प्रेमका संचार हो गया है, किंतु माता सुरभिके कथनानुसार इसका विवाह उस वीरके साथ होगा, जिसने पातालकेतुको घायल किया है। यही सोचकर दुःखके मारे यह मूर्च्छित हो गयी है। जिससे प्रेम हो, उसीके साथ विवाह होनेपर जीवन सुखमय बीतता है। इसका प्रेम तो आपसे हुआ और विवाह दूसरेसे होगा, यही इसकी चिन्ताका कारण है। अब आप अपना परिचय दीजिये। कौन हैं और कहाँसे आये हैं?'

राजकुमारने अपना यथावत् परिचय दिया तथा उस दानवको बाण मारने और पातालमें पहुँचनेकी सारी कथा विस्तारपूर्वक कह सुनायी। सब बातें सुनकर मदालसाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने लज्जित होकर सखीकी ओर देखा, किंतु कुछ बोल न सकी। कुण्डलाने उसका मनोभाव जानकर कहा—'वीरवर! आपकी बात सत्य है। मेरी सखीका हृदय किसी अयोग्य पुरुषकी ओर आसक्त नहीं हो सकता। कमनीय कान्ति चन्द्रमामें और प्रचण्ड प्रभा सूर्यमें ही मिलती है। आपके ही लिये गोमाता सुरभिने संकेत किया था। आपने ही दानव पातालकेतुको घायल किया है। मेरी सखी आपको पतिरूपमें प्राप्त करके अपनेको धन्य मानेगी।' कुण्डलाकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—'मैं पिताकी आज्ञा लिये बिना विवाह कैसे कर सकता हूँ?' कुण्डला बोली—'नहीं, नहीं, ऐसा न कहिये। यह देवकन्या है। आपके पिताजी इस विवाहसे प्रसन्न होंगे। अब उनसे पूछने और आज्ञा लेनेका समय नहीं रह गया है। आप विधाताकी प्रेरणासे ही यहाँ आ पहुँचे हैं; अतः यह सम्बन्ध स्वीकार कीजिये।' राजकुमारने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली। कुण्डलाने अपने कुलगुरु तुम्बुरुका स्मरण किया। वे समिधा और कुशा लिये तत्काल वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने अग्नि प्रज्वलित करके विधिपूर्वक ऋतध्वज और मदालसाका विवाह-संस्कार सम्पन्न किया। कुण्डलाने अपनी सखी राजकुमारके हाथों सौंप दी और दोनोंको अपने-अपने कर्तव्यपालनका उपदेश दिया। फिर दोनोंसे विदा लेकर वह दिव्य गतिसे अपने अभीष्ट स्थानपर चली गयी। ऋतध्वजने मदालसाको घोड़ेपर बिठाया और स्वयं भी उसपर सवार हो पाताललोकसे जाने लगे। इतनेहीमें पातालकेतुको यह समाचार मिल गया और वह दानवोंकी विशाल सेना लिये राजकुमारके सामने आ डटा। राजकुमार भी बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने हँसते-हँसते बाणोंका जाल-सा फैला दिया और त्वाष्ट्र नामक दिव्य अस्त्रका प्रयोग करके पातालकेतुसहित समस्त दानवोंको भस्म कर डाला। इसके बाद वे अपने पिताके नगरमें जा पहुँचे। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने माता-पिताको प्रणाम किया। मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंमें मस्तक झुकाया। ऋतध्वजके मुखसे सब समाचार सुनकर माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्र और पुत्रवधूको हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। मदालसा पतिगृहमें बड़े सुखसे रहने लगी। वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम करती और पतिको अपनी सेवाओंसे सन्तुष्ट रखती थी।

तदनन्तर एक दिन राजा शत्रुजित्ने राजकुमार ऋतध्वजसे कहा—'बेटा! तुम प्रतिदिन प्रातःकाल इस अश्वपर सवार हो ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये इस पृथ्वीपर विचरते रहो।' राजकुमारने 'बहुत अच्छा' कहकर पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की। वे प्रतिदिन पूर्वाह्णमें ही पृथ्वीकी परिक्रमा करके पिताके चरणोंमें नमस्कार करते थे। एक दिन घूमते हुए वे यमुनातटपर गये। वहाँ पातालकेतुका छोटा भाई तालकेतु आश्रम बनाकर मुनिके वेषमें रहता था। राजकुमारने मुनि जानकर उसे प्रणाम किया। वह बोला—'राजकुमार! मैं धर्मके लिये यज्ञ करना चाहता हूँ; किंतु मेरे पास दक्षिणा नहीं है। तुम अपने गलेका यह आभूषण दे दो और यहीं रहकर मेरे आश्रमकी रक्षा करो। मैं जलके भीतर प्रवेश करके वरुण-देवताकी स्तुति करता हूँ। उसके बाद जल्दी ही लौटूँगा।' यों

कहकर तालकेतु जलमें घुसा और मायासे अदृश्य हो गया। राजकुमार उसके आश्रमपर ठहर गये। मुनिवेषधारी तालकेतु राजा शत्रुजित्‌के नगरमें गया। वहाँ जाकर उसने कहा—'राजन्! आपके पुत्र दैत्योंके साथ युद्ध करते-करते मारे गये। यह उनका आभूषण है।' यों कहकर वह जैसे आया था, उसी प्रकार लौट गया। राजकुमारकी मृत्युका दुःखपूर्ण समाचार सुनकर नगरमें हाहाकार मच गया। राजा-रानी तथा रनिवासकी स्त्रियाँ शोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगीं। मदालसाने उनके गलेके आभूषणको देखा और पतिको मारा गया सुनकर तुरंत ही अपने प्यारे प्राणोंको त्याग दिया। राजमहलका शोक दूना हो गया। राजा शत्रुजित्‌ने किसी प्रकार धैर्य धारण किया और रानी तथा अन्तःपुरके अन्य लोगोंको भी समझा-बुझाकर शान्त किया। मदालसाका दाह-संस्कार किया गया। उधर तालकेतु यमुना-जलसे निकलकर राजकुमारके पास गया और कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने उनको घर जानेकी आज्ञा दे दी। राजकुमारने तुरंत अपने नगरमें पहुँचकर पिता-माताको प्रणाम किया। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगा लिया और नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। राजकुमारको सब बातें मालूम हुईं। मदालसाके वियोगसे उनका हृदय रो उठा। उनकी दुनिया सूनी हो गयी। उन्होंने मदालसाके लिये जलांजलि दी और यह प्रतिज्ञा की, 'मैं मृगके समान विशाल नेत्रोंवाली गन्धर्वराजकुमारी मदालसाके अतिरिक्त दूसरी किसी स्त्रीके साथ भोग नहीं करूँगा। यह मैंने सर्वथा सत्य कहा है।'

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उन्होंने स्त्री-सम्बन्धी भोगसे मन हटा लिया और समवयस्क मित्रोंके साथ मन बहलाने लगे। इसी समय नागराज अश्वतरके दो पुत्र मनुष्यरूपमें पृथ्वीपर घूमनेके लिये निकले। राजकुमार ऋतध्वजके साथ उनकी मित्रता हो गयी। उनका आपसका प्रेम इतना बढ़ गया कि नागकुमार एक क्षण भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। वे दिनभर पातालसे गायब रहते थे। एक दिन नागराजके पूछनेपर उन्होंने ऋतध्वजका सारा वृत्तान्त सुनाकर पितासे कहा—'हमारे मित्र ऋतध्वज मदालसाके सिवा दूसरी किसी स्त्रीको स्वीकार न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं। मदालसा पुनः जीवित हो सके तो कोई उपाय करें।' नागराज बोले—'उद्योगसे सब कुछ सम्भव है। प्राणीको कभी निराश नहीं होना चाहिये।' यों कहकर नागराज अश्वतर हिमालयपर्वतके प्लक्षावतरण तीर्थमें, जो सरस्वतीका उद्‌गमस्थान है, जाकर अपने पुत्रोंके मित्र राजकुमार ऋतध्वजके हितार्थ दुष्कर तपस्या करने लगे। सरस्वती देवीने प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा। अश्वतर बोले—'देवि! मैं और मेरा भाई कम्बल दोनों संगीतशास्त्रके पूर्ण मर्मज्ञ हो जायँ।' सरस्वतीदेवी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। अब दोनों भाई कम्बल और अश्वतर कैलासपर्वतपर गये और भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये तालस्वरके साथ उनके गुणोंका गान करने लगे। शंकरजीने प्रसन्न होकर कहा—'वर माँगो।' तब कम्बलसहित अश्वतरने महादेवजीको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! कुवलयाश्वकी पत्नी मदालसा जो अब मर चुकी है, पहलेकी ही अवस्थामें मेरी कन्याके रूपमें प्रकट हो। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहे। पहले ही-जैसी उसकी कान्ति हो तथा वह योगिनी एवं योगविद्याकी जननी होकर मेरे घरमें प्रकट हो।' महादेवजीने कहा—'नागराज! तुम श्राद्धका दिन आनेपर यही कामना लेकर पितरोंका तर्पण करना और श्राद्धमें दिये हुए मध्यम पिण्डको शुद्ध भावसे खा लेना। इससे वह तत्काल ही तुम्हारे मध्यम फणसे प्रकट हो जायगी।' नागराजने वैसा ही किया। सुन्दरी मदालसा उनके मध्यम फणसे प्रकट हो गयी। नागराजने उसे महलके भीतर स्त्रियोंके संरक्षणमें रख दिया। यह रहस्य उन्होंने किसीपर प्रकट नहीं किया।

तदनन्तर नागराज अश्वतरने अपने पुत्रोंसे कहा—'तुम राजकुमार ऋतध्वजको यहाँ बुला लाओ।' नागकुमार उन्हें लेकर गोमतीके जलमें उतरे और वहींसे खींचकर उन्हें पातालमें पहुँचा दिया। वहाँ वे अपने

असली रूपमें प्रकट हुए। ऋतध्वज नागलोककी शोभा देखकर चकित हो उठे। उन्होंने नागराजको प्रणाम किया। नागराजने आशीर्वाद देकर ऋतध्वजका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। भोजनके पश्चात् सब लोग एक साथ बैठकर प्रेमालाप करने लगे। नागराजने मदालसाके पुनः जीवित होनेकी सारी कथा उन्हें कह सुनायी। फिर तो उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी प्यारी पत्नीको ग्रहण किया। उनके स्मरण करते ही उनका प्यारा अश्व वहाँ आ पहुँचा। नागराजको प्रणाम करके वे मदालसाके साथ अश्वपर आरूढ़ हुए और अपने नगरमें चले गये। वहाँ उन्होंने मदालसाके जीवित होनेकी कथा सुनायी। मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम किया। नगरमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया।

कुछ कालके पश्चात् महाराज शत्रुजित् परलोकवासी हो गये। ऋतध्वज राजा हुए और मदालसा महारानी। मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने उसका नाम विक्रान्त रखा। मदालसा यह नाम सुनकर हँसने लगी। इसके बाद समयानुसार क्रमशः दो पुत्र और हुए। उनके नाम सुबाहु और शत्रुमर्दन रखे गये। उन नामोंपर भी मदालसाको हँसी आयी। इन तीनों पुत्रोंको उसने लोरियाँ गानेके व्याजसे विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश दिया। बड़े होनेपर वे तीनों ममताशून्य और विरक्त हो गये।

तत्पश्चात् रानी मदालसाके गर्भसे चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। जब राजा उसका नामकरण करने चले तो उनकी दृष्टि मदालसापर पड़ी। वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। राजाने कहा—'मैं नाम रखता हूँ तो हँसती हो। अब इस पुत्रका नाम तुम्हीं रखो।' मदालसाने कहा—'जैसी आपकी आज्ञा। आपके चौथे पुत्रका नाम मैं अलर्क रखती हूँ।' 'अलर्क!' यह अद्भुत नाम सुनकर राजा ठठाकर हँस पड़े और बोले—'इसका क्या अर्थ है?' मदालसाने उत्तर दिया, 'सुनिये! नामसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। संसारका व्यवहार चलानेके लिये कोई-सा नाम कल्पना करके रख लिया जाता है। वह संज्ञामात्र है, उसका कोई अर्थ नहीं। आपने भी जो नाम रखे हैं, वे भी निरर्थक ही हैं; पहले 'विक्रान्त' इस नामके अर्थपर विचार कीजिये। क्रान्तिका अर्थ है गति। जो एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाता है, वही विक्रान्त है। आत्मा सर्वत्र व्यापक है, उसका कहीं आना-जाना नहीं होता; अतः यह नाम उसके लिये निरर्थक तो है ही, स्वरूपके विपरीत भी है। आपने दूसरे पुत्रका नाम 'सुबाहु' रखा है। जब आत्मा निराकार है, तो उसे बाँह कहाँसे आयी? जब बाँह ही नहीं है तो सुबाहु नाम रखना कितना असंगत है। तीसरे पुत्रका नाम 'शत्रुमर्दन' रखा गया है; उसकी भी कोई सार्थकता नहीं दिखायी देती। सब शरीरोंमें एक ही आत्मा रम रहा है; ऐसी दशामें कौन किसका शत्रु है और कौन किसका मर्दन करनेवाला? यदि व्यवहारका निर्वाहमात्र ही उसका प्रयोजन है तब तो अलर्क नामसे भी इस उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती है।

राजा निरुत्तर हो गये। मदालसाने उस बालकको भी ब्रह्मज्ञानका उपदेश सुनाना आरम्भ किया। तब राजाने रोककर कहा—'देवि! इसे भी ज्ञानका उपदेश देकर मेरी वंश-परम्पराका उच्छेद करनेपर क्यों तुली हो? इसे प्रवृत्तिमार्गमें लगाओ और उसके अनुकूल ही उपदेश दो।' मदालसाने पतिकी आज्ञा मान ली और अलर्कको बचपनमें ही व्यवहार-शास्त्रका पण्डित बना दिया। उसे राजनीतिका पूर्ण ज्ञान कराया। धर्म, अर्थ और काम तीनों शास्त्रोंमें वह प्रवीण बन गया। बड़े होनेपर माता-पिताने अलर्कको राजगद्दीपर बिठाया और स्वयं वनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। जाते समय मदालसाने अलर्कको एक अँगूठी दी और कहा—'जब तुमपर कोई संकट पड़े तो इस अँगूठीके छिद्रसे उपदेशपत्र निकालकर पढ़ना और इसके अनुसार कार्य करना।' अलर्कने गंगा-यमुनाके संगमपर अपनी अलर्कपुरी नामकी राजधानी बनायी, जो आजकल अरैलके नामसे प्रसिद्ध है। कुछ कालके बाद अलर्कको भोगोंमें आसक्त देख उनके बड़े भाई सुबाहुने काशिराजकी

सहायतासे उनपर आक्रमण किया। अलर्कने संकट जानकर माताका उपदेश पढ़ा। उसमें लिखा था—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥

'संग (आसक्ति)-का सब प्रकारके त्याग करना चाहिये; किंतु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका संग ही उसकी ओषधि है। कामनाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये; परंतु यदि वह छोड़ी न जा सके तो मुमुक्षा (मोक्षकी इच्छा)-के प्रति कामना करनी चाहिये; क्योंकि मुमुक्षा ही उस कामनाको मिटानेकी दवा है।'

इस उपदेशको अनेक बार पढ़कर राजाने सोचा, मनुष्योंका कल्याण कैसे होगा? मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् करनेपर और मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् होगी सत्संगसे। ऐसा विचारकर अलर्कने महात्मा दत्तात्रेयजीकी शरण ली और वहाँ ममतारहित विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश पाकर वे सदाके लिये कृतार्थ हो गये। इस प्रकार महासती मदालसाने अपने पुत्रोंका उद्धार करके स्वयं भी पतिके साथ परमात्मचिन्तनमें मन लगाया और थोड़े ही समयमें मोक्षस्वरूप परमपद प्राप्त कर लिया। मदालसा अब इस लोकमें नहीं है; किंतु उसका नाम सदाके लिये अमर हो गया। (मार्कण्डेयपुराण)

यज्ञपत्नियाँ

'श्यामसुन्दर! हमें बहुत भूख लगी है। कोई भी उपाय करो।' गौओंने भरपेट कोमल हरित तृण चरकर सुशीतल यमुनाजल पी लिया था और अब वे वृक्षोंकी छायामें बैठकर नेत्रोंको आधा बन्द करके रोमन्थ कर रही थीं। कभी-कभी उनकी पूँछें इधर-उधर हिल जाती थीं। चंचल बछड़े मयूरों, बन्दरोंके पीछे दौड़ रहे थे और कुछ श्रीकृष्णचन्द्रके समीप बैठे थे। एक ही शिलापर एक वृक्षके नीचे श्रीकृष्ण और बलराम दोनों विराज रहे थे। सखाओंने पृथक् जाकर परस्पर कुछ कानाफूसी की और अन्तमें एक साथ ही सब दोनों भाइयोंके समीप आये। सबकी ओरसे मधुमंगलने प्रार्थना की। आज दोपहरका कलेऊ आया नहीं था। गायें चराते, खेलते सब लोग बहुत दूर मथुराकी दिशामें चले आये थे। कलेऊ लेकर आनेवाली गोपियाँ सम्भवतः बहुत ढूँढ़कर भी इन लोगोंतक नहीं पहुँच सकी थीं।

'वह देखो, थोड़ी दूरपर धुआँ उठ रहा है। मुझे बाबाने बताया है कि मथुराके ब्राह्मण वनमें आकर यज्ञ कर रहे हैं। उनसे जाकर कहो कि बलराम और श्रीकृष्णके लिये अन्न दो। ब्राह्मण अतिथियोंका सत्कार करनेवाले होते हैं।' श्रीकृष्णने एक ओर अँगुलीसे संकेत किया। सब-के-सब उधर ही दौड़ गये।

'द्विजोत्तमगण! आपको प्रणाम! हमें बलराम तथा श्यामने भेजा है। वे दोनों बहुत भूखे हैं और हमलोगोंको भी भूख लगी है। अतिथि-सत्कारसे आपके यज्ञमें कोई दोष नहीं आयेगा।' भूमिमें लेटकर प्रणाम करनेके अनन्तर गोपबालकोंने प्रार्थना की। ब्राह्मणोंने उधर देखातक नहीं। यह उपेक्षा देखकर वे निराश होकर लौट आये।

'पुरुष तो निर्दय होते ही हैं। स्त्रियाँ दयालु होती हैं। अबकी बार यज्ञमण्डपमें न जाकर स्त्रियोंके लिये जो आवास बना हो, वहाँ जाकर विप्रपत्नियोंसे कहो। वे अवश्य तुम्हें तुष्ट करेंगी।' नन्दनन्दनने सब सुनकर कहा।

'कन्हैया! अब तो हम नहीं जायँगे। तू स्त्रियोंमें हमें भेजकर उन मथुराके मोटे-ताजे चौबोंसे पिटवाना

चाहता है? स्त्रियोंसे तेरी ही पटती है। तू ही जा!' मधुमंगलने रुष्ट होकर अस्वीकार कर दिया।

'भैया! यहाँ और कुछ है भी नहीं। इस वनमें फल भी तो नहीं हैं। मुझे तो इतनी भूख लगी है कि चलनेमें भी असमर्थ हूँ। मेरे कहनेसे एक बार और जाओ।' जब वह मयूरमुकुटी अनुरोध करे तो टालनेका साहस ही किसमें है।

'री साध्वियो! हम आप सबको प्रणिपात करते हैं। नन्दनन्दन अपने अग्रजके साथ गायें चराते हुए समीपतक आ गये हैं। उन्होंने ही हमें आपके समीप भेजा है। वे बहुत भूखे हैं और हमारी सबकी भी यही दशा है। कृपा करके आप कुछ भोज्य पदार्थ प्रदान करें।' इस बार सुबलने प्रार्थना की।

'हमारे सौभाग्य!' सम्पूर्ण नारी-आवासमें हलचल मच गयी। हाथके कामोंको एक ओर फेंककर स्वर्णथालोंमें बड़ी शीघ्रतासे पक्वान्नोंको सजानेमें सब आतुरतासे व्यस्त हो गयीं। कौन सोचे कि इतना पदार्थ क्या होगा। अनेक प्रकारके चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय अधिक-से-अधिक मात्रामें वे अपने पात्रोंमें भर लेना चाहती थीं। बड़ी शीघ्रतासे थाल सजाकर उन्होंने कहा—'चलो, हमें उन नन्दकुमारतक पहुँचा दो।' बहुत दिनोंसे उस मनमोहनके अपूर्व सौन्दर्य एवं गुणोंका वर्णन सुनते आ रही थीं। बड़ी उत्कण्ठा थी उस भुवनमोहनको एक बार देखनेकी। गोपकुमारोंको आगे करके वे निकल पड़ीं।

ब्राह्मणोंने देखा कि उनकी स्त्रियाँ स्वर्णथाल सजाये गोपबालकोंके साथ जा रही हैं तो वे स्रुक्-स्रुवा छोड़कर पुकारते हुए दौड़े। गोपकुमार भयके मारे भाग खड़े हुए। द्विजपत्नियाँ भी दौड़ने लगीं। केवल एकको उसके पतिने पकड़ लिया। बड़ा दुःख हुआ उसे। श्रीकृष्णके दर्शन न होनेकी तीव्र वेदना हुई। इस कष्टने जन्म-जन्मान्तरके पाप भस्म कर दिये। नेत्र बन्द करते ही हृदयमें ललितत्रिभंगी वंशीधर प्रकट हो गये। अपार आनन्द हुआ। समस्त पुण्योंका सुख-भोग हो गया एक पलमें। पाप और पुण्यके बिना शरीर कैसे टिके? वह तो मुक्त होकर भगवद्धाममें पहुँच गयी।

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम्॥

(श्रीमद्भा० १०। २३। २२)

इन्दीवरदलश्याम शरीर, स्वर्णाभ पीताम्बर धारण किये, गलेमें वनमाला तथा गुंजाओंकी माला, सिरपर मयूरमुकुट, अनेक धातुओंसे शरीरको नटोंकी भाँति सजाये, एक सखाके कन्धेपर दाहिना हाथ रखे और बायें हाथमें एक विकच कमल लेकर घुमाते हुए मनमोहनको विप्रपत्नियोंने दूरसे देखा। उन्होंने कानोंमें अधखिले कमल पहन रखे थे। कपोलोंपर घुँघराली अलकें आ गयी थीं और उनका मुखकमल मन्द मुसकानसे शोभित था। आकर उन द्विजपत्नियोंने स्वर्णथाल सम्मुख रख दिये और एकटक उस मनोहर मूर्तिको देखने लगीं।

'आपलोगोंका स्वागत। आपने बड़ा कष्ट किया। मुझे देखने आप आयीं, यह ठीक ही हुआ। अब आप सब लौटें। आपलोगोंके पति आपकी प्रतीक्षामें होंगे, आपके बिना उनका यज्ञकार्य रुका रहेगा।' बड़े मधुर स्वरोंमें श्यामसुन्दरने उनसे अनुरोध किया।

'आप इस प्रकार निष्ठुरकी भाँति न बोलें। आपने शरणागतका परित्याग न करनेकी जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य करें। अपने समस्त बन्धुओंका अनादर करके हम आपके श्रीचरणोंकी शरणमें आयी हैं। हमारा परित्याग आपके लिये उचित नहीं। भला, हमारे पति, पिता, पुत्र और भाई हमें अपने घरोंमें अब क्यों रहने देंगे? हम आश्रयहीना हैं। हे सर्वाश्रय! हमें आश्रय दें।' रोते हुए उन सबने प्रार्थना की।

'आप व्यर्थ शोक कर रही हैं। आपके पति आपलोगोंका अनादर नहीं करेंगे। मेरे शरणागतोंका तो

देवता भी स्वागत करते हैं। आप घरोंको लौटें, मर्यादाका पालन करें।' श्यामसुन्दरने विवश किया। इच्छा न होनेपर भी किसी प्रकार उन्हें लौटना ही पड़ा। उनके जानेपर मोहनने अग्रज तथा सखाओंके साथ उनके लाये अन्नको उत्साहके साथ ग्रहण किया। जो अवशेष रहा, उससे वनके कपियोंने अपनी तृप्ति की।

द्विजपत्नियाँ श्रीकृष्णके पाससे लौटी थीं। वे पतितपावन हो चुकी थीं। उनको देखते ही ब्राह्मणोंके हृदयका मल दूर हो गया। उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि उन्होंने सर्वेशकी याचनाकी उपेक्षा कर दी। ऐसी भगवद्भक्ता स्त्रियोंके पति होनेके कारण उन्होंने अपने भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

महाभाग्यवती व्रजगोपियाँ

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥*

व्रजकी गोपांगनाओंके सम्बन्धमें हम-जैसे पामर पुरुषोंका कुछ कहना ही अपराध है। शुकदेवजीने भी बड़ी ही सावधानीसे श्रीमद्भागवतमें कुछ कहा है; क्योंकि बिना तीनों गुणोंसे परे हुए कोई मनुष्य यथार्थमें गोपी-तत्त्वको समझ ही नहीं सकता। जो बिना समझे केवल उस भावकी नकल करते हैं, उनसे तो पग-पगपर अपराध बननेकी सम्भावना है। सिंहिनीका दूध सुवर्णके ही पात्रमें रह सकता है, दूसरी जगह वह टिक ही नहीं सकता। वह इतना गूढ़ रहस्य है कि आदर्शका भी आदर्श माना जाता है। जबतक हृदयमें तनिक भी कामवासना हो, तबतक मनुष्य गोपी-तत्त्वके विषयमें कुछ कहनेका अधिकारी नहीं, तबतक तो वह यम, निमय, संयम, ध्यान, धारणा, जप, तप, योग आदिके द्वारा कामवासनाका क्षय करे। तब उसे गोपीप्रेमकी ओर बढ़नेका अधिकार होगा। इसके बिना किये बढ़ेगा तो गिर जायगा। इसीलिये नारदजीने अपने भक्तिसूत्रोंमें गोपियोंको परमप्रेमका आदर्श बताया है। सूरदासजी कहते हैं ***'गोपी प्रेमकी धुजा।'*** वे हरिकी परमानन्दिनी परमाह्लादिनी शक्तियाँ ही हैं। भगवान्से भिन्न उनका कोई स्वरूप ही नहीं। उद्धव-जैसे ज्ञानी भी उनके अलौकिक प्रेमको देखकर कह उठे **'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्'**—मैं यदि वृन्दावनकी कोई लता या गुल्म बन जाता तो कृतकृत्य हो जाता। क्यों? इसलिये कि इन महाभाग्यवती गोपियोंके पावन पाद-पद्मोंकी परागराशि उड़-उड़कर मेरे ऊपर पड़ती। अहा! जिनकी चरणरेणुको ब्रह्मा आदि देवता तरसते हों, उनके सम्बन्धमें कुछ लिखना बड़ी ही धृष्टता है।

गोपी! गोपी! कितना मोहक नाम है। भगवान्के अनन्त नामोंको ले लीजिये; जितना मधुमय, स्निग्ध, चित्तको हठात् आकर्षित करनेवाला उनका **'गोपीजनवल्लभ'** नाम है, उतना कोई भी नहीं। इसीलिये वैष्णवोंका इष्ट मन्त्र यही है। गोपीजनोंके वल्लभ! अहा! वल्लभका महत्त्व नहीं, महत्त्व तो गोपीजनोंका है। गोपीजन न होते तो इन वल्लभमें इतना माधुर्य आता ही कहाँसे? भगवान्से एक बार पूछा गया—'तुम्हारे गुरु कौन हैं?' उन्होंने कई नाम बताये। तब पूछा गया—'असली गुरु कौन हैं?' श्यामसुन्दर रो पड़े। उनका हृदय भर आया, कण्ठ रुद्ध हो गया। 'गो……' इतना ही कह पाये, आगे कुछ न कह सके। गोपी! अहा! गोपी! वे हमारे श्यामसुन्दरकी परमाराधनीया परम आदरणीया गुरुरूप हैं, हे जगद्गुरुकी भी गुरुरूपा देवीगण! तुम्हारे पादपद्मोंमें पुनः-पुनः प्रणाम है।

श्यामसुन्दरसे पूछा गया, 'तुम कभी हारे हो?' वे बोले—'कभी नहीं।' जरासन्धसे डरकर क्यों भागे?

* हम उन गोकुलकी व्रजांगनाओंकी चरणरेणुको बार-बार श्रद्धासहित सिरपर चढ़ाते हैं, जिनकी भगवत्सम्बन्धिनी कथाएँ तीनों लोकोंको पावन करनेवाली हैं।

कालयवनके सामने भी तो भागे थे। इन सबका समाधान उन्होंने किया। भागना और बात है, हारना और बात है। सिंह जब शिकारको मारता है तो उसे पकड़नेको दस कदम पीछे भी हट जाता है। जोरसे दौड़नेके लिये पीछे हटना ही पड़ता है। यह तो विद्या है, रणकौशल है। हारनेके मानी हैं दूसरेके अधीन हो जाना, उसके हाथकी कठपुतली बन जाना। भगवान्से पूछा गया 'किसीसे नहीं हारे?' वे सोचमें पड़ गये और बोले—'हाँ, हारे क्यों नहीं, गोपियोंसे तो हम सदा हारे ही हुए हैं।'

श्यामसुन्दरसे पूछा गया, तुम्हें वेदशास्त्र निर्लेप कहते हैं, तुम क्या लक्ष्मीके बिना रह सकते हो? वे बोले—'अवश्य, इसमें क्या, वह तो मेरी दासी है।' क्या ब्रह्माके बिना रह सकते हो? उन्होंने कहा—'मेरे प्रत्येक श्वासमें अनन्त ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और प्रश्वासमें बहुत-से ब्रह्मा पेटमें चले जाते हैं।' तो क्या जगत्के बिना भी रह सकते हो? भगवान्ने कहा—'जगत् तो मेरी भ्रकुटीके संकेतमें पैदा होता है और पलक मारते ही समाप्त।'

फिर पूछा—'क्या वृन्दावनके बिना, क्या व्रजांगनाओंके बिना रह सकते हो?' श्यामसुन्दर रो पड़े। 'नहीं, यह मैं सुन भी नहीं सकता। रहनेकी बात तो अलग रही।'

गोपी-तत्त्वको अभीतक किसीने ठीक-ठीक समझा ही नहीं। आगे भी कोई यथार्थमें समझेगा, ऐसी आशा नहीं। रसमर्मज्ञ आचार्यगण गोपियोंके चार भेद बताते हैं—नित्य गोपी, ऋचारूपा गोपी, ऋषिरूपा गोपी, पुण्यप्राप्ता गोपी। एक तो सदा जो गोलोकमें भगवान्के साथ रहती हैं, वे गोपिकाएँ वृन्दावनमें अवतरित हुईं। दूसरी वेदकी ऋचाओंने बड़ी तपस्या की थी, वे गोपीरूपमें प्रकट हुईं। तीसरे ऋषियोंने दण्डकारण्यमें प्रभुसे कान्ताभावके रसास्वादनका वरदान माँगा था, वे गोपीरूपमें प्रकट हुए। चौथे जिन्होंने सुकृत कर्मोंसे, ऋषियोंके वरदानसे कृष्णवल्लभा होनेका वरदान पाया था। ये सभी कृष्णप्रिया और भगवद्-अनुगामिनी हुईं।

श्रीगोपीजनोंके सम्बन्धमें एक बात और है, जिसे सुनने-समझनेके भी अधिकारी सब नहीं। आजतक इतिहासमें श्रवण-भक्तिके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण महाराज परीक्षित्जी हैं। इनसे बढ़कर श्रोता तो कदाचित् ही कोई हो; क्योंकि इन्होंने स्वयं कहा है—

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥

'सबसे अधिक दुःसह भूख और प्यास है, सो वह भी मुझे तनिक भी क्लेश नहीं पहुँचा रही है; क्योंकि आपके मुखसे जो हरिकथारूपी अमृत टपक रहा है, उसे पीनेसे मैं सब कुछ भूल गया हूँ।'

शुकदेवजीने यह सोचकर कि बड़ा अच्छा श्रोता है, इसे गोपी-प्रेमकी असली कथा सुनानी चाहिये, कथा आरम्भ की।

'**भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः**' यहाँसे शुरू किया। भगवान्की वंशी सुनकर कोई बच्चेको दूध पिला रही थी, वह वैसे ही भागी। कोई दूध दुह रही थी, वहींसे चल दी। कोई अंजन लगा रही थी, एक ही आँखमें लगा पायी थी, वैसे ही भागी। कोई केश बाँध रही थी, उसी दशामें चल दी। किसीने कहींका वस्त्र कहीं पहन लिया। इस तरह शुकदेवजी बड़ी उमंगमें वर्णन कर रहे थे। बीचमें ही परीक्षित्जी बोल उठे—

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम्॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १२)

'हे महामुनि! वे गोपिकाएँ तो भगवान्‌को अपना एक प्रियजन, सुहृद् मानती थीं, उनका श्रीकृष्णमें ब्रह्मभाव तो था नहीं, तब उन्हें संसारसे मुक्ति कैसे मिल गयी? मुक्ति तो ज्ञानके बिना होती नहीं और उनका चित्त आसक्त था मायाके गुणोंमें।'

शुकदेवजीने अपना माथा ठोंका। 'अरे बाप रे बाप! यह अभी गोपियोंको समझा ही नहीं। कहता है, उन्हें मुक्ति कैसे मिली? ज्ञान तो हुआ ही नहीं? गोपियोंकी और मुक्ति? उनको और ज्ञानकी कमी?' प्रश्न सुनकर शुकाचार्यजी बड़े जोरसे बिगड़े और बोले—

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१३)

'बाबा! मैं तुझे पहले ही बता चुका हूँ कि अरे! दुष्टबुद्धि शिशुपाल उन अखिलेश्वर प्रभुसे द्वेष करके ही मुक्त हो गया। सो भलेमानुस! ये तो उन परमेश्वरकी प्रिया थीं। उन्हें प्यार करती थीं। उनसे कैसे भी सम्बन्ध हो तो सही। जब उनसे द्वेष करनेपर असुरोंको मुक्ति मिलती है, तो प्रेम करनेवालोंको और फिर उन गोपियोंको—जिन्होंने अपना सर्वस्व उन प्रभुको ही समझ रखा है—उन्हें क्या मिलेगा, तुझे कैसे बताऊँ? तू तो अभी मुक्तिके ही चक्करमें है।' इसके बाद श्रीशुकदेवजीने भगवान्‌की दिव्य रासलीलाका वर्णन किया, जिसका रहस्य गोपीभावकी स्फुरणा हुए बिना नहीं समझा जा सकता। श्रीराधाजीके परम भक्त सन्त श्री 'हठी' जीने गोपियोंकी अपार महिमाको समझकर ही 'गोपीपदपंकजपराग' होनेकी अभिलाषा निम्न मनोहारी पदमें व्यक्त की है—

कोऊ उमाराज, रमाराज, जमाराज कोऊ, कोऊ रामचंद सुखकंद नाम नाधे मैं।
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति, सुरपति, कोऊ देव ध्याय फल लेत पल आधे मैं॥
'हठी' को अधार निराधार की अधार तुही, जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे मैं।
कटै कोटि बाधे मुनि धरत समाधे ऐसे, राधे पद रावरे सदा ही अवराधे मैं॥
गिरि कीजै गोधन, मयूर नव कुंजन को, पसु कीजै महाराज नंद के बगर कौ।
नर कौन? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै, तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर कौ॥
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह, राखिए न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।
गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज! तृन कीजै रावरेई गोकुलनगर कौ॥

प्रभुप्राप्तिके मार्गका अनुसरण करनेवाले भक्त

प्राचिनबर्हि सत्यब्रत रहुगन सगर भगीरथ।
बालमीक मिथिलेस गए जे जे गोबिंद पथ॥
रुकमांगद हरिचंद भरत्त दधीचि उदारा।
सुरथ सुधन्वा सिबिर सुमति अति बलि की दारा॥
नील मोरध्वज ताम्रध्वज अलरक कीरति राचिहौं।
अंघ्री अंबुज पांसु को जनम जनम हौं जाचिहौं॥ ११॥